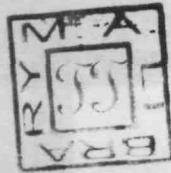


D1759
27/9/87

भारतेन्दु के साहित्य पर पुष्टि-भक्ति एवं दर्शन का प्रभाव

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध



Approved
27/9/87

Ramesh K. Sharma
LL.B., M.A., M.B.B. (Hons.)
Prof. of Hindi, Hindi Dept.
Kashmir University, SRINAGAR (J. & K.)

निर्देशक :-
डा० नजीर मुहम्मद
डी० लिट्
रीडर

प्रस्तुतकर्त्री :
श्रीमती प्रतिभा शुक्ल
एम० ए०, एम० फिल्०
शोध छात्रा

हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ ।

635
49/11/84

THESIS SECTION



T2589



[Signature]
CHECKED-2002

R1759
27/9/82

Department of Hindi
A.M.U. Aligarh.
Dated. 26.8.82

Certified that the thesis entitled Bhartendu Ke Sahitya per
Pushti Bhakti evam Darshan ka prabhav submitted by Mrs.
Pratibha shukla for the award of Ph.D degree in Hindi is an
original research work .

It is the result of Mrs. Pratibha shuklas own efforts and it
has been completed under my supervisorn . The candidate has fulfil-
led all the conditions laid don^w in the Academic ordinances in
this behalf.

N. Mohd
Dr. Nazir Mohd
Supervisor
Reader Department of Hindi AMU

आत्म- निवेदन

प्रातःस्मरणीय 'मारेतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र' के साहित्य पर पुष्टि मन्त्रित एवं दर्शन का प्रभाव 'विषय पर शोध कार्य करने की प्रेरणा मुझे अपने पिताश्री डा० गोवर्धन नाथशुक्ल से मिली। नागपुर के विश्व हिन्दी साहित्य सम्मेलन में वे विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि होकर वहाँ सम्मिलित हुए थे। वहाँ की साहित्यिक प्रदर्शनी में मारेतेन्दु जी के साहित्य उनकी स्मरणीय वस्तुओं को देखकर वै अत्यन्त प्रभावित हुए थे। उन सब वस्तुओं को उनके वंशज श्री गिरीशचन्द्र जी चौधरी ही वहाँ लाए थे। तब श्री चौधरी से न केवल घनिष्टता ही बढ़ी अपितु आत्मीय स्वजनवत् सम्बन्ध भी स्थापित हो गए। परिणामतः उन पर कार्य करने की प्रेरणा इसी घटना से प्रारम्भ हुई। मेरी अपनी वंश परम्परा भी सदैव से पुष्टिमार्गीय रही है। मारेतेन्दु जी की वंश परम्परा तो पुष्टिमार्गीय थी ही। अतः मारेतेन्दु जी पर पुष्टिमार्गीय दृष्टि से कार्य करने का संकल्प तो दृढ़ हुआ और पिताश्री के उस समय विभागीय अध्यक्ष के आसन पर आसीन होने से विषय की स्वीकृति में सर्व-सम्पत्तित्व भी आयास प्राप्त हो गया। उधर सौभाग्य से हिन्दी-सूक्त - काव्य के विशेषज्ञ गुरुवर डा० नजीर मुहम्मद रीडर, हिन्दी विभाग ने जिनका मन सगुण-निर्गुण मन्त्रित काव्य में एक समान विभ्राम पाता है- अपनी निर्देशक के रूप में स्वीकृति भी दे दी, किन्तु मारेतेन्दु के संपूर्ण काव्य के जुटाने की समस्या विकराल

रूप से सामने आ गईं। नाटकों पर तो उनके एक दो शोध ग्रन्थ देखने में आरंभ भी। साहित्यिक दृष्टि से भी कतिपय आलोचनात्मक पुस्तकें देखने को मिली, किन्तु पुष्टि भक्ति के दृष्टिकोण से भारतेन्दु जी का अध्ययन अकूत ही था। उधर चन्द्रावलि नाटिका के अतिरिक्त उनके अनेक ग्रन्थ दुर्लभ हो रहे थे। भाई गिरिशचन्द्र जी चौधरी से पिताजी का पत्र व्यवहार चलता था। उन्होंने असीम कृपा करके श्री ब्रजरत्नदास जी की लिखी जीवनी, उनके 'तदीय समाज' की स्थापना सम्बन्धी उनके निज हस्ताक्षर, कल्पदान, टोपी स्टैण्ड आदि के चित्र जैसी प्रामाणिक सामग्री भी भेज दी। इससे शोध कार्य में गति तो आई परन्तु उनके ग्रन्थ पूरी तरह मिल नहीं पाए थे। शोध कार्य मंथर गति से चलता रहा, प्रयत्न होता रहा। बीच बीच में पूज्य पितृव्य तुल्य त्रिभुवन सिंह जी, रीडर हिन्दी विभाग, काशी विश्व-विद्यालय की प्रेरणा से उत्साहित भी होती रही। उधर अनेक पारिवारिक समस्याएँ भी आती रहीं, परन्तु मगवान् के अवसरतः कृपा-वर्षाण, और अद्वेय डा० नजीर मुहम्मद जी के मार्ग दर्शन से कार्य में गति आई। सामग्री के जुटाने अध्ययन करने, लिखने में सहायक भाई डा० राम कृष्ण शर्मा ने मुझे अपरिमित सहायता दी। वे बाबू भारतेन्दु जी के ग्रंथों को जुटाने में हनुमान की भाँति सहायक सिद्ध हुए। स्तब्ध मैं उनकी भी अत्यन्त आभारी हूँ।

पितृ तुल्य मेरे स्वसुर श्रीयुत डा० नटर लाल अ० जी व्यास प्राध्यापक के० एम० इन्स्टीट्यूट, आगरा की बलवती ह्वा थी कि किसी न किसी भाँति मेरा शोध कार्य पूरा हो ही जाय। उनके सत्परामर्श एवं सतत उत्साहवर्धन के लिए मैं चिर आभारी हूँ वे मेरे प्रणाम्य हैं। पूज्य पतिदेव श्री भरतकुमार जी व्यास के प्रति मैं किन शब्दों में अपना आभार व्यक्त करूँ? उन्होंने मुझे अनीगद रहकर शोध कार्य करने की पूरी

छूट देकर स्वयं अनेक कष्ट उठाये, किन्तु मेरी लक्ष्य-पूर्ति में आँच नहीं बाने दी ।

भारतेन्दु पर प्रस्तुत शोध ग्रन्थ को पूरा करने में पर्याप्त समय लगा - "देर आयद दुरुस्त आयद" के अनुसार यह विन्म्व वरदान स्वरूप ही रहा । पुष्टिमागीय परिवार मेरे निज संस्कार और पितृ चरण की अवसर प्रेरणा, साधना ने मुझे इस कार्य के सम्पादन में पूरा संबल, सहयोग और बल दिया है। माई गिरीश चन्द्र जी चौधरी भारतेन्दु भवन काशी के प्रति अपना अपरिमित आभार व्यक्त करके उनसे उक्त होना कदापि नहीं चाहती । भारतेन्दु जी की गुरु परम्परा खोजने में मुझे उनके पत्रों से अमृत-पूर्ण सहायता मिली है। इसी प्रकार पिताश्री के पुष्टिमागीय साहित्य के विशाल संग्रह ने मेरे कार्य को गति प्रदान की है। पितृत्वं तुल्य श्री त्रिभुवन सिंह जी की प्रेरणा, माई राम कृष्ण शर्मा का भारतेन्दु साहित्य के संग्रह में योगदान, कथमपि विस्मृत नहीं किया जा सकता ।

अन्त में गुरुवर डा० नजीर मुहम्मद जी रीडर हिन्दी विभाग के प्रति किन शब्दों में अपना आभार व्यक्त करूँ यदि वे अनवरत कृपा वर्षाण न करते तो यह कार्य कभी भी पूरा न होता । इस अवसर पर प्रिय माई डा० रामेश्वर दयाल जी का कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करती हूँ जिनके कारण मुझे पढ़ने लिखने, टंकण कराने में अपरिमित सहायता प्राप्त हुई है। वे मेरे परिवारी स्वजन वत् हैं, अतः धन्यवाद की औपचारिकता से उनके महान् श्रम का अवमूल्यन नहीं करना चाहती । माई डा० राजीव शुक्ल, जीव विज्ञान विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के सत्परामर्श, सहयोग के लिए तथा माई श्री फौज शुक्ल सहायक निदेशक फिन्माकिन के उत्साहवर्धक पत्रों के लिए जिनमें सदैव शोधकार्य को पूरा करने के लिए सदाग्रह रहता था ।

अन्त में दृष्टदेव कुल देवता श्री गोवर्धनधर के प्रति अपनी असीम प्रणतियाँ प्रस्तुत करती हूँ जिनके कृपा प्रसाद से भारतेन्दु की पुष्टि मक्ति पर मैं कुछ प्रकाश डाल सकी ।

शोध प्रबन्ध के विषयमें

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में विषय की सीमा, विषय का महत्त्व एवं विषय पर अबाधित हुए शोध कार्य के विवरण एवं वल्लभ संप्रदाय के सामान्य परिचय के अतिरिक्त सात अध्याय एवं अन्त में उपसंहार दिया गया है।

प्रथम अध्याय में पुष्टि मक्ति के स्वरूप को स्पष्ट करने की दृष्टि से उसका शास्त्रीय स्वरूप, उपास्य एवं उपास्य विषयक मान्यताएँ दी गई हैं। पुष्टि मार्ग में साकार के प्रति विशिष्ट आग्रह का कारण बताते हुए स्वरूप और मूर्ति में तथा मर्यादा पूजा और पुष्टिमार्गीय सेवा में मौलिक अन्तर स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है। भारतेन्दु का काव्य पुष्टि मक्ति प्रधान है। अतः पुष्टि मक्ति के तत्त्वों में दीक्षा, गुरु सेवा, स्वरूप सेवा, नामसेवा, सत्संग, कीर्तन की महत्ता आदि पर विचार किया गया है।

द्वितीय अध्याय में आधारभूत सिद्धान्त विवेचन की दृष्टि से शुद्धाद्वैत दर्शन के स्वरूप को स्पष्ट करने की चेष्टा में उसका विष्णु स्वामिमतानुवर्तित्व, शुद्धाद्वैत की शास्त्र सम्मत व्याख्या, अन्य मक्ति दर्शनों से तारतम्य, शुद्धाद्वैत की महत्ता के ही सन्दर्भ में ब्रह्म के निर्गुण, सगुण

कामेद , पूर्ण पुरुषोत्तमत्व एवं उसका विरुद्ध धर्मायत्त्व, विद्या, अविद्या, जीव के प्रवाह, पुष्टि मर्यादा मेद एवं जगत् संसार के मौलिक अन्तर को स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है। उपर्युक्त दोनों अध्याय भारतेन्दु काव्य के आधारभूत सिद्धान्तों की दृष्टि से हैं।

तृतीय अध्याय में वल्लभाचार्य कालीन काशी का परिचय देने की चेष्टा की गई है। आचार्य वल्लभ के पिता काशी किस प्रकार आए , विद्वत् समाज के साथ वल्लभ का शास्त्रार्थ, काशी में आचार्य की तीन बैठकें, संप्रदाय का प्रचार, भारतेन्दु के समय तक पुष्टिमार्गीय समाज का प्रचार, प्रसार एवं भारतेन्दु के गुरु घराने का आगमन, सुकुन्दराय, गोपाल लाल की स्थापना आदि । विषय दिए गए हैं ।

चतुर्थ अध्याय में भारतेन्दु के पूर्वज एवं स्वयं भारतेन्दु किस प्रकार पुष्टिमार्ग के संघर्ष में आए और दीक्षित हुए, भारतेन्दु के यहाँ घर में उपास्य की स्थापना तथा सेवा का स्वरूप आदि मौलिक तथ्यों को सप्रमाण दिया गया है। इस दृष्टि से भारतेन्दु पर लिखे गए ग्रंथों में इन तथ्यों का उद्घाटन नहीं मिलता । प्रस्तुत प्रबन्ध की यही अपनी विशेषता है।

पाँचवें अध्याय में भारतेन्दु के साहित्य का सामान्य परिचय देते हुए उनके काव्य, नाटकों, निबन्धों , पत्र- पत्रिकाओं आदि पर विचार किया गया है। विशेषकर उनके काव्य ग्रंथों का परिचय दिया गया है।

षष्ठ अध्याय में भारतेन्दु के काव्य ग्रंथों पर

पुष्टि मक्ति का प्रभाव दिखाने की चेष्टा की गई है। उनके लगभग फास ग्रंथों पर पुष्टि मक्ति के प्रभाव विद्यमान है। प्रस्तुत अध्याय एक प्रकार से प्रबन्ध का केन्द्रीय अध्याय है।

सप्तम अध्याय में भारतेन्दु के शुद्धादित दर्शन सम्बन्धी विचारों को देते हुए उपसंहार में पुनः उनके पुष्टिमार्गीय चिन्तन की चर्चा की गई है।

तात्पर्य इतना ही कि संपूर्ण प्रबन्ध में अपने लक्ष्य पर ही दृष्टि को केन्द्रित रखने की चेष्टा की गई है। "नामून" लिखते किंचित् "के सिद्धान्त का मरसक अनुपालन किया गया है। प्रबन्ध को न तो आवश्यक विस्तार देने की चेष्टा की गई है, न ही आवश्यक की उपेक्षा की गई है। अन्त में आधारभूत ग्रंथों की सूची प्रस्तुत करते हुए आवश्यक मती अथवा प्रयोजन विरहित पुस्तकों की नामावली से ग्रंथ संदर्भ सूची को सर्वथा मुक्त रखा गया है।

श्रीमती प्रतिभा (व्यास)

विषयानुक्रमिका

आत्म निवेदन

विषय प्रवेश

पृ० सं० १-१०

विषय की सीमा, विषय का महत्त्व,
वल्लभ संप्रदाय का सामान्य परिचय

प्रथम अध्याय : पुष्टि मक्ति का स्वरूप

१- ४४

१- पुष्टि मक्ति के तत्त्व

सहज दोष

देशज दोष

कालज दोष

संयोगज दोष

स्पर्शज दोष

२- अन्यान्य , प्रेम और अनुग्रह

३- उपास्य और सेवा

४- उपास्य का आश्रय

५- भावोपासना

द्वितीय अध्याय : शुद्धादित दर्शन का स्वरूप

४५- ६६

आचार्य रामानुज का सिद्धान्त : विशिष्टादित

आचार्य मध्व का सिद्धान्त : द्वैत
निम्बार्क का सिद्धान्त : द्वैताद्वैत
चैतन्य का सिद्धान्त : अचिन्त्य भेदामेद
आचार्य वल्लभ का सिद्धान्त : शुद्धाद्वैत दर्शन
शुद्धाद्वैत दर्शन में जीव

,, जगत्

जगत् और संसार का ध्येय
शुद्धाद्वैत दर्शन में माया

तृतीय अध्याय : महाप्रभु वल्लभाचार्यकालीन काशी

६६ - ८८

भारतेन्दुकालीन काशी

चतुर्थ अध्याय : भारतेन्दु और पुष्टि सम्प्रदाय

८८ - १२४

भारतेन्दु जी की गुरु परंपरा
तदीय नामांकित अनन्य वीर वैष्णव समाज
का प्रतिज्ञा पत्र

पंचम अध्याय : भारतेन्दु साहित्य का सामान्य परिचय

१२४ - १६६

(अ) भारतेन्दु के काव्य

- १- प्रेममालिका
- २- प्रेम सरोवर
- ३- प्रेमाशुवर्णाब्जा
- ४- प्रेम माधुरी
- ५- प्रेम प्रलाप
- ६- प्रेम तरंग
- ७- सतसई सिंगार
- ८- होली

- ६- मधुसूदन
- १०- वर्षा विनोद
- ११- विनय प्रेम पत्रासा
- १२- कृष्ण चरित
- १३- राग संग्रह

(ब) माहात्म्य विषयक काव्य

- १- भक्त सर्वस्व
- २- उत्तरार्द्ध भक्तमाल
- ३- फूलों का गुच्छा
- ४- जैन कुतूहल
- ५- वैशाख माहात्म्य
- ६- कार्तिक स्नान
- ७- गीत गोविन्दानंद

(स) देवस्तुति परक काव्य

- २- भारतेन्दु जी के नाटक
- ३- भारतेन्दु जी के आख्यायिका और उपन्यास
- ४- भारतेन्दु का स्तौत्र साहित्य
- ५- भारतेन्दु जी का हास परिहास पूर्ण साहित्य
- ६- भारतेन्दु का राजभक्तिपरक साहित्य
- ७- भारतेन्दु जीके धर्म और इतिहासपरक ग्रंथ
- ८- भारतेन्दु का सम्पादित सर्व संगृहीत कार्य
- ९- भारतेन्दु का स्फुट निबन्ध लेख साहित्य

भारतेन्दु का विशुद्ध पुष्टि मार्गीय साहित्य

भारतेन्दु के पुष्टिमार्गीय काव्य ग्रंथ

षष्ठ अध्याय : भारतेन्दु साहित्य पर पुष्टि भक्ति का प्रभाव १६८-२४८

भगवत्सेवा

नामस्मरण

प्रेम साधना एवं आसक्ति

अनन्यता

सत्संग

भारतेन्दुकाव्य में सेव्य की चर्चा

भारतेन्दु के साहित्य में पुष्टिमार्गीय भक्ति के तत्त्वों
का प्रतिफलन

नाम निवेदन एवं दीक्षा

परम तत्त्व के रूप में श्रीकृष्ण और उनकी आह्वादिनी
शक्ति श्री राधा की भारतेन्दु साहित्य में चर्चा

भारतेन्दु काव्य में विरहानुभूति

प्रबोधिनी में सेव्य

स्वरूप चिन्तन में सेव्य चर्चा

श्रीनाथ स्तुति

सर्वोत्तम स्तोत्र

वेणुगीति

भारतेन्दु के काव्य में स्वामिनी भाव एवं स्वामिनियाँ

भक्त सर्वस्व

प्रेममालिका

कार्तिक स्नान

प्रेमाश्रुवर्णन

प्रेम माधुरी

प्रेम तरंग

प्रेम प्रलाप

गीत गोविंदानंद

सतसई सिंगार

होली

मधुसूक्त

राग संग्रह

भारतेन्दु के ग्रंथों में अन्य स्वामिनियाँ

चंद्रावली

स्वामिनी ललिता

श्री यमुना

भारतेन्दु काव्य में आचार्य वल्म

गीता एवं भागवत

पुष्टि मार्ग के प्रकीर्ण प्रसंग

बैसी

हटरी

घोषसीमंतिनी एवं गोपीजनों के प्रति पूज्य भाव

सप्तम अध्याय : भारतेन्दु के साहित्य पर शुद्धाद्वैत दर्शन का प्रभाव २५० - २६५

भारतेन्दु के साहित्य में ब्रह्म का स्वरूप

भारतेन्दु की जीव चर्चा

जगत

माया

लीला

उपसंहार

परिशिष्ट

१- संदर्भ ग्रंथ २-अन्य ग्रंथ ३- फोटो स्टेट प्रतियाँ

२५५-२६०

२६१-२८२

विषय प्रवेश

विषय प्रवेश

विषय की सीमा

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक युग के आदि मनु माने जाते हैं। काव्य, नाटक, उपन्यास, आख्यायिका, स्तौत्र साहित्य, अनुवाद, परिहास, धर्म, इतिहास माहात्म्य- साहित्य, ऐतिहासिक ग्रंथ, स्फुट लेख, व्याख्यान, यात्रा, संपादन आदि सभी क्षेत्रों में उनकी बहुमुखी प्रतिभा ने अपनी दिव्य ज्योति विकीर्ण की है। एक प्रकार से वे आधुनिक युग के प्रष्टा थे, निर्माता थे, और थे दिशा- बोध देने वाले युग के वात्मीकि। उनके पूर्ण अपूर्ण साहित्य का प्रकाशन हुआ और उस पर हुए अनेक शोध कार्य लगभग सभी शोध कार्य शुद्ध साहित्यिक दृष्टिकोण को लेकर हुए। साहित्यिक दृष्टिकोण के साथ उनकी आस्तिकता धर्म भावना, परंपरागत विश्वासों को लेकर अथावधि कोई कार्य देखने में नहीं आया। वस्तुतः वे कट्टर ईश्वरवादी सगुण साकारोपासक थे और थे पुष्टिमार्गीय वैष्णव जिन्होंने पुष्टि, भक्ति एवं दर्शन की विसृष्टि लेकर उसका गहन, मनन एवं अध्ययन किया था। वे चौसम्बा काशीस्थ पुष्टिमार्गीय हवेली श्री सुकुन्दराय गोपाल लाल जी के मंदिर से संबद्ध थे। अपने समकालीन गोस्वामी जी से दीक्षित थे। अतः उन्होंने पुष्टि

साहित्य का अध्ययन बड़े मनोयोग से किया था। उसी का परिणाम था कि उनके साहित्य पर जिस कोमलता, सहिष्णुता की गहरी छाप है, वह उनके हृदय स्थित पुष्टि भक्ति भावना का परिणाम है।

भारतेन्दु के लगभग २० नाटक कतिपय आख्यायिका एवं उपन्यासों के अतिरिक्त १८ काव्य रचनाएँ, ८ स्तोत्र कतिपय अनुवाद एवं अन्य धर्म, इतिहास माहात्म्य ग्रंथों के गहरे अनुशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि उनकी पुष्टिमार्ग में गहरी आस्था थी। यह आस्था अन्ध विश्वास का रूप लिए नहीं अपितु अत्यन्त जागृत एवं विवेकमयी थी। भारतेन्दु-साहित्य के अध्येताओं से उनका यह स्वरूप प्रायः ओझल हो गया और उनके ग्रंथों के अनुशीलन में उनकी काव्यगत प्रतिभा सौन्दर्य बोध एवं प्रत्युत्पन्न-मत्तित्व पर ही दृष्टि रही।

विषय का महत्त्व

अभावधि भारतेन्दु पर किये गए शोध - कार्यों का स्वरूप प्रायः उनकी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय ही रहा है। आचार्य बल्लभ एवं गोस्वामी विठ्ठलेश से लेकर उनके समसामयिक गोस्वामियों तक जो पुष्टि भक्ति की चली जाती परंपरा रही थी, उससे वे कितने जुड़े हुए थे यह उनके नाटक काव्य ग्रंथ, एवं स्तोत्र साहित्य के अनुशीलन से स्पष्ट प्रकट हो जाता है।

प्रस्तुत विषय- "भारतेन्दु के साहित्य पर पुष्टि भक्ति एवं दर्शन का प्रभाव" इसी दृष्टि से चयन किया गया है।

कि भारतेन्दु के साहित्य का यह ंग भी अकूता न रह जाय । उनकी चंद्रा-
वली नाटिका, गीत गोविन्दानन्द, प्रेम माधुरी, मानलीला, कृष्णलीला,
प्रातःसमीरण, कृष्ण चरित्र, उरहना, तन्मय लीला, होली लीला,
सर्वोत्तम स्तोत्र, प्रातःस्मरण, मंगलपाठ, स्वरूप चिन्तन प्रबोधिनी,
श्रीनाथाष्टक, तदीय सर्वस्व, श्री बल्लभाचार्य कृत चतुश्चलोकी, वैष्णव
सर्वस्व, बल्लमीय सर्वस्व, युगल सर्वस्व, उत्तरार्ध भक्तमाल एवं अन्य फुटकर
लेख आदि पुष्टि भक्ति एवं दर्शन से कितने प्रभावित हैं यही प्रस्तुत शोध-
कार्य में दिखाने की चेष्टा की गई है।

भारतेन्दु पर अभावधि जितने शोध कार्य
हुए हैं, उनकी मीमांसा करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि अध्येताओं अथवा
शोधकर्ताओं का इस दिशा में ध्यान ही नहीं गया अथवा भारतेन्दु साहित्य
के इस पक्ष की जानकारी नष्ट हो चुकी है।

भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में भारतेन्दु
अथवा उनसे संबन्धित सत्रह अठारह शोध ग्रंथ विभिन्न विश्वविद्यालयों में लिखे
गए हैं, अधिकांश शोध ग्रंथ उनके अथवा तत्कालीन नाटकों, नाट्य-शिल्प समा-
जिक स्थिति से सम्बन्धित हैं। उनके कवि कर्म के मूल में जो सिद्धान्त सुकोमल
भाव धारा बहती रही है उसकी चर्चा कहीं देखने को नहीं मिली। न उनकी
गंभीर आस्थामयी वास्तविकता पर विश्लेषणात्मक दृष्टि से विचार किया
गया। नहीं उनके भगवद् विश्वास की मूल परंपरा पर दृष्टि डाली गयी।
इस दृष्टिकोण से प्रस्तुत प्रबन्ध अपनी सीमाओं में सर्वथा मौलिक सिद्ध होता
है।

उपरोक्त कथन की पुष्टि में भारतेन्दु पर

अथावधि किये गए विभिन्न विश्वविद्यालयों के शोध प्रबन्धों का संक्षिप्त विवरण देना अनुचित न होगा ।

सन् १९५७ में श्री गोपीनाथ तिवारी ने भारतेन्दु-कालीन नाटक साहित्य पर एक ग्रन्थ लिखा जिसमें विद्वद् नाट्य-साहित्य की चर्चा है और नाटकों की विकास गाथा देते हुए उस काल के नाट्य साहित्य पर विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से विचार किया गया है। सन् १९५८ में श्री राम गोपाल चतुर्वेदी ने पत्रकारिता का इतिहास प्रस्तुत करते हुए भारतेन्दु के और भारतेन्दुकालीन पत्रकारिता पर विवेचनात्मक दृष्टिकोण से विचार किया है। सन् १९५८ में डा० श्रीपति शर्मा ने हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करते हुए भारतेन्दुकालीन नाटकों की भी चर्चा की है। सन् १९६६ में डा० वंश गोपाल ने भारतेन्दु युगीन नाट्य साहित्य में सांस्कृतिक तत्त्व शीर्षक से अपना शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया । इसमें भारतेन्दु के नाटकों में केवल सांस्कृतिक-तत्त्वों की चर्चा की गई है, उनकी धार्मिक आस्था पर कोई विचार नहीं किया गया । सन् १९७४ में डा० सुनीति मिश्रा ने आगरा विश्वविद्यालय में अपना शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया । शीर्षक था- " भारतेन्दु के साहित्य में प्रतिबिम्बित समाज " : एक समीक्षात्मक अध्ययन " जैसा कि शोध प्रबन्ध प्रब के नाम से ही स्पष्ट है विदुषी लेखिका की दृष्टि तत्कालीन समाज के चित्रण पर ही सीमित रही । इसमें भी उनकी धर्म परम्परा अथवा आस्था पर विचार नहीं किया गया ।

डॉ० लिट् के लिए प्रस्तुत किए गए शोध प्रबन्ध हिन्दी पत्रकारिता के विकास में काशी और प्रयाग का योगदान (१९५० तक)

मैं विद्वान् लेखक ने पत्रकारिता के विकास पर जम्हर विचार किया है।
 और भारतेन्दु की पत्रकारिता का बड़ा ही मनोरम विश्लेषण किया है।
 प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का भी भारतेन्दु की आस्तिक विचारधारा से कोई सम्बन्ध
 नहीं है। एक अन्य ग्रन्थ ' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ' शिव नारायण बोहरा
 ने प्रस्तुत किया है इस ग्रन्थ में भी भारतेन्दु की कृतियों में पुष्टि भक्ति एवं
 दर्शन पर अपेक्षित विचार किया, विश्लेषण नहीं। इसी प्रकार श्री
 वीरेन्द्र कुमार शुक्ल द्वारा लिखा गया शोध प्रबन्ध ' भारतेन्दु का नाट्य
 साहित्य में नाट्य साहित्य पर ही विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण रखा गया
 है। भारतेन्दु की धर्म परम्परा से लेखक ने कोई सरोकार नहीं रखा है।
 श्री अरविन्द कुमार देसाई के शोध प्रबन्ध भारतेन्दु और नर्मद : एक तुलनात्मक
 अध्ययन में विद्वान् लेखक अपनी तुलनात्मक दृष्टिकोण की सीमा में ही बंधा
 रहा है। भारतेन्दु के पुष्टिमार्गीय दृष्टिकोण पर उसने कोई विचार तक
 नहीं किया। श्री अविनाश चन्द्र अग्रवाल का ग्रन्थ भारतेन्दु युगीन हिन्दी
 कवि में शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टिकोण ही चला है। श्री परशुराम शुक्ल विरही
 के ग्रन्थ ' भारतेन्दु से १९५० तक की कविता का अध्ययन ' में आलोचनात्मक
 दृष्टिकोण ही लेखक का रहा है। श्री मानुदेव शुक्ल के ग्रन्थ ' भारतेन्दु
 युग के नाटककार में नाटक के विकास-क्रम के साथ नाटककारों का विश्लेष-
 णात्मक परिचय दिया गया है। वासुदेव नन्दन प्रसाद का भारतेन्दुकालीन
 नाटक और रंगमंच भी लगभग वैसा ही ग्रन्थ है, जैसा कि श्री मानुदेव शुक्ल
 का। श्रीमती कमला शर्मा का शोध प्रबन्ध ' आधुनिक हिन्दी नाटकों में
 नारी चित्रण (बाबू हरिश्चन्द्र से लेकर अक्षय तक ' में भारतेन्दु के नारी
 पात्रों का चरित- विश्लेषण किया गया है। इस शोध प्रबन्ध की भी अपनी
 सीमा रही है। इसी प्रकार श्री शान्ति देवी बत्रा का शोध प्रबन्ध हिन्दी
 नाटक की शिल्प विधि का विकास (भारतेन्दु युग से १९५५ तक) नाटक

की ' शिल्प विधि तक ही सीमित रहा है। श्री रामविशाल मनसोरिया का शोध प्रबन्ध 'भारतेन्दु युग की काव्य भाषा का अनुशौलन भाषा के अनुशौलन में ही सीमित रहा है। श्री मातादीन शर्मा का शोध प्रबन्ध 'भारतेन्दुयुगीन साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन' शीर्षक से प्रस्तुत किया गया शोध प्रबन्ध समाजशास्त्रीय अध्ययन ही प्रस्तुत करता है अन्य कुछ नहीं। श्री विमलेश कान्ती वर्मा का 'भारतेन्दु युगीन हिन्दी काव्य में लोक तत्त्व' लोकतात्त्विक अध्ययन का सुपरिणाम है। इसी प्रकार डा० राम विलास शर्मा का मौलिक ग्रंथ 'भारतेन्दुकालीन पत्रकारिता' उस युग की पत्रकारिता का सजग चर्चा करता है।

तात्पर्य इतना ही है कि उक्त सौलह, सत्रह शोध प्रबन्धों एवं ग्रंथों की अपनी अपनी सीमाएँ हैं। अतः इन शोध प्रबन्धों से यह वाशा रखना अनुचित ही होगा कि वे भारतेन्दु और उनकी परम्परागत पुष्टिमार्गीय भाव आराधना की चर्चा करते। इस दृष्टिकोण से प्रस्तुत शोध प्रबन्ध अपनी सीमाओं में नितान्त मौलिक और अभावधि - अकूता ही हैं। सम्भवतः भारतेन्दु और उनके युग पर विविध दृष्टिकोण से लिखने वाले मनीषी, विद्वानों में यह आवश्यक नहीं सम्भत्ता कि वे उनकी पारम्परिक धार्मिक आस्था किंवा भावोपासना पर विचार करते परन्तु भारतेन्दु साहित्य में बीज रूप से विद्यमान उनकी पुष्टिमार्गीय भक्ति के दृष्टिकोण की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसी दृष्टि से प्रस्तुत प्रयास है।

वल्म सम्प्रदाय का सामान्य परिचय

भारतीय भक्ति- साधना के इतिहास में

आचार्य शंकर के उपरान्त जिन भक्ति सम्प्रदायों का क्रमशः उदय हुआ उनमें सबसे पार्वती सम्प्रदाय वल्लभ सम्प्रदाय है। यद्यपि वह विष्णुस्वामी मतानुवर्ती सम्प्रदाय ही कहा जाता है, किन्तु आचार्य वल्लभ इस सम्प्रदाय के समुद्धर्ता हैं इसलिए यह भक्ति-सम्प्रदाय आचार्य वल्लभ के ही नाम से जान पड़ा। विष्णु स्वामी के समय के विषय में विद्वान् अधावधि स्वमत नहीं है। विष्णु स्वामी का व्यक्तित्व स्वयं एक विकट समस्या है जिसका उचित प्रमाणों के आधार पर अभी तक यथार्थ समाधान नहीं हो पाया। उनका व्यक्तित्व तथा ऐतिहासिक अस्तित्व अज्ञात की गहन तमिस्रा में अभी तक अज्ञात पड़ा हुआ है।

डा० बलदेव उपाध्याय के शब्दों में -

“ विष्णु स्वामी के देश तथा काल की यथार्थ विवेचना अभी तक नहीं हो पाई है। अनुमान की निर्मल भित्ति पर उनका परिचय अवश्य खड़ा किया गया है। यह परिचय कल्पना के आवरण की भेद कर सत्यता की भूमि पर नहीं आ सका है। ”

कहा जाता है कि विष्णु स्वामी ब्रविद् देश के चाप्रिय राजा के ब्राह्मण मन्त्री के सुपुत्र थे। शैशव से ही उनकी चित्त-वृत्ति अद्यात्म की ओर लग गयी थी। अन्तर्यामी भगवान् के साक्षात्कार करने की उनके हृदय में बड़ी इच्छा थी। अतः उनकी तीव्र लालसा के कारण उनकी पूर्ण भी हुई और भगवान् ने उन्हें उपदेश भी दिया कि साकार-निराकार दोनों ही मेरे रूप हैं अपनी लीला के आस्वादन के निमित्त ही मैं साकार रूप धारण करता हूँ। मेरी भक्ति ही इस दुस्तर जैसार सागर से तरणोपाय

है । अतः विष्णु स्वामी ने भगवान् कृष्ण की बाल मूर्ति की प्रतिष्ठा कर उसी की उपासना का अपने अनुयायियों को उपदेश दिया । उनकी ही शिष्य परम्परा में आचार्य बित्त्वमंगल हुए जिन्होंने स्वयं वल्लभाचार्य को विष्णु स्वामी के शरण में आने का आदेश दिया । यही कारण है कि सम्प्रदाय प्रदीप ^१ के लेखक ने लिखा है :

“ श्रीसम्प्रदाय प्रदीपे विष्णुस्वामिस्नेहपात्रे
बित्त्वमंगलावर्तनी , श्री वल्लभदीपशिखे, तन्मार्गपथिकजन-
तमो निवृत्तौ । ” १

आचार्य बित्त्वमंगल का समय विद्वानों ने अष्टम शती भाग है ^२ और आचार्य का १६ वीं शताब्दी । अतः आचार्य ने विष्णु स्वामी के शुद्धाद्वैती सिद्धान्त के दर्शन के चोत्र में स्वीकार किया और भक्ति के चोत्र में पुष्टिमार्ग यह सम्प्रदाय रुद्र सम्प्रदाय के नाम से भी विख्यात है। प्रसिद्ध सैत त्रिलोचन, नामदेव, ज्ञानदेव आदि विख्यात सैत हसी मार्ग के अनुयायी थे ^३ ।

इस दृष्टि से विष्णु स्वामी का शुद्धाद्वैती सम्प्रदाय महाराष्ट्र सैत ज्ञानदेव पूर्व सिद्ध होता है। शुद्धाद्वैत सिद्धान्त में चार प्रस्थान माने गए हैं। वे हैं - वेद, गीता, ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भागवत ^४ ।

१- 'सम्प्रदाय प्रदीपालोक - प्रो० कण्ठमणिशास्त्री पृ० १३ प्र० सं०

२- भागवत सम्प्रदाय पृ० ३६६

३- भक्तमाल नामादास पृ० ४८

४- वेदाः श्रीकृष्णवाक्या निव्याससूत्राणि चैव हि ।

समाधि भाषा व्यासस्य प्रमाणतच्चतुष्टयम् ॥

दी० नि० शा० प्र० ७

इसके अनुसार माया अलिप्त ब्रह्म साक्षात् पुरुषोत्तम ही परमतत्त्व है। वे ही अपने सदैव में जगत् रूप हैं और अनन्त जीव उनसे ही अग्नि के स्फुरण की तरह से व्युच्चरित होते हैं। उसमें परब्रह्म के आनन्दोदि गुणों का तिरो-
 धान है। जगत् का आधिमात्र, तिरोभाव परब्रह्म से ही होता है, जिस प्रकार गंगा का प्रवाहमान जल उसका आधिमात्रिक रूप है। मंदिर में मूर्तिरूप उसका आध्यात्मिक रूप है और गंगा का सर्वत्र व्यापक रूप देवी रूप उसका आधि-
 दैविक रूप है, उसी प्रकार जगत् परब्रह्म का आधिमात्रिक रूप है अक्षर ब्रह्म, उसका आध्यात्मिक रूप है और परब्रह्म पुरुषोत्तम उसका आधिदैविक रूप है। सच्चिदानन्द रूप पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ही है।^२

पुरुषोत्तम लीला के कारण ही साकार होते हैं। वल्लभ माया को स्वीकार नहीं करते। उनका सिद्धान्त है 'माया सम्बन्ध रहित शुद्ध'^३ इसीलिए उनका सिद्धान्त शुद्धाद्वैत कहलाता है।

पुष्टिमार्ग आचार्य का साधन पंच पुष्टि^४ मार्ग कहलाता है। आचार्य ने पुष्टि शब्द श्रीमद्भागवत से ग्रहण किया है। पुष्टि शब्द का अर्थ है अनुग्रह। 'पोषणं तदनुग्रहः' (भागवत २-१०)। पुष्टिमार्ग की यह विलक्षणता है कि वह भगवान् के एकमात्र अनुग्रह से ही साध्य है। भक्ति दो प्रकार की है - मर्यादा भक्ति एवं पुष्टि भक्ति। मर्यादा में फलाकांक्षा रहती है पुष्टि में फलाकांक्षा नहीं रहती। पुष्टि

१- अणुभाष्य - अशौनाना व्यवदेशात् (२।३।४३)

२- सिद्धान्त मुक्तावली - श्लोक ७-८-६-१०

३- सिद्धान्तमार्तण्ड

४- श्रीमद्भागवत २।१०।२-३

मक्ति के आकर्षण से ही यह मक्ति मार्ग, पुष्टि मार्ग कथवा बल्लम संप्रदाय कहलाया । गत ५०० वर्षों से यह सम्प्रदाय विकास पथ पर अग्रसर है।

प्रथम अध्याय

पुष्टि मन्त्र का स्वरूप

प्रथम अध्याय

पुष्टि मक्ति का स्वरूप

भारतेन्दु के साहित्य पर पुष्टि मक्ति का प्रभाव दिखाने से पूर्व पुष्टि मक्ति का स्वरूप उसकी महत्ता एवं उसकी लोकप्रियता पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। यह तो सर्वविदित है कि आचार्य प्रवर्तित पुष्टिमार्गीय मक्ति, भारतीय मक्ति परम्परा के इतिहास में अन्तिम मक्ति सिद्धान्त है। साथ ही इसका राजमार्ग सभी के लिए सुसाध्य है। पुष्टि मक्ति बोधा में जाति पाँति वर्णाश्रम आदि का कोई, न तो बंधन है, न किसी प्रकार की वर्जना। आचार्य को यह मनीषा विदित था कि बुद्धि प्रधान मनुष्य समुदाय जो ज्ञान मार्ग का अवलम्बन लेंगे, वे शुद्धाद्वैत-ब्रह्मवाद के गहन बोध से तृप्त होकर संसार जगत् अज्ञान से मुक्ति पा लेंगे। किन्तु शास्त्र ज्ञान विरहित अपठित मानव समुदाय जो स्वभाव से हृदय प्रधान और भावुक होंगे, उनकी आत्म लाभ मक्ति से ही हो सकेगा। आचार्य की इस दृष्टि से उन्हें प्रेम प्रधान पुष्टिमार्गीय मक्ति के प्रचार के लिए प्रेरित किया। प्रेम तत्त्व मानवमात्र का वैश्वीय-वैश्व-धनीय-तत्त्व है, जिसमें वह परम शान्ति पाता है और सन्तोष का अनुभव करता है। आचार्य ने हृदय प्रधान भावुक मानव समुदाय के सामने यह तथ्य

प्रस्तुत किया कि जप तपादि शास्त्रीय साधनों से विरहित, जोक वेद से
अमित्र, प्राणियों के चिर सर्वथा अप्राप्य परम तत्त्व स्वरूप श्रृष्टि, यदि सुलभ हो सकते हैं, तो प्रेम से, प्रेम के कारण ही श्रृष्टि जीव पर
कृपा अथवा अनुग्रह करते हैं अतः जीव का यह परम धर्म है कि वह श्रृष्टि
को **भजना** - प्रेम समर्पित करे, सभी भगवान् उस पर अनुग्रह करते हैं। अनुग्रह
भगवद् धर्म है। विरुद्ध प्रेम को ही आचार्य बल्लभ ने शुद्ध पुष्टि के नाम से
फ़ारार है। अर्थात् शुद्ध पुष्टि भक्ति में प्रेम तत्त्व ही प्रधान होता है।
आचार्य ने ऐसा विरुद्ध प्रेम ब्रजवासी गोपी जनों में अनुभव किया था।
इसीलिए उन्होंने गोपीजनों को पुष्टि भक्ति के गुरु रूप में स्वीकार किया
था।^१ गोपियों के प्रेम प्रधान साधन ही पुष्टि भक्ति के साधन हैं।^२

भगवद् सम्बन्धी अथवा देव विषयक
रति को भाव कहते हैं। यह भाव, भावना से ही पुष्ट होता है। विरुद्ध
प्रेम मूलतः भाव स्वरूप ही होता है। भावना, प्रेम-युक्त क्रियात्मक चिन्तन
है। इस क्रियात्मक चिन्तन से भाव को सतत पोषण मिलता रहता है।^४
भाव सिद्धि आचार्य के मत से प्रमातिरिक्त किसी भी साधन से प्राप्त नहीं
हो सकती। आचार्य ने प्रेम भावना से परिपूर्ण गोपियों की सेवा को अपने

१- पुष्ट्या विमिश्राः सर्वज्ञाः प्रवाहेण क्रियारता ।

मर्यादा गुणज्ञास्ते रुद्धाः प्रेम्णाति दुर्लभाः ॥

- पुष्टिप्रवाह मर्यादा भेद १२

२- गोपिकाः प्रीयता गुरुवः साधनं च तत् ।

- सन्यास निर्णय श्लोक सं० ८

३- भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्या दिष्यते ॥

- उपरिक्त

४- भावे भावनया सिद्ध साधनं नान्या दिष्यते ॥

- उपरिक्त

पुष्टिमार्ग का लक्ष्य बताया । गोपी प्रेम के भी बान्धवों ने हीन भेद दिए हैं :

१- लोक वेद मार्ग का परिणाम गोपानी विवाहित गोपियाँ सच्ची पुष्टि की बिकारिणी हैं, के सर्व प्रेमों का त्यागपूर्वक शुद्ध प्रेम से केवल पुरुषोत्तम का ही साक्षात् मज्जा किया करती हैं। इसलिये ये "पुष्टि-पुष्टि" रूप हैं। इस प्रकार के मज्जा में परकीया भावना वाले उत्पुष्ट प्रेम व्यसन की स्थिति रहती है।

दूसरी "गोपी" ब्रजवा गुणस्थितियों के कात्यायिनी व्रत आदि से पुरुषोत्तम का "परीक्षा" मज्जा किया है। इसलिये ये पुष्टि मर्यादा रूप हैं। इस प्रकार के मज्जा में साक्षात्कार प्राप्त होने के सुदृढ़ स्नेह स्वकीय स्त्री भावना वाली बाधित की स्थिति रहती है।

तीसरी "प्रजगितायी" ने पुरुषोत्तम का लोकवत् बान्धव से मज्जा किया है, इसलिये ये "पुष्टि प्रकाश" रूप हैं। इस प्रकार के मज्जा में केवल वात्सल्य भावना की स्थिति रहती है।

बान्धवों के इस गोपी विवाह के दृष्टि से प्रेम तत्त्व की ही प्रधानता है। और प्रेम के ही भेद उपदेश के आधार पर उपर्युक्त वर्गीकरण है। गोपी प्रेम में त्याग भाव की प्रधानता है। जो कि उनका त्याग मज्जितमार्ग में सैन्यास कहा गया । और के अर्थमार्गीय सैन्यास

१- गोपीगता पुष्टिः । गोपीषु मर्यादा । प्रजगता पु प्रकाशः ।

गोपीगतास्तु सुवतसुवताः सुवतं गृहे सुवतं या निस्ताः हि वा ना ना
तो लोकवेदमयसुवतो या निस्ता सुवता वृद्धं भासापत्य वैमद गे न पिपसिध
वपुः पत्या कि स्का मर्यादार्था सुवता या निस्ता स्वानि प्रान्तिराधृत्य
केवलं श्री पुरुषोत्तममेव मज्जति । तस्मात्तासा पुष्टित्व ।

(भगवत्पौठिका)

कहा गया । शंकर के धर्म नागायि संन्यास से उनके भक्तिमार्ग की यही वि-
क्षाणता है कि उसमें स्त्री पुरुष का वा गृह त्याग नहीं करना पड़ता ।
जगत् से संन्यास नहीं करना पड़ता इस केवल गृहासक्ति एवं जगदासक्ति का
त्याग करना पड़ता है। मानव जीवन के लिए कल्याणकारी तीन मार्ग हैं :

१- कर्म मार्ग

२- ज्ञान मार्ग

३- भक्ति मार्ग

कर्म मार्ग के बावजूद भी मानव को जीवित नर
कर्म करने से मुक्ति नहीं मिलती । इसी प्रकार ज्ञानमार्ग की भी ज्ञान का
बाधक रहता है और वह ज्ञान के उच्चतम सोपान पर नहीं पहुँचा
है और पहुँचकर भी फल का भय रहता है। इसलिए आचार्य ने उत्तरा
प्रदेश में स्थित भगवान् को प्रत्यक्षा करने के लिए भक्ति साधना को ही सर्वो-
त्तम साधना माना है। अपने निरुपलब्ध ग्रन्थ में उन्होंने लिखा है कि
भगवान् के निरन्तर गुणगान करते रहने से वह कृपातु हो कर प्रकट हो जाते
हैं।

पुष्टिमार्गीय भक्ति का उद्देश्य है ' निरोध '।

निरोध से तात्पर्य है भक्त की चित्तवृत्ति भगवान् में लगना और भगवान् की
भक्त में । अर्थात् चित्तवृत्तियों का प्रपञ्चों से मुक्त होना । यह निरोध क्या
जीव को अपने साधन का से प्राप्त नहीं होती । परम भगवदीय संपत्तियों
की ही कृपा से होती है। अतः उनका संग करना ही समाधि निरोध प्राप्ति
का उपाय है। आचार्य ने इसीलिए जीवों की तीन कोटियाँ की हैं :

१- निरोध लक्षण - इति सं० ७८

१- प्रवाही

२- मर्यादा

३- पुष्टि

प्रवाही जीव वे हैं जो त्रिगुण के प्रवाह में पड़े हुए संसार प्रवाह में मग्न हैं। मर्यादा जीव वे हैं जो शास्त्रों के विधि निषेध के बन्धन में पड़े हुए शास्त्र मर्यादा पर आग्रह रखते हैं। पुष्टि जीव वे हैं जो भगवान् का अनुग्रह प्राप्त कर चुके होते हैं।

पुष्टि जीव भी चार प्रकार के हैं :

१- प्रवाह पुष्टि

२- मर्यादा पुष्टि

३- पुष्टि पुष्टि

४- शुद्ध पुष्टि

यह कहा जा चुका है कि शुद्ध पुष्टि गोपी जनों की मानी गयी है। शेष तीन प्रकार के पुष्टि भक्तों के लिए दीनता, सत्संग, श्रवण, कीर्तन आदि भक्ति के साधन उसकी तत्त्वदीयता देने वाले होते हैं। जीव की इन्द्रियाँ संसारवेश वाली हैं। उनको संसारीपन से मुक्त करने भगवान् में लगाने का उपाय बताते हुए आचार्य ने कहा है कि इन्द्रियों को जो जो सांसारिक वस्तुएँ प्रिय हों उनको भगवान् को समर्पित कर देना चाहिए। हस्तीनगर आचार्य ने समर्पण पर बहुत बल दिया है।

पुष्टि नक्षत्र के तत्त्व

१- दीक्षा

पुष्टिमार्गीय दीक्षा में दो प्रकार की

दीक्षा होती है :

१- नाम निवेदन तथा

२- आत्म निवेदन

नाम निवेदन में जन्म से ३२ वें दिन आचार्य द्वारा वैष्णव द्वारा बालक को नाम- निवेदन कराया जाता है जिसको शरण मन्त्र " कहते हैं। शरण मन्त्र आठ अक्षरों वाला " श्री कृष्ण शरणं मम " है ।

आत्म निवेदन वाली दीक्षा ब्रह्म सम्बन्ध कहते हैं। यह एक प्रकार से बड़ा महत्त्वपूर्ण समर्पण मन्त्र है। जिसका भाव है- " हजारों वर्षों का समय बीत गया । कृष्ण के वियोग जनित ताप बलेश के आनन्द से विरहित हो चुका हूँ। मैं भगवान् कृष्ण आपके लिए अपनी स्त्री, पुत्र, बंधु बांधव सहित अपनी इन्द्रियों और उनके धर्म अपना वित्त सहित अपने आपको समर्पित करता हूँ। मैं आपका दास हूँ, मैं आपका हूँ । "

यह ब्रह्म सम्बन्ध का मन्त्र आचार्य द्वारा ही लिया जा सकता है। इस प्रकार पुष्टि मार्ग में दुहेरी दीक्षा होती है। शरण मन्त्र में जीव के देशकाल जन्य पाँच प्रकार के दोष दूर होकर उसमें शुद्धता आती है और समर्पण मन्त्र की पात्रता प्राप्त होती है। पाँच प्रकार के दोष ये हैं :

१- सहज दोष

जो जन्म के साथ ही उत्पन्न होते हैं। जैसे-
काम, क्रोध आदि ।

२- देशज दोष

स्थान विशेष में रहने के कारण । जैसे-
म्लेच्छाक्रान्त, हिंसा प्रधान आदि ।

३- कालज दोष

युग धर्म के कारण हिंसा, अनृति, चोरी
हकैती का बढ़ जाना ।

४- संयोगज दोष

परिस्थितियों के कारण म्लेच्छ सेवा,
विवशतादि ।

५- स्पर्शज दोष

नित्य जीवन में अपवित्रता का समावेश
रहने के कारण दीक्षा अथवा ब्रह्म सम्बन्ध से उपर्युक्त पाँच दोष समाप्त
हो जाते हैं। अन्यथा इन दोषों की निवृत्ति नहीं होती । दोष निवृत्ति-
के उपरान्त पुनः दोष न लगे, स्तुतार्थ भक्त को भगवदर्पण करके ही उपभोग्य
वस्तुओं का ग्रहण करना चाहिए, तभी वह दोषों से मुक्त रह सकता है ।

आचार्य कहते हैं कि अन्यथा दोषों से मुक्ति हो ही नहीं सकती ।

“अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथंचन ।

पुष्टि मार्ग में निवेदन, दान और अर्पण तीनों की ही व्याख्या अलग अलग की गयी है।

(१) निवेदन से तात्पर्य इतना ही है कि उस वस्तु का नाम लेकर भगवान से प्रार्थना करना कि “यह वस्तु मेरी नहीं आफ़ी ही है । निवेदन के उपरान्त ही प्रसाद रूप में उसे ग्रहण करने का अधिकार रहता है।

(२) दान में धन अथवा कोई भी पदार्थ से अपनी सत्ता को विधि पूर्वक समाप्त कर देना और उस पर दूसरे की सत्ता करना अथवा करा देना दान कहलाता है।

(३) किसी वस्तु को सम्पादित करके स्वामी अथवा श्रेष्ठ के उपयोग के योग्य बना देना अथवा दे देना अर्पण अथवा समर्पण कहलाता है। तात्पर्य यह है कि दान की हुई वस्तु फिर हमारे उपयोग में नहीं आ सकती । किन्तु निवेदन की हुई वस्तु स्वामी के अर्पण के बाद प्रसाद रूप में सेवक के उपयोग में आ सकती है। तात्पर्य यह है कि निवेदन और अर्पण ये दोनों ही दान नहीं हैं।

आचार्य ने जीवों को सावधान किया है कि भगवान को भोगी हुई अथवा अर्ध मुक्त वस्तु का अर्पण नहीं करना चाहिए ।

इसलिए सम्पूर्ण समर्पण प्रारम्भ में ही उचित है। इसी प्रकार पुष्टि मार्ग में हल्की अथवा तुच्छ वस्तु का समर्पण भी अनुचित है। जो वस्तु हमें अतिशय प्रिय हो, जो लोक में अत्युत्तम हो जो उचित रूप से वर्जित की गयी हो जिसमें किसी का भाग न हो उसी का अर्पण करना चाहिए। पुष्टि मार्ग में भक्त को समर्पित वस्तु को प्रसाद रूप में ही ग्रहण करना उचित बताया गया है। परन्तु यदि भक्त रोगी हो जाये और उसे औषधि आदि लेनी पड़े तो वहाँ औषधि का समर्पण उचित नहीं है।

दान की हुई वस्तु का पुनर्ग्रहण नहीं है किन्तु भक्ति मार्ग में समर्पित वस्तु का प्रसाद रूप में ग्रहण उचित है। अन्य भक्ति मार्ग में सेवक भगवान की आज्ञा को महत्त्व देते हैं परन्तु पुष्टि मार्ग में आज्ञा से ऊपर भगवान के अभिप्राय को महत्त्व दिया जाता है। तात्पर्य यह है कि स्वामी की सेवा करते हुए कोई अपराध न बन पड़े। यह चिन्ता रहता ही पुष्टि भक्ति का रहस्य है। इतने पर भी यदि कोई अपराध बन जाये परन्तु उसका उद्देश्य प्रभु सेवा ही हो तो वह अपराध नहीं रहता। जिस प्रकार कि अन्य नदी नालों का जल गंगा में मिलकर गंगा जल ही हो जाता है।

कभी कभी भक्ति मार्ग में ऐसे अवसर अथवा प्रसंग आ जाते हैं कि भक्त से अपराध या दोष बन ही पड़ते हैं, ऐसे अवसरों पर भक्त की मानसिक स्थिति गिन्तनीय न हो तदर्थ आचार्य बल्लभ ने नवरत्न और अन्तःकरण प्रबोध दो ग्रन्थों की रचना की है। कितना ही भक्त सुदृढ़ मन हो पर वह कभी न कभी किसी न किसी प्रसंग पर चिन्तातुर हो ही जाता है चिन्ता का स्थान अन्तःकरण है। उस अन्तःकरण का शोधन करने से चिन्ता का नाश हो जाता है।

२- अनन्यता, प्रेम और अनुग्रह

भक्ति मार्ग में सर्व प्रथम उपास्य का निर्णय करना होता है। उपास्य के निर्णय हो जाने पर उसके प्रति अनन्यता का अभ्यास करना होता है। इस अभ्यास में दृष्ट के प्रति सर्वतोभावेन निर्भर रहकर सम्पूर्ण आत्म निवेदन अथवा समर्पण करना होता है। उस चरम प्रेमरूप से साधक को किसी भी प्रकार की ऐहिक अथवा आधुनिक - लौकिक अथवा पारलौकिक कामना नहीं रखनी होती है। केवल उसके प्रति शुद्ध प्रगाढ़ प्रेम ही पल्लवित करना होता है। यही पुष्टि-भक्ति की संचोप में पल्लवन प्रक्रिया है।

आचार्य वल्लभ ने इसको स्वशास्त्र कहा है।^१ अपने भक्ति मार्ग को इन्होंने नितान्त भावात्मक सिद्ध किया है और भाव-पीड़ा को ही एक वैज्ञानिक सरणि प्रदान की है। इस वैज्ञानिक सरणि के प्रतिपादन की चेष्टा ही उनके ग्रन्थ है।

पुष्टिमार्ग वह साधन मार्ग है, जो भगवान् के अनुग्रह प्राप्ति का मार्ग बतलाता है। संसार में तीन प्रकार के प्राणी होते हैं। एक वे जो रजोगुण-तमोगुण के प्रताह में बहते रहते हैं। और वेद मार्ग का उन्हें बोध नहीं रहता। दूसरे वे हैं जो वेद मर्यादा के बन्धन में सीमित अथवा मर्यादित रहकर संसार यात्रा करते हैं। तीसरे वे हैं जो भगवान् के प्रेम के लिए लालायित होकर भगवान् के अनुग्रह प्राप्ति की चेष्टा करते हैं और प्रेम लक्षणा भक्ति को साध्य और साधन दोनों ही मानकर भगवान् की

१- सर्व स्वशास्त्रसर्वस्व मया गुप्तं निरूपितम् ।

एतद् बुद्ध्वा विमुच्येत पुरुषः सर्वसंशयात् ॥

- सि० मु०

अहैतुकी कृपा के बल से उनके प्रगाढ़ प्रेम की याचना किया करते हैं यही पुष्टि मार्ग है। इस भक्ति मार्ग में जीव को सर्वस्व समर्पण करना होता है। समर्पण अथवा आत्म निवेदन की प्रक्रिया ही 'ब्रत सम्बन्ध' है। इस भक्ति मार्ग में किसी लौकिक पारमार्थिक वस्तु की कामना नहीं है। यदि किसी वस्तु की भक्त को इच्छा है भी, तो वह भगवान का विरह प्रधान प्रेम है। जिससे कि भक्त को उनका अनुदान चिन्तन बना रहे। बल्लभ परवर्ती पुष्टिमार्ग के महान् आचार्य प्रभुचरण श्री हरिराय जी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'श्री पुष्टि-मार्गलक्षणानि' में पुष्टिमार्ग की इक्कीस श्लोकों में व्याख्या की है। वे कहते हैं :

सर्व साधनराहित्यं फलाप्तौ यत्र साधनम् ।

फलं वा साधनं यत्र पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥ १

अर्थात् जिस मार्ग में लौकिक अथवा अलौकिक सभी साधनों का अभाव ही पूर्णानन्द स्वरूप श्रीकृष्णचन्द्र की प्राप्ति में साधन स्वरूप है, अर्थात् चरम दैन्य ही जहाँ साधन है वही पुष्टिमार्ग है। इस प्रकार पुष्टिमार्ग के अनेक लक्षणों को देते हुए हरिराय जी कहते हैं कि जिस मार्ग में लौकिक पार-लौकिक सिद्धियाँ भगवान् के अनुग्रह से ही साध्य हैं और जीव को अंगीकार करते समय जिस मार्ग में भगवान् उसकी योग्यता का विचार नहीं करते वही पुष्टिमार्ग है। समस्त वेद शास्त्र का तात्पर्य और धर्म की निष्ठा का लक्ष्य जहाँ एक मात्र भगवान् ही है, वही पुष्टि मार्ग है। जिस मार्ग में भगवान् की लौकिक लीलाएँ देखकर भी जीव को भगवान् के प्रति कभी हीन बुद्धि नहीं

१- श्री पुष्टि मार्ग लक्षणानि - श्लोक १

होती और साधक अपने प्रभु के सुख की कामना से वैदिक कर्मकाण्डादि की अपेक्षा नहीं रखता, वही पुष्टिमार्ग है। इसी प्रकार जीवों को अंगीकार करने में भगवान जीव के साधनों पर लेशमात्र विचार नहीं करते केवल अपनी इच्छा से ही उनको अपने सेवक रूप में अंगीकार करते हैं, वही पुष्टिमार्ग है। जहाँ भावातिरेक अवस्था में लोक वेद का भय लेशमात्र नहीं रहता और जहाँ पर काल कर्म स्वभाव आदि बाधक नहीं हो पाते वही पुष्टि मार्ग है। जिस मार्ग में भगवद् इच्छा ही फल रूपा है और भगवद् भक्ति ही जिस मार्ग में भगवान् का रूप सम्पत्ती जाती है वही पुष्टि मार्ग है। जिस मार्ग में जीव, देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण आदि का ममतापूर्वक रक्षण नहीं होता, किन्तु प्रभु के विरह में ही भगवद् स्मृति और उनसे मिलन के लिए शरीरादि की रक्षा की जाती है वही पुष्टिमार्ग है। जिस मार्ग में भगवान् के उपकारों की अपेक्षा न रखकर अपने ही भाव का पोषण किया जाता है, उसे ही पुष्टिमार्ग कहते हैं। समस्त विषयों का त्याग, सम्पूर्ण भाव से देहादि का समर्पण, पश्चात्तापपूर्ण चरमदेन्य, प्रभु के वियोग की दुःखानुभूति जहाँ एक साथ मिले, वही पुष्टिमार्ग है।

तात्पर्य यह हुआ कि पुष्टिमार्ग भगवान से अनुग्रह की अपेक्षा रखता है^१ और जीव से त्याग की। वस्तुतः पुष्टिमार्ग मानव के भाव मन्थन का परिणाम है। वैदिक काल से चली आ रही भक्ति भावना का चरम बिन्दु स्व भगवद्- भावका सुमेरु है। पुष्टि मार्ग वह भक्ति मार्ग है जिसमें सभी भक्ति के पूजाचार्यों की भक्ति मान्यता का सार अथवा निचोड़ है।

१- अनुग्रहः पुष्टिमार्गं नियामक इति स्थितिः ।

३- उपास्य और सेवा

आचार्य ने अपने बाल बोध ग्रन्थ में इष्ट निरूपण अथवा उपास्य के निर्णय की पद्धति का संकेत दिया है। सर्व सिद्धान्त संग्रह की बात कहते हुए भक्ति मार्ग ही सर्वाधिक श्रेष्ठ है। इसी को सिद्ध करने की वे चेष्टा करते हैं। संसार के प्राणियों का मन अनेक देव-देवियों में, भूत-प्रेतों, डोरे-धागे, गण्डों में लगा होने से निरन्तर चंचल बना रहता है। जीव चंचल प्रवृत्ति का होने के कारण लौकिक सुख की कामना तत्तत्-देवताओं से किया करता है। यहाँ तक कि अनन्त मोक्ष की कामना भी वे उन देवी-देवताओं से करने लगते हैं। परन्तु मोक्ष के दाता वे देव गण किसी सीमा तक ही मोक्ष दे सकते हैं। चंचलता से उपासना खण्डित रहती है। कोई व्यक्ति चाहे शिव भक्त हो अथवा विष्णु भक्त, उसे अनन्यता का व्रत लेना ही पड़ेगा। यदि सांसारिक भोगों की इच्छा है, तो शिव-भक्ति की जानी चाहिए और यदि अनन्त मोक्ष की इच्छा है तो विष्णु का भजन करना चाहिए। आवश्यकता है अनन्यता की। इस अनन्यता में दूसरे देवी-देवताओं का अन्तर्भाव हो जाता है। निषेध केवल अन्य उपासना का है।

सांख्य अथवा योग दोनों ऋषि प्रणीत मार्ग हैं। ऋषि प्रणीत मार्गों से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की कामना होनी अवश्य है, परन्तु हमसे भी श्रेष्ठ बात यह है कि पुरुषार्थ-चतुष्टय की साधना वैदिक मार्ग से की जाय। 'बालबोध' ग्रन्थ से यह स्पष्ट ज्ञान निकलती है कि आचार्य वेद को अपौरुषेय मानते हैं।

साथ ही वे निरीश्वर सांख्य को भी

१- अलौकिकास्तु वेदोक्ताः साध्य साधन संयुताः ।

लौकिका ऋषिभिः प्रोक्तास्तमैवेश्वर शिष्याः ॥

- बा० बो० १

स्वीकार नहीं करते । विष्णु शिव गुणाभिमानी देव हैं। गुणाभिमानी देवताओं की उपासना करने की अपेक्षा निर्दोष, पूर्णगुणयुक्त, सर्वात्मा पुरुषोत्तम का भजन ही सर्वोत्तम है।

यद्यपि शिव और विष्णु जगत् के हितकर्त्ता हैं और स्थिति एवं संहार के प्रवर्तक हैं :

“ अतः शिवश्च विष्णुश्च जगतो हितकारका । ” १

अतः जिनको मोक्षा लेना हो वे विष्णु की उपासना करें और जिनको सांसारिक भोग की इच्छा हो, वे शिव की । परन्तु आवश्यकता है समर्पण के द्वारा तदीयता की ।

मोक्षास्तु विष्णोः सुत्तमो भोगश्च शिवस्तथा ।

सर्पणोनात्मनो हि तदीयत्वं भवेद् ध्रुवम् ॥ २

दृष्ट निरूपण में आचार्य बल्म का किसी विशिष्ट देवी देवता के प्रति आग्रह नहीं । आग्रह है तो आत्म समर्पणपूर्वक अनन्यता के प्रति ।

संसार का जीव स्वभाव से ही दोषयुक्त है स्वरूप से नहीं । अतः स्वभावगत दोष को दूर करने के लिए भगवत् शास्त्रों का श्रवण-मनन आवश्यक है। संसार के सामान्य जीवों के लिए अनन्य उपासना का मार्ग बताकर अब आचार्य स्वकीय सिद्धान्त पर आते हैं। इस दृष्टि से आचार्य का 'सिद्धान्त मुक्तावली ग्रन्थ' 'पुष्टिमार्गीय दर्शन का पहला ग्रंथ

१- बालबीध श्लोक ११

२- सिद्धान्त मुक्तावली १७

माना जाना चाहिए ।

अपने सिद्धान्त मुक्तावली ग्रन्थ में पहले श्लोक में श्रीहरि को प्रणाम करके 'स्व- सिद्धान्त विनिश्चयम्' कहा है। अर्थात् आचार्य का तात्पर्य यह है कि मैं अपने निश्चित सिद्धान्त का अब कथन करता हूँ और वह सिद्धान्त है-

“कृष्ण सेवा सदा कार्य मानसी सा परामता ।”

अर्थात् आचार्य श्री का मुख्य सिद्धान्त है कि श्रीकृष्ण की ही सेवा निरन्तर करते रहना चाहिए । उसमें भी मानसी सेवा अर्थात् चित्त का भगवान् में प्रीतिरहित रहना सर्वोत्तम है। यह परमोत्तम सेवा (मानसी) सिद्ध हो सके, इसके लिए क्या उपाय किया जाना चाहिए ? क्योंकि मानसी सेवा से भगवान् के प्रति दैन्य प्राप्त होता है और अन्त में फलरूपा विरह-दशा प्राप्त होती है। यह विरह दशा अहर्निश (अविच्छिन्न) बनी रहे, तभी मानसी सेवा का स्वरूप सामने आता है। चिन्तन अथवा भाव की प्रवणता की सिद्धि के लिए तनुजा और वित्तज्ञा सेवा है । इससे संसार दुःख की निवृत्ति होती है और ब्रह्म का बोध होता है।

आचार्य का तनुजा सेवा से तात्पर्य है कि देहेन्द्रिय का अव्यास मिट जाय । और धन की चाह, मन से हट जाय क्योंकि मन से धन की चाह होती है। इसलिए वित्तज्ञा सेवा से अन्तःकरणाव्यास छूट जाता है। देह- इन्द्रिय और अन्तःकरण का अव्यास छूट जाने पर प्राणा-व्यास स्वयमेव ही दूर हो जाता है और स्वस्वरूप का ज्ञान हो जाता है। इस तरह जीव की फैलपन अविद्या समाप्त हो जाती है और उसकी ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है- पुष्टि मार्ग में परब्रह्म, साक्षात् श्रीकृष्ण ही है।

परं ब्रह्म तु कृष्णो हि, सच्चिदानन्दकं बृहत् । १

आचार्य वल्लभ ने सांसारिक व्यक्तियों की सबसे बड़ी दुर्बलता अथवा सबसे बड़ा दोष जान लिया था । यह सबसे बड़ा दोष मनुष्य स्वभाव की विन्तातुरता है। इसके दूर करने के लिए एकमात्र उपाय वे भगवान् के प्रति आत्म निवेदन मानते हैं। आत्म निवेदन के लिए भगवान् में स्वीयता की बुद्धि आवश्यक है। तभी निष्ठाभक्त आत्म निवेदन सम्भव है। सम्पूर्ण जगत् के आदि कारण भगवान् ही हैं। उनके लिए न कोई निज है न पर । परन्तु उन्हीं की बनाई हुई सृष्टि में जीवों के देह और क्रियायें भिन्न भिन्न हैं। इसी कारण उन्हें फल भी अलग अलग प्राप्त होता है। जीव सृष्टि जैसा कि कहा जा चुका है, दो प्रकार की है- दैवी और आसुरी । दैवी जीवों में भी वे पुष्टि जीवों के ऊपर अनुग्रह की दृष्टि रखते हैं। इसीलिए कहा गया है कि पुष्टि जीवों के ऊपर पुष्टिस्थ भगवान् विराजते हैं। उसी प्रकार वही भगवान् दैवी जीवों में जो मर्यादा जीव हैं उन मर्यादास्थ प्रभु दृष्टि रखते हैं। उसी प्रकार आसुरी जीवों में जो प्रकृति के नियम होते हैं उसी का अनुसरण करके उनके अनुसार फल देने की इच्छा से उनके ऊपर 'प्रवाहस्थ' भगवान् विराजते हैं। पुष्टि जीव पुरुषोत्तम की प्राप्ति के लिए सेवा करता है। पुरुषोत्तम ही साधन है और पुरुषोत्तम ही फल है। मर्यादा जीव को प्रथम भगवद्-दर्शन तदुपरान्त मोक्ष की प्राप्ति होती है। किन्तु प्रवाही जीवों के लिए मुख्य फल स्वर्गादि की प्राप्ति है, अतः आचार्य वल्लभ का मत है कि पुष्टिमार्गीय प्रभु निस्साधन भक्तों के लिए ही भजनीय है। वे दीनता से ही प्रसन्न होते हैं। वे अपने अनुग्रह धर्म से पुष्टि जीव का निवेदन स्वीकार करते हैं।

१- सिद्धान्त मुक्तावली श्लोक ३

२- पुष्टि अर्थात् अनुग्रह भगवान् का अपना धर्म है।

आचार्य का मत है कि निवेदन करने के उपरान्त मन में संकल्प-विकल्प नहीं रखना चाहिए। अपने ग्रन्थ निबन्ध (शास्त्रार्थ प्रकरण) में उन्होंने कहा है कि मिथ्या ध्यान अथवा लौकिक वस्तुओं का ध्यान नहीं करना चाहिए। इसलिए मन यदि संकल्प करे भी, तो अपने निवेदन की स्मरण करते हुए तुरन्त मन में से मिथ्या चिन्तन रूप लौकिक संकल्प विकल्पों को निकाल देना चाहिए। यावन्मात्र मनोरथ हों वे भगवद् साम्यन्धी ही हों^१।

भगवान् का जो सच्चा दास है उसको सिवाय भगवद् सेवा के किसी भी विषय का विचार नहीं आता। आगे लौकिक संकल्प विकल्प से छुटकारा पाने के लिए आचार्य ने संकेत दिया है कि साधक अथवा भक्त को 'तादृशी' अर्थात् आत्म निवेदन किये हुए वैष्णवों से सत्संग रखना चाहिए। इस प्रकार ऐसे सच्चे सन्त वैष्णवों के समागम से मन का शोधन होता रहता है। भक्त को यह विश्वास रखना चाहिए कि भगवान् सबके नियन्ता हैं और सर्वात्मा हैं। अतः अपनी ही इच्छा से उन्हें जो करना होगा वह करेंगे। इस सिद्धान्त के अनुसार जब साधक जागता है कि जो होना है वह उसकी अपनी इच्छा से नहीं, अपितु भगवद्-इच्छा से ही होना है। तब फिर मन में लौकिक विचारों को जाने से क्या भ्रम? इसलिए लौकिक विचारों को आत्म निवेदन की स्मरण करते हुए मन से निकाल देना चाहिए। यहाँ तक मन के शोधन का उपाय बताया गया।

अब आचार्य बुद्धि के शोधन का उपाय बताते हैं उनका सिद्धान्त है कि निवेदन हो जाने के उपरान्त यावन्मात्र पदार्थों का

सम्बन्ध भगवान् से हो जाता है। तब फल की दृष्टि से उसके फल का अन्यथा विनियोग हो जायेगा - ऐसी चिन्ता क्यों करनी चाहिए। स्त्री, पुत्र, धन देहादि यावन्मात्र ममता बाने जो लौकिक पदार्थ हैं, उन सबका विनियोग आत्म निवेदन के सम्बन्ध से भगवान् में जब हो ही गया तब इन सबकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। जिन लोगों ने ज्ञान से अथवा अज्ञान से आत्म निवेदन कर दिया है, उनको तो चिन्ता होनी ही नहीं चाहिए। तब फिर जिन्होंने अपने प्राणों को कृष्णमय कर दिया है उनको चिन्ता किस बात की ?

आचार्य का मत है कि जीव का मन पूर्व संस्कारवश बार बार लौकिक विषयों की ओर जाता है। यह स्वाभाविक है। परन्तु धीरे धीरे भगवान् अपने प्रेमय बन्ध से उसके अन्तःकरण को लौकिक विषयों में से निकाल कर अपने में लगा देंगे यह निश्चित है। फिर उत्तम भक्त का मन तो लौकिक वस्तुओं की ओर जायेगा ही नहीं। इसलिए कहा गया है कि देह से सम्बन्धित जो धनादि जड़ पदार्थ हैं, उनका समर्पण सर्व प्रथम है। उसके बाद जो सगे सम्बन्धी हैं उनको अर्पण कर देने पर ये भेरे हैं, ऐसी बुद्धि न रखना समर्पण का द्वितीय सोपान है। इसके उपरान्त स्वयं ही देह को अपना न समझना निर्लिप्त होकर देहाध्यास छूटने का उपाय है। देहाध्यास छूटने के बाद इन्द्रियाध्यास अन्तःकरणाध्यास और प्राणाध्यास क्रम से अपने आप ही समाप्त होते जाते हैं और अन्त में स्वरूप बोध हो जाता है।

आचार्य वाल्मि कहते हैं कि पुरुषोत्तम के सिवाय, जो लोग उनके व्यूहादि में अथवा विमूतिष्ठ में आत्म निवेदन

करते हैं तो उन्हें अपनी नौकिक अथवा वैदिक गति होने की चिन्ता हो सकती है क्योंकि व्यूहादि का अथवा विभूतियों का अपना निजी स्वतन्त्र सामर्थ्य नहीं है। उनमें श्री पुरुषोत्तम का दिया हुआ ही सामर्थ्य है। अतः वे स्वतन्त्र व्यक्तित्व में निर्भर नहीं हैं, तो फिर आश्रित को कैसे निर्भर कर पायेंगे। इसलिए श्री वल्म्याचार्य कहते हैं कि श्री पुरुषोत्तम ही सर्वोपरि हैं। वे ही भक्त की समस्त चिन्ता को दूर करने में शक्तिमान हैं। इसीलिए श्री पुरुषोत्तम के लिए "हरि" शब्द का प्रयोग होता है, क्योंकि वे यावन्मात्र चिन्ताओं का हरण करते हैं। कामना से किया हुआ जो विनियोग है वह तत्- तत् देवताओं के द्वारा स्वीकृत होकर स्वर्गादि का फल देता है और मर्यादावालों की अक्षरात्मक। किसी सीमा तक फल मिलता है परन्तु पुष्टि भक्त अथवा दास तो शुद्ध प्रेम भाव के कारण समर्पित हुआ पुरुषोत्तम को ही अर्पित होता है।

बुद्धि के शोधन के उपरान्त आचार्य ने चित्त के शोधन की ओर संकेत दिया है। आचार्य का मत है कि अग्रह धर्म वाले भगवान् अपने पुष्टि भक्त की स्थिति को नौकिक वैदिक मार्ग में नहीं करते। समूचे भक्त ही इस तथ्य के साक्षी हैं। तात्पर्य यह है कि अन्तःकरण की स्थिति नौकिक अथवा वैदिक में रहती है तो दुःसात्मक संसार पीड़ा नहीं छोड़ता और नौकिक वैदिक बातों का भी यदि अन्तिम बिन्दु पुरुषोत्तम नहीं है तो उनका साधन का श्रम व्यर्थ ही हो जाता है। इसलिए साधक को उचित है कि दयानु भगवान् के ऊपर उसकी विश्वास रखना चाहिए जिससे कि वह उसकी उच्च बिन्दु पर पहुँचा दे। स्वार्थ गुरु की आज्ञा के अनुसार भगवद् सेवा करते रहना चाहिए। यदि भगवद् इच्छा से उसमें कोई व्याघात आजाय तो भी कोई हानि नहीं। साधक का कर्तव्य तो इतना ही है कि

करण को ही चिन्ता का केन्द्र मानकर अपने 'अन्तःकरण प्रबोध' ग्रन्थ में उसको ही पुनः उपदेश देने का यत्न किया है। आचार्य ने अन्तःकरण को सम्बोधित करते हुए कहा है :

“ हे अन्तःकरण मेरी बात सावधानी से सुन- सर्वथा दोष वर्जित कोई देवता है तो वह श्रीकृष्ण ही हैं। उनके अतिरिक्त कुछ नहीं।^१ यदि जीव अपनी शक्ति से अपने में से दोष को दूर करने का स्वयं प्रयत्न करता रहे तो जीव सफल नहीं हो पावेगा। इस विषय में आचार्य ने एक दृष्टान्त दिया है कि जीव को कृष्ण का ही आश्रय होना चाहिए। यदि श्रीकृष्ण को हम अपने को निवेदित कर दें और निवेदन करने पर भी श्रीकृष्ण न अपनाईं तो जीव की मूर्खता क्या हानि है? वे कहते हैं कोई चाण्डाली राजपत्नी हो जाय और तदुपरान्त राजा उसका अपमान कर दे, तो उस अपमान से उसकी क्या हानि होगी? वह तो पहले से ही चाण्डाली बनी बनाई है। अतः पश्चात्ताप कैसा? और चिन्ता कैसी?^२

वस्तुतः चिन्ता दोष रूप है। ऐसी स्थिति में पूर्ण भगवदाश्रय लेने पर सत्य सैकल्पशील भगवान् जीव की स्थिति अथवा गति को अन्यथा नहीं करते। जीव का धर्म तो यही है कि वह उनकी आज्ञा के अनुसार आचरण करे। अन्यथा स्वामी द्रोह होता है। भगवान् उत्तम स्वामी है। अतः वे कृपायुक्त तो रहते ही हैं। अतः आचार्य अन्तःकरण को सम्बोधित करते हुए कहते हैं- श्रीकृष्ण को तु नैतिक स्वामी की भाँति मत समझ, नैतिक स्वामी समस्त चिन्ताओं को दूर नहीं कर सकता। जीव का कर्तव्य तो मात्र इतना ही है कि वह अपने को भगवद् सेवा में लगाये रहे।^३ इसमें आचार्य ने

१- अन्तःकरण प्रबोध श्लोक १

२- वही श्लोक २

३- वही श्लोक ७

स्क और दृष्टान्त दिया है।

विवाह हो जाने के बाद भी यदि कोई पिता मिथ्या मोहवश अपनी पुत्री को उसके पति के पास नहीं भेजता, तो यह दोष पिता का ही है। इसी प्रकार मानव देह को पाकर यदि कोई उसे भगवद् सेवा में नहीं लगाता, तो यह उसका प्रमाद ही है। कन्या के दृष्टान्त से आचार्य वल्लभ ने यह उपदेश दिया है कि शरीर से प्रेम है तो वह भगवान् की सेवा के लिए ही होना चाहिए, क्योंकि अन्तर्गतत्वा यह नस्वर है। इसलिए इसको भगवद् सेवा में लगाने में आलस्य नहीं करना चाहिए। जैसे कोई लौकिक सेवक अपने लौकिक स्वामी की सेवा करने में यदि प्रमाद और आलस्य करे तो लौकिक स्वामी उससे अप्रसन्न होता है। उसी भाँति यदि मानव देह पाकर जीवात्मा भगवद् सेवा में न लगे तो भगवान् को वह रुचिकर नहीं होता। एक प्रकार से यह स्वामी द्रोह ही है। अतः आचार्य वल्लभ का सिद्धान्त है कि सेवक का योगक्षेम भगवान् स्वयमेव ही करते हैं, तब उसे अपने योगक्षेम की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। उसका तो एक मात्र कर्तव्य है कि वह प्रभु की सेवा में ही तत्पर रहे। कभी देह दुष्प्रदायी भी हो तो यही विचार करना उचित है कि सेवा में अवश्य कोई छूटि हुई है। सेवा की आवश्यकता में भी भगवान् में "शरण भावना" रखना जीव का कर्तव्य है।

आचार्य वल्लभ चिन्ता और मोह में भी अन्तर करते हैं। भगवद् स्मृति पूर्वक यदि कोई चिन्ता होती है तो वे उसे "चिन्ता" कहते हैं, परन्तु भगवद् विस्मृति पूर्वक कोई चिन्ता हो तो वे उसे "मोह" कहते हैं। इस प्रकार श्री हरि में शरण - भावना को सर्वथा

बन्वती बनाने के प्रयास के लिए आचार्य वल्लभ का सतत आग्रह है। सर्वथा चिन्ता शून्यता का नाम ही 'मनःप्रसाद' है। गीता में इसी 'मनःप्रसाद' पर बल दिया गया है। प्रसन्न अन्तःकरण से ही दास धर्म का पालन संभव है। दास धर्म का अनुपालन करते हुए किसी प्रकार का अविद्याजनक अज्यास नहीं रहता। यही सेवा की कृतकृत्यता है।

सांसारिक चिन्ताओं की प्रबन्धता और जागतिक कष्टों की अनिवार्यता का गहरा अनुभव आचार्य ने किया था। अतः उन्होंने अपने ग्रन्थ 'नवर्त्तन' में चिन्ता न करने का उपदेश देकर और अन्तःकरण प्रबोध में मन को सम्बोधित करके शरण भावना को दृढ़ करने के लिए आदेश देकर भी वे जीव की मानसिक दुर्बलता से पूर्ण परिचित थे। अतः उन्होंने अपने विवेक धैर्याश्रय ग्रन्थ में विवेक, धैर्य और आश्रय तीनों की व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होंने सांसारिक जीवों को उपदेश दिया है कि सांसारिक जीव को अपना विवेक धैर्य और आश्रय भावना को कदापि नष्ट न होने देनी चाहिए।

विवेक की व्याख्या करते हुए आचार्य ने कहा है कि भगवान् का एक नाम 'हरि' है। अतः वे दुःख और पापों का हरण करते हैं और अपनी सहज वयानुता से उन्हें जो कुछ करना होता है - करते हैं। ऐसा विश्वास रखना विवेक है।

आचार्य वल्लभ ने इस प्रकार के विवेकों का

१- अन्तःकरण प्रबोध श्लोक सं० ८

२- विवेकस्तु हरिः सर्व निजेच्छातः करिष्यति ॥

- विवेक धैर्याश्रय ग्रन्थ श्लोक सं० १

संकेत किया है। उनका कथन है कि इस जगत् में जो कुछ होता है वह मनु की इच्छानुसार ही होता है। मनुष्य देवता और दैत्य अपनी इच्छा के अनुसार कुछ भी नहीं कर सकते। तब फिर मनुष्य को जलकार रखकर मन में संकल्प-विकल्प रखना उचित नहीं। मन की बहिर्मुखता से कोई लाभ नहीं- यह प्रथम विवेक है।

दूसरे प्रकार का संकेत देते हुए आचार्य कहते हैं कि भगवान् से लौकिक कामना पूर्ति की प्रार्थना करना उनके अमिप्राय में संशय रखना है। सर्व व्याप्त भगवान् की सत्ता सर्वत्र विद्यमान है और वे सर्व-समर्थ भवन हैं। तब याचनामयी प्रार्थना करने से क्या लाभ ? भगवान् से किसी प्रकार की लौकिक याचना नहीं करनी चाहिए। प्रार्थना से भगवान् कुछ देते भी नहीं। जीव की योग्यता के अनुसार वे स्वयं अपनी इच्छा से देते रहते हैं। वे जो देते हैं वह बिना मांगे ही देते हैं। उनको प्रार्थना की कोई आवश्यकता भी नहीं। जब जीव जन्म लेता है तो वह माता के स्तन में दूध की प्रार्थना नहीं करता। वह उसे पहले से ही उपलब्ध है। जिस प्रकार शिशु अपने संचरण और स्नेह भाव की प्राप्ति के लिए माँ बाप की प्रार्थना नहीं करता उसी प्रकार जीव की प्रार्थना का कोई मूल्य नहीं। किसी लौकिक उपलब्धि के लिए प्रार्थना न करना यह दूसरा विवेक है।

प्रार्थना से कुछ मिलता भी नहीं। बल्कि अनुचित ही होता है, क्योंकि मन की बात उसी से कही जाती है जो अन्तर्यामी नहीं है। भगवान् तो अन्तर्यामी हैं। सत्य संकल्पवान् हैं। अतः उनसे प्रार्थना कैसी ? हमारी मांग उचित है अथवा अनुचित इसका बोध हमको स्वयं नहीं, न बोध की शक्ति ही है। इसलिए जब भी हम प्रार्थना करते हैं, अज्ञान के कारण ही करते हैं। अतः यह एक अपराध है। इस दोष से बचना और

भगवान् को किसी प्रकार के बन्धन अथवा संकोच में न डालना सच्चे भक्त का कर्त्तव्य है। संक्षोप में भगवान् से हठ करना उचित नहीं। भगवान् के प्रति दुराग्रह शून्यता तीसरा विवेक है।

सब स्थानों पर सब कुछ भगवान् का है और भगवान् सर्व समर्थ हैं। इसलिए हमें जिस समय जिस वस्तु की अपेक्षा होगी वे स्वयं ही देंगे। यह विश्वास करते हुए मन में कोई भी चिन्ता न रखना चौथा विवेक है।

जब मन सर्वथा आवश्यकता शून्य होगा तो वह टिकेगा कहाँ ? क्योंकि मन तो स्वभावतः संकल्प-विकल्पोल्लस है। इस संका का समाधान करते हुए आचार्यों का कथन है कि मन को सर्वदा भगवान् में ही लगाये रखना चाहिए।

अभिमान जीव का सहज स्वभाव है। अतः अपने को भगवद् अधीन मानते हुए वासना सहित अभिमान का त्याग कर देना जीव का मुख्य कर्त्तव्य है। भगवान् तो अन्तःकरण गौचर हैं। अतः देह सम्बन्ध से भिन्न भगवद् सम्बन्धी प्रेरणा प्राप्त होती रहे ऐसी भावना करते रहना चाहिए। जीव को यह स्मरण रखना चाहिए कि मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। परतन्त्र व्यक्ति को अभिमान शोभनीय नहीं होता। अपितु महान् दोष होता है। उसे विश्वास रखना चाहिए कि भगवान् सबके स्वामी हैं और हम उस स्वामी के अधीन हैं। इसलिए मन को कभी स्वच्छन्द नहीं छोड़ना चाहिए। सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि मैं स्वामी के अधीन हूँ। यह पाँचवाँ प्रकार का विवेक है।

संपूर्ण जगत् भगवान् का दास है परन्तु

सब कोई भगवान् का दासत्व स्वीकार नहीं करते । इसलिए जीव का दास धर्म सिद्ध नहीं होता । वस्तुतः दास अथवा सेवक तीन प्रकार के होते हैं।

प्रथम प्रकार के सेवक वे हैं जो स्वामी की इच्छा की सहज भाव से जानकर उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा नहीं करते और सेवा में भरपूर तत्पर रहते हैं। ये प्रथम प्रकार के सच्चे सेवक हैं।

दूसरे सेवक वे हैं जो स्वामी की आज्ञा होने पर ही सेवा में तत्पर होते हैं। वे इतने तीव्र बुद्धि नहीं होते कि वे स्वामी के मन की बात समझ सकें । अतः वे सामान्य आज्ञानुसार सामान्य सेवा में तत्पर रहते हैं। ऐसे सेवकों को आज्ञाकारी सेवक कहा जाता है।

तीसरे प्रकार के सेवक वे हैं जो स्वामी की अप्रसन्नता के भय अथवा दबाव के कारण ही सेवा में तत्पर होते हैं परन्तु सेवा के लिए उनके मन में कोई उमंग नहीं होती । वे किवल दिसाते के ही सेवक होते हैं।

इन तीन प्रकार के सेवकों में हम किस प्रकार के सेवक हैं। यह स्वयं ही विचार करना चाहिए । ऐसा भी सम्भव है कि इन तीन प्रकार के सेवकों में हम किसी प्रकार के नहीं क्योंकि भगवान् का दासत्व बहुत ही कठिन है। अतः दास के कर्तव्य के प्रति सतत सावधान रहकर यह विचार करते रहना चाहिए कि प्रभु की सेवा में कोई असावधानी न हो । जैसा कि ऊपर प्रथम प्रकार के सेवक के विषय में कहा जा चुका है कि उसके अन्तःकरण में भगवान् का आदेश होता है और ऐसे ही अन्तःकरण में भगवान् की आज्ञा सुनाई देती है। ऐसी भगवदाज्ञाएँ न तो सेवक की देह से सम्बन्धित होती हैं और न उसके सगे सम्बन्धियों से सम्बन्धित । ऐसी

भगवदाज्ञाएँ भगवद् सेवापयोगी होती हैं तदनुसार ही वर्तन करना चाहिए । यह ठोके प्रकार का विवेक है। तात्पर्य यह है कि भगवद् सेवा कार्य में ही आग्रह रखना चाहिए । ऐसे आग्रह में यदि कभी वैदिक धर्म का पालन न भी हो तो कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए ।

आचार्य बल्लभ ने धैर्य की व्याख्या करते हुए कहा है कि आधिभौतिक, आध्यात्मिक एवं आधिदैविक तीनों प्रकार के दुःखों को मरण पर्यन्त सहन करना ही " धैर्य " कहलाता है। आधिभौतिक दुःख में देह और देह के अतिरिक्त सगे सम्बन्धी आदि पारिवारिक जनों का कष्ट भी सम्मिलित है। ये सब देह सम्बन्धी दुःख कहे जाते हैं। इन्द्रिय सम्बन्धी जो मन के दुःख हैं वे आध्यात्मिक दुःख हैं। इन दोनों प्रकार के दुःखों का सम्बन्ध देहाव्यास और इन्द्रियाव्यास से है। इसके अतिरिक्त भगवद् सेवा में प्रतिबन्धादि आधिदैविक दुःख हैं। अतः आधिभौतिक दुःख के लिए आचार्य बल्लभ ने काह या मठे का दृष्टान्त दिया है^१।

जिस प्रकार मठे में से सारभूत नवनीत निकल जाता है उस प्रकार अपना सर्वस्व चला जाय तो भी शान्त रहे । दूसरे काह या मठे के प्रति हमारी ममता नहीं रहती । उसी प्रकार देह और देह से सम्बन्धित वस्तुओं से भी ममता नहीं रखनी चाहिए । उसी प्रकार आधिदैविक दुःखों से जड़ मरुत की वृत्ति से काम लेना चाहिए। आधिदैविक दुःख पड़ने पर अर्थात् सेवा में प्रतिबन्धादि दुःख आ पड़ने पर गोप पत्नी जो अन्तर्गृहीता थी उसकी भाँति कष्ट सहन करना चाहिए। इस प्रकार दुःख सहन करने से देहाव्यास, इन्द्रियाव्यास और अन्तःकरणाव्यास छोड़ने के लिए

१- तद्भवदेहवद्भाव्यं जहवद्गोपमार्थवत् ।

आचार्य ने आज्ञा दी है। उनका यह भी सिद्धान्त है कि यदि दुःख दूर करने का उपाय यदि हाथ नग जाय तो दुःख सहन करने के लिए आग्रह नहीं रहना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि देह दुःख को दूर करने के लिए कोई औषधि आदि प्राप्त हो जाय तो यह आग्रह नहीं रहना चाहिए कि औषधि न खाई जाय, क्योंकि स्वस्थ देह से भगवद् सेवा एवं भगवद् भक्ति और भी वृद्धता से होगी। परन्तु साथ ही यह भी ध्यान देने की बात है कि देह दुःख दूर करने के लिए मन अपना अन्तःकरण बिगड़ जाय ऐसा उपाय स्वीकार न करे।

कमी कमी परिवार के व्यक्ति अविद्या के कारण अपमान करें तो उन पर भी बार बार क्रोध नहीं करना चाहिए। आचार्य का मत है कि देहाभ्यास की अपेक्षा अन्तःकरणाभ्यास ढोड़ना बड़ा कठिन है। इन्द्रियाभ्यास ढोड़ने के लिए उनका मत है कि इन्द्रियों के विषयों को ढोड़ना बहुत कठिन होने के कारण सदैव अपनी असामर्थ्य को ध्यान में रहना चाहिए क्योंकि इन्द्रिया अन्तःकाल से अपने प्रिय विषयों का उपभोग करती आई हैं। इसलिए उनसे बलात्कार करने की आवश्यकता नहीं। इन्द्रियों के विषय धीरे धीरे शान्त हो जायें उसके लिए सतत प्रयास करते रहना चाहिए। क्योंकि सम्भव असम्भव सभी बातों में भगवान् ही एक मात्र आश्रय हैं। आचार्य वल्लभ का सिद्धान्त है कि जब तक विवेक और धैर्य अन्तःकरण में वृद्धता से स्थिर न हों जीव को हर स्थिति में भगवान् का ही आश्रय रहना चाहिए। क्योंकि जीव अपने सामर्थ्य के हिसाब से सर्वथा शक्तिहीन है। अन्तःकरण में विवेक और धैर्य की वृद्ध स्थिति के लिए भगवद् आश्रय का ही प्रयत्न करते रहना चाहिए। जब तक अन्याश्रय रहेगा तब तक जीव का मन विवेक और धैर्य के मार्ग पर चलता ही नहीं, क्योंकि सिवाय भगवान्

के धैर्य देने की शक्ति और किसी में है ही नहीं। जब भी जीव का धैर्य छूटता है तब तब उसे भगवान् ही धैर्य देते हैं। क्योंकि इस संसार में और परलोक में भगवान् ही एक मात्र आश्रय स्थान हैं। उनके अतिरिक्त सभी स्थान भ्रमदायक हैं। इसलिए हरि का ही आश्रय जीव का एक मात्र अभीष्ट है।

हानि में, पाप में, भय में, इच्छित वस्तु के प्राप्त होने न होने में, भक्त से द्रोह करने में, भक्ति के अभाव में, सम्भव में असम्भव में सब में भय है। इन सब भयों से ब्राण पाने के लिए भगवान् की ही शरण लेनी चाहिए और वाणी से उन्हीं का नाम स्मरण करते रहना चाहिए। भगवद् आश्रय ग्रहण करने की बात कहते हुए आचार्य का यह भी आदेश है कि भगवान् के सिवाय किसी अन्य का स्मरण करना अपना अन्य के पास जाना और अपने कार्य के लिए दूसरे से प्रार्थना करना आदि बातें छोड़ देनी चाहिए, क्योंकि अन्य का भजन करना अविश्वास का प्रतीक है और भगवान् के प्रति अविश्वास सबसे भयानक अपराध है।

इसलिए भगवान् में भरपूर ममता रखते हुए उन्हीं का आश्रय करते रहना चाहिए। भगवदाश्रय से ही सदैव सबका कल्याण है।

इस प्रकार आचार्य कल्मष ने विश्वासपूर्वक वृद्धता से भगवदाश्रय बनाये रखने के लिए आदेश दिया है। वृद्ध भगवदाश्रय से विवेक और धैर्य की स्थिति अन्तःकरण में सुदृढ़ हो जाती है।

१- अविश्वासी नैव कर्त्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः ।

ब्रह्मास्त्रजातकौ भव्यौ प्राप्तौ सेवेत निर्ममः ।।

- वि० धै० आ० श्लोक सं० १५

४- उपास्य का आश्रय

आश्रय पर वृद्धता, श्री हरि पर "सर्वतोभाषित" निर्भरता से जीव में विवेक और धैर्य का स्थिर आविर्भाव होता है, यह आचार्य का निज सिद्धान्त है। आगे चलकर आश्रय किसका ग्रहण करना चाहिए इसको स्पष्ट करते हुए वे कृष्णाश्रय पर ही बल देते हैं। आचार्य ने "कृष्णाश्रय" ग्रन्थ में यह स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि कृष्ण का ही आश्रय क्यों ? कृष्णाश्रय में आचार्य ने श्रीकृष्ण के सान्निध्य की सतत भावना की है। सान्निध्य की इस सतत भावना से साधक अथवा भक्त में पाप-वासना का निरसन हो जाता है। पाप की वासना स्कान्त में ही फलपत्ती है। साधक को अपनी चतुर्विक् यदि कृष्ण की विद्यमानता का सतत मान रहेगा तो उससे पाप कर्म की सम्भावना ही न रहेगी। वस्तुतः आश्रय अथवा शरण भावना की आवश्यकता यों भी है कि साधक की साधना पर देश, काल, द्रव्यकर्त्ता मन्त्र स्वै कर्म के प्रभाव की प्रबलता तो रहती ही है। अतः साधक इस प्रबलता पर विजयी नहीं हो पाता। उसके पास श्रीकृष्ण की कृपावन्मन के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं। अतः कृपा बल के आधार पर ही श्रेय की कामना को पूर्ण करने वाला यह कृपा मार्ग अन्याय साधनों की दुर्बलता को सिद्ध कर देता है। जब देश, काल, द्रव्य, कर्त्ता आदि ब्रह्म तत्त्वों की शुद्धि ही नहीं तो फिर श्रेय सिद्धि कैसे सम्भव है ? इसी कारण केवल श्रीकृष्ण का आश्रय ही मुख्यतः श्रेय साधक है। भक्त की निस्साधना और भगवान् की कृपा का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है कि अजामिल जैसा अपराधी सकृद् (एक बार के) नाम उच्चारण मात्र से श्रेय मार्ग का भागी बन गया।

१- कृष्णाश्रय श्लोक १-६

२-

७

भगवन्नाम के माहात्म्य की ओर आचार्य ने भरपूर संकेत दिया है। वस्तुतः नाम महिमा सभी वास्तविक सम्प्रदायों में मान्य रही है। नाम निर्गुण सगुण उभय तत्त्वों का प्रबोध देने वाला है।^१

श्री वल्लभ श्रीकृष्णातिरिक्त अन्य देवों का आश्रय लेने के लिए निषेध करते हैं। कारण यही है कि सभी देवता ससीम सावधि आनन्ददाता अथवा लौकिक वैदिक कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं, परन्तु श्रीकृष्ण ही ऐसे पूर्ण पुरुषोत्तम हैं, जो निरवधि आनन्द के दाता हैं। अतः सभी देवता शुद्धाद्वैत सिद्धान्त में गणितानन्द कहे गये हैं। श्रीकृष्ण ही पूर्ण पुरुषोत्तम अगणितानन्द हैं।^२ इस प्रकार आचार्य ने श्रीकृष्ण के स्वरूप माहात्म्य की ओर संकेत किया है। नाम स्व स्वरूप का माहात्म्य ज्ञान होनेपर भी आचार्य ने पुष्टि भक्ति में दैन्य को अनिवार्यतः महत्त्व दिया है। साधक के लिए दैन्य अनिवार्य है। यदि भक्त अथवा साधक में दैन्य नहीं है, तो उसको आश्रय अथवा शरणागति की सिद्धि नहीं हो पायेगी। विवेक धैर्यादि गुण भले ही साधक में न हों, परन्तु दीनता तो अवश्य ही चाहिए। अतः आश्रय की सिद्धि में दीनता आवश्यक^३ तत्त्व है। आचार्य ने कृष्णाश्रय में दीनता की ओर स्पष्ट संकेत किया है। श्रीकृष्ण को वे सम्पूर्ण सामर्थ्यों का अधिष्ठान स्वीकार करते हुए भक्तों को आश्वासन देते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण मैं सर्वत्र समस्त अर्थों कामनाओं को पूर्ण करने और प्रपन्न व्यक्ति के समुद्धार का सामर्थ्य है। इस प्रकार पुष्टि भक्ति में श्रीकृष्ण ही एकमात्र शरण्य है। ऐसा आचार्य का वृद्ध सिद्धान्त है।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि पुरुषार्थ

१- रामचरित मानस- बालकाण्ड - नाम महिमा प्रकरण दोहा १७ से २७

२- कृष्णाश्रय श्लोक सं० ८

३- ,, ,, सं० ६

चतुष्टय स्मृति ग्रन्थों में कृष्ण प्रणीत बताए गये हैं। आचार्य वाल्म ने अपने ग्रन्थ 'बाल बोध' में संकेत दिया है कि कामना पूर्ति को इच्छा रखने वाले सांसारिक पुरुषों के लिए मोक्ष देने वाले शिव सर्व मोक्ष देने वाले विष्णु हैं। इस प्रकार यह पुरुषार्थ चतुष्टय नैतिक है। क्योंकि ये सावधि हैं। इन मोक्षों की और मोक्ष की काल सीमा निश्चित है। किन्तु आचार्य वाल्म नैतिक पुरुषार्थ-चतुष्टय की कल्पना करते हुए प्रथम पुरुषार्थ धर्म अथवा कर्त्तव्य की व्याख्या में श्रीकृष्ण सेवा ही धर्म मानते हैं। उसी प्रकार मानव जीवन का अर्थ और काम भी श्रीकृष्ण सेवा अथवा प्रेम ही है। पूर्ण सर्वोत्तम श्रीकृष्ण की सेवा में नैतिक देह से उपस्थित रहकर उनकी नीला का आनन्द लेते हुए नीला परस्पर में बने रहना आचार्य की मोक्ष कल्पना है। नीला परस्पर का भक्त जीव प्रभु की नित्य नीला में समुपस्थित रहता हुआ इस नश्वर जगत् में कभी नहीं नैतिकता। इसीलिए सूर ने कहा है -

“कहाँ ही चलि चर सारेबर जहँ नहि प्रेम वियोग ।” १

प्रभु की नित्य नीला में ही जीव की निश्चिन्तता प्राप्त होगी। आचार्य ने चतुःश्लोकी ग्रन्थ में कहा है :

“प्रभुः सर्व समर्थो हि ततो निश्चिन्तता ब्रजेत् । २

निश्चिन्त हो जाने पर और गोकुणेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण की हृदय में स्थिति समझ ले पर, न तो नैतिक साधनों की आवश्यकता पड़ती है न वैदिक साधनों की। इसलिये शुद्धाद्वैत सिद्धान्त में भगवद् स्मरण और भजन ही आवश्यक है उसे किसी भी स्थिति में नहीं छोड़ना चाहिए।

१- ब्रजसागर प्रथम स्कन्ध पद ६४

२- चतुःश्लोकी श्लोक सं० २

३- वही ४

५- श्रवण, कीर्तन स्मरण

स्मरण भजन पर बल देने का आचार्य का स्क्रमात्र कारण यही है कि भक्ति भाव की बुद्धि के लिए श्रवण, कीर्तन, स्मरणादि उपाय हैं। इन उपायों में मूल भक्ति बीज की वृद्धता प्राप्त होती है। वस्तुतः बीज उसे कहते हैं जो कभी नाश नहीं होता। हाँ, उसकी वृद्धता का उपाय अवश्य करते रहना चाहिए। भक्ति बीज की वृद्धता का उपाय बताते हुए आचार्य ने कर्ममार्गीय संन्यास का तिरस्कार करते हुए स्पष्ट कहा है :

“ गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः ” अर्थात् अपना धर्म अपना कर्त्तव्य पालन करते हुए घर में ही निवास करते हुए “ अव्यावृत्तो भजेत्कृष्ण ” निरन्तर श्रीकृष्ण का स्मरण करते रहना चाहिए। आचार्य जीविका अथवा सांसारिक प्रपञ्चों को खादम छोड़ देने का उपदेश नहीं देते। उनका मत है कि चित्त की व्यावृत्ति में भी और सांसारिक धन्दे करते हुए भी श्रीकृष्ण में मन को पिरोये रखें और नित्य प्रति कुंहर श्रवण, मनन, चिन्तन, स्मरण आदि करता रहे। इससे शनैः शनैः भगवान् में स्नेह वृद्धि होगी, तदुपरान्त आसक्ति और अन्त में साधक व्यसन दशा को पहुँच जायेगा।

भगवान् में स्नेह से सांसारिक रागों का विनाश होगा। आसक्ति की दशा में घर से अरुचि होगी क्योंकि घर की ममता ही भगवद् भजन में सर्वाधिक बाधक होती है। स्त्री, पुत्र, गृहादि से ममता बन्धन टूटने पर मन्त्र में व्यसन की स्थिति का उदय होता है। पुष्टि भक्ति में व्यसन दशा भक्ति का अन्तिम सौपान माना जाता है। जिस भक्त को भगवद् प्रेम की व्यसन दशा प्राप्त हो गयी वह कृतार्थ हो जाता है। जब तक यह व्यसन दशा प्राप्त न हो तब तक साधक को गृह त्याग नहीं करना

चाहिए। व्यसन दशा वाला "तादृशी" भक्त फिर घर में रह नहीं सकता। घर कुटुम्ब उससे स्वयमेव ही छूट जाते हैं। उसे भगवद् विरह सताने लगता है। जगत् में अथवा घर में उसका मन रमता नहीं। परन्तु कभी कभी ऐसा भी होता है कि मन की कच्ची स्थिति में ही (व्यसन दशा प्राप्ति के पूर्व ही) कुछ लोग घर छोड़ देते हैं। ऐसे लोगों के लिए आचार्य ने उपाय निरूपण किया है :

अतः स्थैर्यं हरिस्थाने तदीयैः सह तत्परैः ।

ऐसे लोग श्रीरंगम् अथवा वैकुण्ठम् अथवा जगन्नाथ जी (पुरी) अथवा फेरपुर (विठ्ठल) आदि भगवद् स्थानों में चले जायें और वहाँ पूजा प्रसाह में निरत रहकर वैष्णवों का सत्संग करें। वहाँ भी अत्यन्त सँगी अथवा स्कान्त निवासी न हों। क्योंकि दोनों ही स्थितियों में चित्त के दूषित (ममतादु) होने का भय रहता है।

अतः भगवत्सेवा और भगवत् कथा में चित्त लगाये रहे, जिससे क्रमशः भगवदासक्ति बढ़ती जाय। आचार्य का मत है कि ऐसा करने पर उस भक्त का कभी विनाश नहीं होता। आचार्य ने निवृत्त परायण भक्तों के लिए निरन्तर भगवत्कार्य में व्यस्त रहने का आदेश दिया है, क्योंकि नितान्त स्कान्त भी मन को चंचल करता है और स्कान्त का चंचल मन फल कीजोर लेजाता है। यद्यपि भगवान् की रक्षा अद्वित भक्त को विनाश की ओर जाने से बचाती है। तथापि आचार्य का मत है कि यदि मन की चंचलता या अन्य बाधाओं की सम्भावना या भय हो, तो स्कान्त वास छोड़ देना चाहिए।

उनका कथन है कि कुछ भगवदीय व्यक्ति ऐसे होते हैं जो भगवान् की नीजाओं में अनुकूल भाव रखते हैं। तात्पर्य यह है कि वे भगवान् की सेवा के लिए ही देहादि की अपेक्षा रखते हैं। उनको नर देह भगवान् की सेवा के लिए ही चाहिए। ऐसे भक्त रत्नाकर के समान हैं। ऐसे भक्त बड़े दुर्लभ हैं। उनके वचना-मृत सुनने वाले व्यक्ति बड़े भाग्यशाली होते हैं। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो शरणागत का रक्षण करते हैं। उनका सत्संग संसार के तापों को शान्त करता है, और निदर बनाता है। कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनका सत्संग प्रान्तियों को समाप्त करने वाला प्रेम से युक्त होता है। उनका ज्ञान कर्तव्य होता है, उनके संग करने से जीव का भगवद् भाव बढ़ता है। कुछ ऐसे आन्तर निष्ठा वाले व्यक्ति होते हैं जिनका संग करने से सदेहों का निवारण और भक्ति की वृत्ति होती है। कुछ लोग निरपेक्षा भाव से भक्ति करने वाले हैं, तो कुछ भगवद् भाव में तत्पर होते हैं। कुछ लोगों की निष्ठा योग अथवा ध्यान में होती है। कुछ लोगों को विभिन्न देवताओं की उपासना में निष्ठा होती है। भगवदीय की ऐसी वैफल निष्ठा वालों का संग करने से हानि होती है। साधक को चाहिए कि ऐसे लोगों का संग करे जिससे मन के विशुद्ध भावों की वृद्धि हो। तात्पर्य यह है कि अनुरूप भाव वाले से निष्ठा में वृद्धि होती है।

आचार्य बल्म ने अन्तःकरण की भावना के आधार पर भाव-वृद्धि के उपायों का संकेत दिया है। उसी प्रकार उन्होंने श्रोताओं के भाव निरूपित किये हैं। उनकी दृष्टि में उत्तम श्रोता वह है जो लोक अथवा वेद में आनन्द का अनुभव नहीं करता, अपितु उसका मन विषय हीन होकर कृष्ण रस में डूबा रहता है। वे भगवद् गुण गान को ही अपना एक मात्र कर्त्तव्य समझते हैं। मध्यम श्रोता वे हैं, जो कीमल चित्त वाले हैं और भगवद् स्मृति में विह्वल रहते हैं। भगवान् के गुणगान में उत्साह वाले

होते हैं और अपोमुख्य प्रयोजन अर्थात् मोक्ष के लिए सावधान होते हैं। और अधम श्रोता वे हैं जो कृष्ण तत्त्व से परिचित होकर आवेश के चण में ही विफल होते हैं। उनमें पूर्ण भाव यदा कदा ही उदय होता है। वे कभी कभी जाँकिक, वैदिक उपासना में भी आसक्त हो जाते हैं और जो लोग देश, काल, द्रव्य, कर्त्ता सन्त्र आदि में निष्ठा रखते हैं, वे तो साधारण मरण धर्मा हैं। इस प्रकार आचार्य कल्म ने तीन प्रकार के श्रोताओं का भी निरूपण किया है।

५- भावोपासना

श्रीमद्भागवत में वैदिकी तान्त्रिकी दोनों ही प्रकार की उपासना समर्थित है। आचार्य ने सेवा मार्ग को महत्त्व देने के लिए तंत्रोक्त साधना पद्धति को अपनाया है। तन्त्र तीन प्रकार के हैं- वैष्णवतन्त्र, शैव तन्त्र एवं शाक्त तंत्र। आचार्य का पुष्टिमार्ग या सेवा मार्ग वैष्णव तन्त्र के अन्तर्गत आता है। वैष्णव तन्त्र में उपासना के दो प्रकार हैं- शास्त्र सिद्धा और भाव सिद्धा। शास्त्र सिद्धा अथवा शास्त्रानुसूत उपासना में उपकार की आवश्यकता पड़ती है, उपकार के मूल में महत्त्व के प्रति महत्त्वानुभूति की अविच्छिन्न धारा सतत विद्यमान रहने के कारण सेवक सेव्य में सीमा और मर्यादा निरन्तर बनी रहती है। वह कभी नहीं मिटती और इसीलिए निजीफ होकर भी अजनबीफ रहता है। सेवक-सेव्य की मर्जी को पहचान नहीं पाता और उसे उसकी प्रतिकूलता का भय बराबर बना रहता है। इसलिए शास्त्रसिद्धा उपासना को 'मर्यादामार्गीय' उपासना कहा गया है। इसमें मर्यादा ही प्रधान है। मर्यादा पालन में शास्त्र नियामक होता है। अतः शास्त्रों में दृष्टोपासना के लिए मैत्रोपकार षोडशोपकार

१- वैदिकी तान्त्रिकी दीक्षामदीयव्रतधारणम् ।

- भाग० ११।११।३७

आदि का विधान है। आचार्य शंकर ने अपने परापूर्णा में भगवती की उष्ण काल से रात्रि तक की पूजा में उपाचारों की प्रधानता दी है। परापूर्णा मानसी पूजा होकर भी उपचार बहुत है। शास्त्र सिद्धा उपासना में पद्धति पर ही अत्यधिक बल है। पद्धति की परिधि में जो आवे वह तो ब्राह्म्य, शेष अग्राह्य होता है। शास्त्र बन्धन उपासक को पारतन्त्र्य में बहुत दूर तक बांध देता है।

भाव सिद्धा उपासना का स्वरूप ही निराला है उसमें उपासक का भाव ही प्रधान है। अतः "उपाचार" की आवश्यकता नहीं। भक्त के समक्ष भगवान् की उपस्थिति निजजन के रूप में होती है। अतः वे कभी मेहमान नहीं रह जाते। भक्त अपना उपासक के वे सर्वद्रोहों के कारण सबसे पहली बात जो भाव सिद्धा उपासना में उपलब्ध होती है वह है प्रिय का (भगवान् का) चिर साहचर्य। साथे पीते चन्दे फिरते उठते बैठते, सोते जागते, यावन्मात्र द्रिया कलापों में उसका अपना प्रेम साहचर्य साथ ही रहता है और इसप्रकार उपासक उसकी निरन्तर उपस्थिति की अनुभूति के कारण निश्चित और आनन्दमयी स्थिति का नाम उठाता रहता है। भाव सिद्धा उपासना के श्रीगणेश में ही फलप्राप्ति प्रारम्भ हो जाती है, जबकि शास्त्रसिद्धा उपासना में फलप्राप्ति दुःसाध्य रहती है। भाव मूलक उपासना में भाव ही साधन होता है। भगवान् प्रेय है, सेवा अथवा परिचर्या ही "प्रमाण" है। वही साधन और वही फल है। भाव और परिचर्या में जन्य-जनक अथवा कार्य-कारण सम्बन्ध है। बिना भाव के परिचर्या असम्भव

१- देखो- आचार्य शंकर कृत "परापूर्णा"।

२- भावो ब्र साधनं मार्गं प्रेयो भगवान् हि सः।

प्रमाणं कृष्ण सेवा दा स स्व न फलम् पुनः॥

- शिवा फल -७

अथवा निःप्राण है। इसलिये श्रीमद्भागवत में पूजा से वागे बढ़कर परिचर्या को बहुत महत्त्व दिया गया है। परिचर्या अथवा सेवा पुष्टिमार्ग में प्राणभूत तत्त्व है। इसीलिये इस मार्ग में दृष्टोपासना, कृष्णोपासना में पूजा शब्द का व्यवहार न होकर सेवा शब्द का ही व्यवहार मिलता है।

सेवा के तीन प्रकार हैं।

१- शरीर से

२- धन से

३- मन से

इसी को तनुजा, वित्तजा और मानसी कहा गया है।^२

इन तीन प्रकार की सेवा से सबसे पहला जो नाम यह है - चित्त का भागवत तत्त्व में प्रीति होना। यह चित्त की प्रणता बिना सेवा के नहीं आ सकती, मर्यादा मार्ग या शास्त्र सिद्धा उपासना में चित्त सम्भवतः उतने ही काल तक प्रीति रहेंगा, जितनी देर देव मंदिर में भगवद् सान्निध्य रहेगा। क्योंकि भक्ति की जीवन चर्या और भगवान् की नित्य पूजा समानान्तर में न चलकर सीधी रेखा पर एक लम्ब की मीति है जो ६० कोण का कोण बनाती है। मूर्धिसिद्धा सेवा थोड़ी दूर समानान्तर चलकर भक्त की जीवन चर्या में लय हो जाती है।

सेवा संयुक्त जीवन से तत्कालीन नाम जो भक्त का होता है वह है प्रपन्न की आत्यन्तिकी विस्मृति। इसी को बाचार्य ने पुष्टिमार्गीय उपासना में मूल स्थान दिया है। सेवा से साहचर्य और साहचर्य

१- परिचर्या स्तुतिः प्रह्वगुणाकर्मानुकीर्तनम् ॥ ११।११।३४

२- चेतस्तत्प्रवर्णं सेवा तत् सिद्धयै तनुवित्तजा ॥

- सिद्धान्त० मु० २

से समर्पण की परम्परा अप्रयास बन जाती है। समर्पण की यह पद्धति विनम्र से सिद्ध न हो, स्तदर्थ ही आचार्य अथवा गुरु की शरण की आवश्यकता है। प्रिया को प्रियतम से मिलाने में जिस प्रकार दूती आत्यन्तिक रूप से सहायिका सिद्ध होती है, उसके बिना कोई अविनम्र उपाय नहीं होता। उसी प्रकार गुरु की शरण के बिना भगवत्तत्त्व का अवबोधन देने में कोई अन्य उपाय सुसाध्य नहीं है। सेवा का रहस्य समझाने में गुरु ही समर्थ है। इसी कारण आचार्य ने सेवा की कोई अन्य परिभाषा न देते हुए एक ही बात कही है- 'सेवाकृतिर्गुरोराज्ञा' ^१ अर्थात् गुरु की आज्ञा का अनुसरण ही सेवा है। आज्ञा श्रवण की जाती है और सुनने की इच्छा ही शुद्धि है। अतः सेवा की सिद्धि के लिए गुरु की शरण और उसका आज्ञावर्तित्व ही मुख्य है।

शास्त्र-सिद्धा-उपासना हरि मंदिर आदि अथवा देवस्थान में ही सुसाध्य है। व्यक्तिगत रूप में वह थोड़ी दुःसाध्य पड़ती है। परन्तु भाव सिद्धा उपासना में व्यक्तिगत भाव ही नियामक होने से यह व्यक्तिगत अथवा स्कान्तिक उपासना मार्ग है। इसका लक्ष्य स्वमात्र निजी भाव पोषण होने से इसमें शास्त्र विहितत्त्व आवश्यक नहीं। नौकिक दृष्टि से इसमें किसी भी जागतिक वस्तु की आवश्यकता न पड़ने से यह 'मानसी सा परामता' कही गयी है। पुष्टिमार्गीय सेवा में इसी कारण निस्साधनता पर अत्यधिक बल है। न बाह्य साधन, न शास्त्रीय साधन, न आन्तरिक कोई अन्य साधन। केवल भावसाधन ही अपेक्षित है, वही साध्य है। वही फल है। भाव से साहचर्य, साहचर्य से समर्पण, समर्पण से सेवा और सेवा से अनन्यता अनन्यता से शाश्वत आनन्द - यही पुष्टि भक्ति के वैज्ञानिक क्रमिक सोपान है।

तनुजा सेवामें मानसिक उद्वेग और सांसारिक प्रतिबन्ध आते हैं। इन उद्वेगों को दूर करने के लिए आचार्य ने अपने 'नवार्त्न' ग्रन्थ और 'अन्तःकरण प्रबोध' में उपाय बताये हैं। जीव कृत प्रतिबन्ध के लिए उन्होंने सकेत दिया है। युक्ति से उनको दूर करता रहे।

वित्तजा सेवामें आचार्य भोगेच्छा को बन्वान मानते हैं। इस प्रकार की भोगेच्छा को वैराग्य भाव से दूर करना चाहिए परन्तु यदि भगवद् हृच्छा से प्रतिबन्ध उपस्थित हो ही जाय तो उसमें जीव का कोई वश नहीं चल्ता। ऐसी स्थिति में शरण भावना पूर्वक मन से भगवान् का स्मरण करता रहे। यह मानसी सेवा है।

आचार्य के सिद्धान्त में मानसी सेवा सर्वोपरि है। जिस भक्त को मानसिक सेवा सिद्ध हो जाती है। उसको अनौक्तिक सामर्थ्य की प्राप्ति, सायुज्य मोक्ष की प्राप्ति के साथ साथ वैकुण्ठादि लोक में सेवोपयोगी देह की प्राप्ति होती है परन्तु मानसी सेवा है बहुत कठिन।

जब भगवान् दया करते हैं तभी मानसी सेवा की सिद्धि होती है। मानसी सेवा सिद्ध भक्त को ही विप्रयोग (भगवद् विरह) सहन करने की शक्ति आ जाती है। इसलिए भगवान् की कृपा को प्राप्त करने के लिए मानसी सेवा की सिद्धि के लिए आचार्य का मत है कि अव्यावृत्त (निरन्तर) भजन करता रहे। उसमें भक्त समस्त सांसारिक विषयों से स्वयमेव तर जायेगा।

पुष्टिमार्ग में मानसी- सेवा = सिद्धि केवल

गोपिकाओं को ही मानी गयी है। आचार्य ने कहा है - 'कौलिन्यो गोपिका प्रोक्ताः गुरुवः साधनं च तत् । मातो भावनया सिद्धः साधनम् नान्यदिष्यते ।' अर्थात् इस मार्ग में गोपिकार ही गुरु हैं और उनके द्वारा किया हुआ साधन ही इस मार्ग का साधन पद है। भावना से सिद्ध हुआ भाव ही साधन बन जाता है। इस मार्ग में अन्य किसी साधन की अपेक्षा नहीं है। वस्तुतः पुष्टिमार्ग भाव अथवा प्रेम प्रधान मार्ग है। कर्म मार्ग में विधि ही प्रधान होती है। पुष्टिमार्गीय प्रेम के लिए किसी भी नियम की अपेक्षा नहीं। उपनिषद् का 'सर्व सत्त्विदं ब्रह्म'। ज्ञान की पराकाष्ठा है। उसके अनुसार भगवान् सर्वत्र है, सर्व रूप है। यदि इस प्रकार का ज्ञान साधक की हो जाय तो प्रेम की जो संयोग, विप्रयोग, आदि अवस्थाएँ हैं, उनकी सम्भावना ही नहीं रह जाती। भगवान् कृष्ण ने माता यशोदा को अपने मुख में ब्रह्माण्ड के दर्शन कराये, उन्हें भी अपनी वैष्णवी माया में व्यक्त कर दिया। उसका रहस्य ही यह है कि यदि ऐसा न होता, तो लीला की सम्भावना ही नहीं रह जाती। आचार्य ने गोपियों को गुरु माना है। परन्तु वे उपदेश नहीं देती। अपने गम्भीर प्रेम के द्वारा ही जगत् की उपदेष्टा बनी हुई है।

'वेणुगीत' की व्याख्या में आचार्य ने लिखा है, 'गूढ स्त्रीभावो पुष्टिमार्गीय तत्त्व' अर्थात् स्त्री भाव ही पुष्टि मार्ग में तत्त्व है। वही एस है। वही श्रीकृष्ण है। तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है - 'एसो वै सः'। एस तो शृंगार ही है। उसकी दस अवस्थाएँ हैं और वे स्त्री भाव को ही सुलभ हैं। पुरुष के लिए यह स्त्री भाव बहुत दुर्लभ है। यह भगवदावेश के माध्यम से ही अथवा कात्यायनी शक्ति के प्रवेश से हो, तभी कोई पुरुष उस एस के योग्य होता है। इसीलिए भगवान्

१- सैन्यासनिर्णय श्लोक सौ० ८

२- बृहदारण्यकोपनिषद्

कृष्ण के लिए कहा गया है। "स्त्रीष्टुमे ह्यहर्निशम्"^१ और भी कहा गया है "स्त्रीणामत्र विशेषतः"^२। पुष्टिमार्ग में स्त्रियों की जो मुख्यता रखी गयी है उसका कारण यही है कि स्त्रियों को यह भाव सुलभ है। आचार्य का तात्पर्य है कि जिस स्त्री का भाव की चर्चा की गई है वह लौकिक नहीं है। संसार से विरक्त होकर भगवान् के प्रेम में आसक्ति और व्यसन वाला स्त्री भाव ही अपेक्षित है। भगवान् स्वयं लौकिक नहीं है। अतः वे कोई भी लौकिक पदार्थ स्वीकार नहीं करते, वे केवल भाव की ही अपेक्षा करते हैं। "मेरे सर्वस्व", "मेरे ऐहिक", "मेरे पारलौकिक सब कुछ श्रीकृष्ण ही हैं।" यही पुष्टि मार्ग का चरम लक्ष्य है। इसलिये आचार्य ने आदेश दिया है :

"सर्वदा सर्वं भावेन मजनीयो ब्रजाधिपः"^३ अर्थात् सर्व भाव से सर्वथा ब्रज के स्वामी श्रीकृष्ण की सेवा करते रहना चाहिए। अपना ऐहिक पारलौकिक कल्याण सब कुछ वही करेंगे। यह एक प्रकार की शरण भावना रखना ही कर्तव्य है। इस शरण भावना का निरूपण कृष्णाश्रय में दिया जा चुका है।

सुबोधिनी में आचार्य ने लिखा है - "सर्वं भगवदाधीनं स यथा करिष्यति तथा भविष्यतीति केवलं तदाश्रयः। तथा स्थातव्यम्।"^४ अर्थात् सब कुछ भगवान् के अधीन है, वे जैसा करेंगे, वैसा ही होगा। इसलिये केवल उनके आश्रय में रहना उचित है। वे जो जो करते हैं वह वह उनकी लीला ही है। यह मानकर चिन्ता को तत्काल ही छोड़ देना चाहिए।

१- श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध - रास पैवाव्यायी

२- सुबोधिनी कारिका

३- चतुःश्लोकी श्लोक सं० १ शोडश ग्रंथ

४- सुबोधिनी १।१३।१

५- नवम स्कन्ध श्लोक सं० ८

पुष्टिमार्ग का सिद्धान्त है और जैसा कि कठोपनिषद् में भी आया है। "मगवान् गम्भीरं प्रवचनं से अथवा शुद्धि बल से अथवा बहुत विद्वत्ता से वश में नहीं होते। वे जिसका वर्ण करते हैं, उसी को वे प्राप्त होते हैं। जीव बहुत सारा तप करे अथवा शुद्ध कर्म करे अथवा ज्ञान शक्ति को प्राप्त करे उससे मगवान् को क्या लाभ ? मगवान् को किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं। उनमें कोई अभाव शून्यता नहीं, वे निरन्तर पूर्ण हैं। आप्त काम हैं। उनको तो सेवा की भी अपेक्षा नहीं। जीव उसके लिए कर ही क्या सकता है ? तात्पर्य यह है कि जीव का कर्तव्य तो केवल इतना ही है कि वह चरम दीनता रखता हुआ अपनी तुच्छता, हीनता का बोध रहे। और चातक की भाँति उनकी कृपा की प्रतीक्षा करता रहे। मगवान् जिस व्यक्ति को अपने निकट लाना चाहते हैं, उसी से उत्तम कर्म कराते हैं। एवं तु एवं साधु कर्म कारयति, तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते स्व उ स्वासाधु कर्म कारयति तं यम् अपो निनीषते।"

इस श्रुति से यह स्पष्ट समझ में आता है कि सारा यह खेल का प्रसार स्वयं मगवान् ही फैलाए हुए हैं। जीव के हाथ में कुछ भी नहीं है। जीव तो मगवान् के हाथ का खिलौना मात्र है। इसलिए अपनी एक खिलौने जैसी स्थिति समझकर जीव को चाहिए कि वह प्रसन्नता से मगवान् के अधीन हो जाय और उसके खेल में कर्थात् उसके द्वारा दिये हुए दुःख सुख में प्रसन्नता का अनुभव करता हुआ उसकी नीला में भाग लेता रहे।

...

१- कठोपनिषद् १-२-२२

२- कौ० उ० ३-६

द्वितीय अध्याय

शुद्धाद्वैत दर्शन का स्वरूप

द्वितीय अध्याय

शुद्धाद्वैत दर्शन का स्वरूप

जीव, परमात्मा और जगत् सम्बन्धी विचार परम्परा को 'दर्शन' कहना दी गई है। अतः धीरे धीरे दर्शन एक स्वतन्त्र शास्त्र बन गया जिसका लक्षण चिन्तन की प्रधानता है। भारतीय मनीषा की यह चिन्तन प्रक्रिया सृष्टि के आदि काल से ही रही है। इसके मूल में मानव की जिज्ञासा वृत्ति ही थी। यही कारण है कि वैदिक साहित्य में बार बार दुहराया गया है :

‘कस्मै देवाय हविषा विधेम’ १

वैदिक साहित्य के उपरान्त उपनिषदों में भी ये जिज्ञासार्थे पानः पान्थेन उठाई गई और विविध प्रकार से उनके समाधान प्रस्तुत किये गये।

वैदिक साहित्य का ब्रह्म-तत्त्वपरक ज्ञान उपनिषदों में अवतरित हुआ और उपनिषदों का सार व्यास कृत ब्रह्मसूत्रों में प्रस्तुत हुआ। ब्रह्मसूत्र का ज्ञान ही श्रीमद्भगवद्गीता में निखर कर आया और इस प्रकार वेद, उपनिषद् एवं ब्रह्मसूत्र भारतीय अध्यात्म-वाङ्मय के मेरुदण्ड सिद्ध हुए। व्यास कृत ब्रह्मसूत्र वह नगाधिराज है, जिसमें अनेक दार्शनिक सुर सरिताएँ उद्भूत हुईं और जिसके पावन जल में अवगाहन करके भारतीय जन-मानस शाश्वत शान्ति पाता रहा है। ये दर्शन सरिताएँ ब्रह्मसूत्र के माध्यम में प्रकट हुईं। अतः विभिन्न आचार्यों का वैयक्तिक दृष्टिकोण और

उनकी व्यक्तिगत चिन्तन धारा ही उसमें प्रधान रही है।^१

आचार्य शंकर कृत 'शारीरिक-माय्य' ने शरीरवादी दृष्टिकोण को तुच्छ करके केवलाद्वैत की स्थापना की। आचार्य ने 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। जगत् को निष्काम कर्मवाद एवं भक्ति मार्ग से विमुक्त करके वैराग्य मार्ग की ओर उन्मुख किया। शंकर मत की अव्यावहारिकता ने परवर्ती दार्शनिक सिद्धान्तों को जन्म दिया। ११ वीं शताब्दी के आचार्य रामानुज ने पुनः एक नूतन विचार धारा का आविर्भाव किया। आचार्य रामानुज मूलतः सगुणवादी भक्त्यान्तर्धायक थे। अतः उनका सिद्धान्त एक प्रकार से शंकर के 'तत्त्वमसि' सिद्धान्त पर करारी चोट थी।

शंकर मत की मौलिकता इतनी ही है कि निर्गुण ब्रह्म को वे जगत् का उपादानकारण मानते हैं। परन्तु विवरणकार ने माया शबलित ब्रह्म अर्थात् (सगुण ब्रह्म) को उपादान माना है। तत्त्व निर्णायक ब्रह्म और माया दोनों को जगत् का उपादान मानते हैं। किन्तु सिद्धान्त सुक्तावली कार केवल माया शक्ति को जगत् का उपादान बतलाते हैं। पञ्चदशी के अनुसार माया शुद्ध सत्त्वमयी है। परन्तु अविद्या रजोगुण तथा तमोगुण के प्राधान्य पर होती है। जगत् के लिए शुद्ध ब्रह्म के उपादान होने में माया द्वार कारण होती है।^२

शंकर मत को आभासवाद, प्रतिबिम्बवाद, अवच्छेदवाद, जीवेशवाद आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है। शंकर के

१- श्रीमद्वल्मीकीय दर्शन एवं भक्ति सिद्धान्त - प्रतिमा व्यास पृ० १

२- भारतीय दर्शन पृ० ४४६

मायावाद को भक्ति तत्त्व का नितान्त विरोधी मानकर परवर्ती भक्त्याचार्यों ने उसका बड़े समारोह के साथ सफ़ा किया। इसीलिए अनेक वैष्णव तन्त्रों का जन्म हुआ। तन्त्र का अर्थ है- यन्त्र मन्त्रादि से समन्वित एक विशिष्ट साधन मार्ग तन्त्रों का ही दूसरा नाम आगम है। वस्तुतः बात इतनी ही है कि कर्म, उपासना और ज्ञान के स्वरूप को 'निगम' अर्थात् वेद बतलाता है और साधनभूत उपायों को 'आगम' सिखलाता है।

संक्षेप में 'आगम' व्यावहारिक योजना का नाम है। निगम - आगम का यही तात्पर्य है। अधिकांश आगमों की मूल मित्ति निगम ही है। इष्ट देवता या परादेवता के भेद के कारण आगम तीन प्रकार हैं :

- १- वैष्णव आगम (पाँचरात्र या भागवत)
- २- शैव आगम
- ३- शाक्त आगम

इनमें क्रमशः विष्णु, शिव तथा शक्ति की परादेवता के रूप से उपासना बताई गई है। दार्शनिक सिद्धान्तों के विभेद से आगम द्वैत प्रधान अद्वैत तथा द्वैताद्वैत प्रधान है। रामानुज ने पाँचरात्र को विशिष्टाद्वैत का प्रतिपादक माना है। पाँचरात्र या श्रीमद्भागवत वैष्णवागमों का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। वैखानस आगम भी एक प्रकार से वैष्णवागमों के अन्तर्गत ही है। पाँचरात्र साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। पाँचरात्र ग्रन्थों का मत है कि वे वेद के ही अंश हैं और वेद की 'स्कायन' शाखा

से उनका सम्बन्ध है^१ पाँचरात्र ग्रन्थों का तात्पर्य है :

एक मात्र भगवान् ही उपाय (प्राप्य) है ।
तथा वे ही उपाय (प्राप्ति साधन) हैं । बिना भगवान् के अनुग्रह के जीव भगवान् को नहीं पा सकता । भगवान् की शरणागति ही केवल एक मात्र उपाय है। इस शरणागति तत्त्व पर आग्रह दिखाने के कारण इस तन्त्र का नाम 'स्काय' पड़ा । पाँचरात्र का ही दूसरा नाम भागवत धर्म अथवा सात्वत धर्म था । महाभारत में सात्वत विधि का उल्लेख किया गया है^२। सात्वत धर्म अथवा पाँचरात्र में चतुर्व्यूह सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है। जिसके अनुसार वासुदेव से स्कंधाया अर्थात् जीव की उत्पत्ति होती है। स्कंधाया से प्रद्युम्न अर्थात् मन की तथा प्रद्युम्न से अहंकार की ।

शंकराचार्य ने अपने शारीरिक माष्य में इस मत की आलोचना की है तथा इसे अवैदिक स्वीकार किया है। श्री यमुना-चार्य तथा रामानुजाचार्य ने अपने आगम प्रामाण्य में पाँचरात्र तन्त्र की प्रामाणिकता को सिद्ध किया है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि पाँचरात्र का दूसरा नाम भागवत धर्म या सात्वत धर्म है। सात्वत यादव क्षत्रियों को भी कहते हैं। ऐतिहासिकों का मत है कि यादव क्षत्रियों में इसका विपुल प्रचार था इसीलिए इसको सात्वत तन्त्र की संज्ञा दी गई है। वैसे 'सात्वत' शब्द भागवत का पर्यायवाची है। 'सातयति', सुखयति, आश्रयति, आश्रयति सात्

१- वेदमेकाग्र्यं नाम वेदानां सिरसिस्थितम् ।

- श्री प्रश्न संहिता

२- सात्वतं विधिमास्याय गीतः स्कंधायाय यः

दापरस्य युगस्यान्ते आदौ कलियुगस्य च ॥ महा० भी० पर्व

३- शारीरिक माष्य (२।२।४२-४५)

परमात्मा स एषामस्तीति सात्वताः । सात्यन्तो वा महामागवताः ।

सात्त्वत संहिताओं के अन्तर्ग बारह तेरह संहितायें प्रसिद्ध हैं। इनमें परब्रह्म के उभय निर्गुण तथा सगुण भाव सन्निहित हैं। षाड्गुण योग से परब्रह्म ही भगवान् है। समस्त भूतवासी होने से वह 'परमात्मा' है। वह सब द्वन्द्वों से मुक्त, समस्त उपाधियों से रहित, सब कारणों का कारण, षाड्गुण्य परब्रह्म है। पाँचरात्र की यह परब्रह्म भावना उपनिषदों के अनुरूप है :

सर्वद्वन्द्व वि निर्मुक्तः सर्वोपाधि विवर्जितम् ।

षाड्गुण्य तत् परं ब्रह्म सर्वकारण कारणम् ॥

इस प्रकार नारायण निर्गुण-सगुण दोनों प्रकार का है। वे ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, बल, वीर्य तथा तेजादि कुछ गुणों से सम्पन्न हैं। उनकी शक्ति का सामान्य नाम 'लक्ष्मी' है। वे विभिन्न गुणों के कारण विभिन्न नाम से फुकारी जाती हैं। सृष्टि के आरम्भकाल में वे ही भगवान् की क्रिया शक्ति तथा मूल शक्ति हैं। इन शक्तियों के बिना भगवान् भी कुछ नहीं कर सकते । जगत् के सर्वमंगल के लिए भगवान् ही अपने को चार रूपों में आविर्भूत कर देते हैं ।

१- व्यूह

२- विभव

३- अर्वा

४- अन्तर्यामी

श्रीमद्भागवत में भगवान् के अनेक अवतारों की चर्चा है। भक्ति का यह सर्वोच्च प्रतिपादक ग्रन्थ है। सभी वैष्णव संप्रदायों ने भागवत का आश्रय ग्रहण किया है।

आचार्य रामानुज का सिद्धान्त- " विशिष्टाद्वैत "

भक्ति सिद्धान्त के आचार्यों में सर्वप्रथम रामानुजाचार्य हुए जिनका समय ईसा की ग्यारहवीं बारहवीं शताब्दी है। ब्रह्मसूत्र पर इन्होंने श्रीमाध्य लिखा है। इन्होंने तीन तत्त्व माने हैं।

चित्, अचित् और ईश्वर । चित् अर्थात् जीव अचित् अर्थात् जगत् एवं ईश्वर अर्थात् अन्तर्यामी ।

रामानुज ब्रह्म को स्वगत भेद से युक्त मानते हैं, वह सविशेष है। स्वभाव से कल्याण - गुणों का आकार है। प्राकृत हेतु गुणों से रहित है। रामानुज ब्रह्म के अतिरिक्त जीव और जगत् से उसे भिन्न तथा नित्य मानते हैं। अतः उनकी दृष्टि में तीन पदार्थ हैं, एक नहीं । शरणागति पर वे अत्यधिक बल देते हैं। उसी को वे पराप्रपत्ति पुकारते हैं।

रामानुज के मत में जीवन्मुक्ति मान्य नहीं है। विदेह मुक्ति ही सम्भव है। वैकुण्ठ में भगवान् का नित्य कैकर्य ही परम मुक्ति है। इनके सिद्धान्त को विशिष्टाद्वैत के नाम से जाना जाता है।

आचार्य माध्व का सिद्धान्त - " द्वैत "

माध्व मत भी शंकर दर्शनकी प्रति क्रिया

स्वरूप खड़ा हुआ था। माध्व सिद्धान्त में परमात्मा साक्षात् विष्णु है। वे ज्ञानानन्दादि गुणों के अधिष्ठान हैं। वे एक होकर नाना रूप धारण करते हैं। उनके मत्स्यादि अवतार स्वयं परिपूर्ण हैं :

‘ अवताराः ये विष्णोस्सर्वैर्गुणार्ण प्रकीर्तिताः ।

मगवान् तथा मगवान् के अवतारों में भेद दृष्टि रखना माध्व सम्प्रदाय में अनुचित बताया गया है।

लक्ष्मी परमात्मा की शक्ति हैं, वह परमात्मा ही के अधीन रहती हैं। अतः उनसे भिन्न हैं। लक्ष्मी मगवान् से गुणाधिकी में कुछ न्यून हैं, नित्य युक्त हैं। नाना रूप धारिणी मगवान् की भार्या हैं। वे दिव्य विश्रवती होने से ‘ अवतारा ’ हैं।

जीव- अज्ञान, मोह, दुःख मयादि दोषों से मुक्त सैसरणीय प्राणियों का नाम ‘ जीव ’ है। ये तीन प्रकार के हैं :

- १- मुक्ति योग
- २- नित्य सैसारी
- ३- तपो युक्त

जगत्

माध्व मत में जगत् सत्य है। माध्वमत संपूर्ण रूपेण द्वैत सिद्धान्त है। इसके यहाँ मुक्ति नैज सुख की अनुभूति है। उस नैज सुख का साधन स्वभाव श्री हरि की भक्ति ही है।

१- परमात्मा भिन्ना तन्मात्राधीना लक्ष्मीः । म० सि० सा० पृ० २६

निम्बार्क का सिद्धान्त - 'द्वैताद्वैत'

आचार्य निम्बार्क तैलंग ब्राह्मण थे ।

वे सुदर्शन चक्र के अवतार कहे जाते हैं। इनका असली नाम नियमानन्द था । निम्ब वृक्षा पर 'अर्क' अर्थात् सूर्य को रात के समय साक्षात् दर्शन कराने के कारण इनका नाम निम्बार्क अथवा निम्बादित्य पड़ा ।

निम्बार्काचार्य ने ब्रह्म सूत्र पर टीका लिखी है, जिसका नाम 'वेदान्त पारिजात सौख्य' है। दशश्लोकी उनका प्रतिपादक ग्रन्थ है। इनका दर्शन भेदभेद या द्वैताद्वैत कहलाता है। इनके जीव 'अणु' हैं, वे श्रीहरि के अधीन हैं, और अनन्त देहों में विद्यमान हैं। जीव हरि का अंश रूप है। हंश्वर की कल्पना सगुण रूप से ही की गई है। निम्बार्क मत में जीव ब्रह्म में भेदाभेद सम्बन्ध स्वामी विक है। प्रपत्ति के द्वारा जीवों पर भगवान् का अनुग्रह होता है। अनुग्रह के अनुराग रूपिणी भक्ति का उदय होता है। भक्ति से भगवत् साक्षात्कार होता है।

चैतन्य का सिद्धान्त - 'अचिन्त्य भेदाभेद'

महाप्रभु चैतन्य आचार्य वल्लभ के समसाम-
यिक हैं। इनका जन्म वि० सं० १५४२ में हुआ । अर्थात् वे अवस्था में महाप्रभु वल्लभाचार्य से ७ वर्ष छोटे थे । २४ वर्ष की अवस्था में गृह त्यागी हो गये । २४ वर्ष भारत भ्रमण करके भगवन्नाम प्रचार द्वारा अनेक जीवों का उद्धार किया । वि० सं० १५६० में वे नीलाचलनाथ भगवान् जगन्नाथ में लीन हो गये ।

महाप्रभु चैतन्य का सिद्धान्त है- भगवान् अनन्त गुणों के अधिष्ठान, आनन्दविग्रह सत्यकाम, सत्य सैकल्प सर्वज्ञ हैं। ब्रह्म त्रिविध भेद से रहित असंख्य सच्चिदानन्दात्मक हैं। जगत् में धर्म की वृद्धि अधर्म के विनाश के लिए भक्तों में प्रवेश वश अवतार लेते हैं। श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं, अवतार नहीं। जगत् भगवान् की बहिरंग शक्ति का विलास होने से सत्य है। चैतन्य सिद्धान्त को जीव गोस्वामी ने 'अचिंत्य भेदाभेद' नाम दिया है। ब्रज बंधुओं ने जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण की उपासना की, उसी प्रकार जीव को गोपी भाव से कृष्ण का सतत भजन करते रहना चाहिए। भगवतशास्त्र का अनुशीलन नहीं छोड़ना चाहिए। चैतन्य मत में भी जीव की विदेह सुक्ति मानी गई है।

दर्शन के सिद्धान्तिक विवेचन में अनेक भक्ति संप्रदायों के आचार्यों का योगदान स्मरणीय है। इसी परंपरा में आचार्य वल्लभ के मत का विश्लेषण करना अभीष्ट होगा। आचार्य वल्लभ ने समस्त दार्शनिक मतों का गहन अध्ययन किया था। श्रुति, श्रीमद्भागवत, व्यास सूत्र और गीता को आधार बनाकर उन्होंने अपने मत का प्रतिपादन किया था। दार्शनिक सिद्धान्तों की जटिल गुत्थियों को सरलतम रूप में प्रस्तुत करने की प्रक्रिया के पुरोधा आचार्य महाप्रभु वल्लभ बने।

संसार की अनित्यता, जीव की प्रपंचाशक्ति और अविद्या कृत विवशता, भक्ति की पूर्णता और आत्म निर्मलता, माया का मिथ्यात्व आदि की सटीक एवं सफल प्रतिपादन आचार्य दर्शन सिद्धान्त का सर्वाधिक मूल्यवान् निष्कर्ष है।

आचार्य वल्लभ का सिद्धान्त- 'शुद्धाद्वैत दर्शन'

शुद्धाद्वैत दर्शन को शुद्धाद्वैतवाद भी कहते हैं ।

'शुद्धाद्वैतवाद' में 'वाद' से तात्पर्य है- शब्दार्थ- श्रवण-मनन- नि-
दिध्यासन द्वारा जो अनुभव रूप है वही 'वाद' है- 'ब्रह्मणो निरूप-
णार्थं वादः' वाणी से कथन मात्र करना 'वाद' नहीं कहलाता^१ ।

महात्मा विष्णु स्वामी शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के प्रथम प्रवर्तक हैं । विष्णुस्वामी शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के प्रथम प्रवर्तक हैं। विष्णु स्वामी के मत को रुद्र संप्रदाय के नाम से जाना जाता है। आचार्य वल्लभ ने दर्शन के चोत्र में सर्वप्रथम शुद्धाद्वैत सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की । तत्पश्चात् आचार्य ने भक्ति प्रधान पुष्टिमार्ग की स्थापना की । आचार्य वल्लभ ने लगभग तीस ग्रंथ लिखे हैं। इनमें अधिकांश ग्रंथ प्राप्त हैं। कहा जाता है कि उनके कुछ ग्रंथ उनकी पुत्रवधू के साथ दक्षिण में चले गये । ब्रह्मसूत्र पर लिखा गया उनका भाष्य 'बणु भाष्य' कहा जाता है। तत्त्वदीप निबन्ध , सुबोधिनी, षोडश ग्रंथ, पुरुषोत्तम सहस्रनाम के अतिरिक्त मधुराष्टक, परिवृढाष्टक आदि अनेक स्तोत्र ग्रंथ हैं। आचार्य की उपस्थिति का समय गणनानुसार ५२ वर्ष २ माह ७ दिन रहा है^२। इतने कम समय में आचार्य वल्लभ ने समग्र भारत का भ्रमण किया और सिद्धान्त एवं दर्शन पर इतने विशिष्ट महत्त्व के ग्रंथ लिखे कि उनका आज भी दर्शन और भक्ति के चोत्र में अक्षुण्ण महत्त्व है।

आचार्य वल्लभ का दार्शनिक सिद्धान्त जिसे

१- कविवर परमानन्द दास और वल्लभ संप्रदाय पृ० ६२

२- आचार्य वल्लभ का आ वि० सं० १५३५ एवं तिरो० सं० १५८७

शुद्धाद्वैत, ब्रह्मवाद अथवा अविकृत परिणामवाद कहते हैं, वह साधन की दृष्टि से पुष्टिमार्ग, अनुग्रह मार्ग अथवा शरण मार्ग कहलाता है और आचार्य वल्लभ को इसका संस्थापक कहा जाता है।

‘अद्वैत’ के पूर्व ‘शुद्ध’ शब्द लगाने का तात्पर्य है- ‘माया का ब्रह्म से सम्बन्ध रहित्य’^१। आचार्य का मत ‘मायावाद’ का खण्डन करता है। इसीलिए इसे शुद्धाद्वैत वाद कहा जाता है। यही ब्रह्मवाद है। उनके अनुसार जीव जगत् ब्रह्म रूप है। इसीलिए जीव और जगत् दोनों सत्य हैं।^२ ‘अविकृत परिणामवाद’ से तात्पर्य है कि ब्रह्म नाना कार्य रूप होकर भी विकार को प्राप्त नहीं होता। समस्त अवस्थाओं में कार्य कारण रूप ही रहता है। अतः कार्य अविकृत कहलाता है।

अन्य दर्शनों की भाँति शुद्धाद्वैत दर्शन में भी ब्रह्म, जीव, जगत् और माया अपनी विशिष्ट परिभाषा और शैली समन्वित हैं। प्रस्तुत चर्चा में इनका विश्लेषण समीचीन है।

शुद्धाद्वैत दर्शन में ‘ब्रह्म’ का स्वरूप

आचार्य ब्रह्म को सर्व धर्म विशिष्ट स्वीकार करते हैं। शुद्धाद्वैत दर्शन में ब्रह्म केवल स्क ही है। वही सगुण है एवं वही निर्गुण।

१- साकार ब्रह्मवादक स्थापको वेद पारंगः ।

- स० स्तो० श्लो० ८

२- माया सम्बन्ध रहितं शुद्धमित्युच्यते बुधैः ।

कार्य कारण रूपं हि शुद्धं ब्रह्म नममयिष्याम् ॥

- शु० मा० श्लो० २८

वह निर्गुण इसलिए है कि उसमें जागतिक गुण नहीं है। वह सगुण इसलिए है कि उसमें जागतिक गुण नहीं है। वह सगुण इसलिए है कि वह आनन्दादि दिव्य धर्म वाला है। वह निराकार भी है और साकार भी है। आचार्य ब्रह्म में उभयरूपता का होना श्रुति शुद्ध मानते हैं।^१

ब्रह्म को जहाँ अन्य दार्शनिक निधर्मक निर्विशेष तथा निर्गुण ब्रह्म कहते हुए माया के सम्पर्क के कारण सगुण कहते हैं, वहाँ आचार्य बल्लभ अनन्त स्वाभाविक गुणों से युक्त ब्रह्म को मायाधीन नहीं किन्तु मायाधीश कहते हैं। वह अज्ञेय है सर्वरूप है और सेव्य है। वही सच्चिदानन्द निर्गुण अविकृत ब्रह्म कर्त्ता है, मोक्षता है, अन्तर्यामी है, वैश्वानर है और आधार आधेय दोनों हैं। वही युक्त प्राणभूत अक्षर प्रकाशक, परात्पर परमात्मा है। वह अव्यक्त सूक्ष्म जीवाधिष्ठान सबका अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। वह लौकिक प्राकृत आवृत्ति रहित है। लौकिक देह में जिस प्रकार देह और आत्मा पृथक् पृथक् है उस प्रकार ब्रह्म में देह और आत्मा का पार्थक्य नहीं। वह तो संपूर्ण आनन्द रूप और रस रूप है। जिस प्रकार शरीर की पुस्तिका के समस्त अंग शरीरामय होते हैं, उसी प्रकार ब्रह्म सर्वांग में आनन्दमय है।^२

ब्रह्म निधर्मक-सधर्मक, निराकार-साकार, सगुण-निर्गुण, निर्विशेष-सविशेष, अणुतर-महत्तर-उभय धर्म वाला होने के कारण विरुद्ध धर्माश्रयी है। जब उसकी इच्छा होती है तब प्रकट होता

१- उभय व्यपदेशान्त्व हि कुण्डलवत् ।

- ब्र० सू० ३।२।२७ अणुमाप्य

२- निर्दोषपूर्ण गुण विग्रह आत्मतन्त्रो,

निश्चेतनात्मक शरीर गुणैश्चहीनः ।

आनन्दमात्र करपाद मुखोदरादि,

सर्वत्र च त्रिविध भेदविवर्जितात्मः ॥ त० दी० नि० ४४

है। जब वह चाहता है तब विभक्त हो जाता है। इस प्रकार उसमें विरुद्ध धर्मों की सत्ता से माया का आभास होता है। यह जगत् उसकी लीला मात्र है और लीला उसकी विलासेच्छा मात्र है।

ब्रह्म वस्तुतः अविकृत है। उसमें कार्य कारण भेद नहीं है। उसका ये कर्तृत्व स्वाभाविक है मायिक नहीं, न आरोपित है। 'स्को हम् बहुस्याम्' ^१ 'मैं एक हूँ बहुत हो जाऊँ' ऐसी झूठा करता हुआ आविर्भाव और विरोभाव के द्वारा अनेक और विचित्र लीलाएँ करता है। आचार्य के मत में जगत् और ब्रह्म एक तत्त्व है। उन्होंने ब्रह्म के तीन रूप माने हैं :

- १- परब्रह्म (आधिदैविक स्वरूप)
- २- अक्षर ब्रह्म (आध्यात्मिक स्वरूप)
- ३- जगत् ब्रह्म (आधिभौतिक स्वरूप)

ये तीनों ही स्वरूप अनन्य और अभिन्न हैं। ब्रह्म के विषय में आचार्य का स्पष्ट मत है कि जिस प्रकार गंगा के तीन रूप हैं -

- १- जल रूप, महात्म्य रूप
- २- साक्षात् देवी रूप

उसी प्रकार दृश्यमान आधिभौतिक स्वरूप जगत् ब्रह्म गंगाजल के समान है, जो दृग्गोचर है, आध्यात्मिक स्वरूप अक्षर ब्रह्म गंगा के महात्म्य के समान है जो सेव्य और ध्यातव्य है और आधिदैविक स्वरूप परब्रह्म साक्षात् गंगा के दिव्य रूप तुल्य है जो चिन्तनीय है तथा सर्वशक्तिमान है। गंगा जी के तीन रूप होते हुए भी गंगा एक ही है, उसी

प्रकार परब्रह्म भी तीन रूप वाला होकर भी एक ही है। इन तीनों रूपों में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है। आचार्य के अनुसार ब्रह्मानन्द परमतत्त्व श्रीकृष्ण ही है। श्रीकृष्ण और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है। श्रीकृष्ण अपने आधिभौतिक रूप में जगत् है आध्यात्मिक रूप में अक्षर ब्रह्म है। अक्षर ब्रह्म गणितानन्द अर्थात् प्रथम जगत् द्वितीय उससे विलक्षण अर्थात् उत्तम। जगत् अक्षर ब्रह्म में लय होता है जबकि अक्षर ब्रह्म निर्विकार बना रहता है और परब्रह्म साक्षात् नीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ही है।

शुद्धाद्वैत दर्शन में 'जीव'

भगवान् को जब रमण की इच्छा होती है, तब वे अपने आनन्दोत्पत्ति को तिरोहित करके स्वयं जीव रूप ग्रहण कर लेते हैं। उनके इस कार्य में क्रीड़ा की इच्छा ही प्रधान है। इसमें माया का कोई सम्बन्ध नहीं है। संपूर्ण जीव साकार भगवद्रूप, उच्चनीच भावों से युक्त होकर उसी प्रकार से ब्रह्म में व्युत्थित होते हैं, जिस प्रकार अग्नि में से स्फुल्लिङ्ग निकलते हैं। यह जीव उत्पत्ति नहीं है, अपितु आविर्भाव है। ब्रह्मवाद में जीव नित्य है। जबकि शैकर मत में जीव के नित्यत्व की संभावना ही नहीं, न उसका नाम रूप सम्बन्ध है।

शैकर मत में जीव को विभु माना जाता है

१- परब्रह्म तु कृष्णो हि । सि० मु० श्लो० ३

२- विस्फुल्लिङ्गा इवाग्नेस्तु संदशेन जडा अपि । त० दी० नि० २

३- न जायते म्रियते वा कदाचिन्मायै भूत्वा भवितावान् भूयः ।

अजो नित्यः शाश्वतो यै पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

- श्रीमद्भागवद् ० २। २०

जबकि वल्ग्व जीव अणु माना जाता है। 'तत्त्वमसि' महावाक्य के आधार पर शक्तिर मत वाले जीव का अणुत्व स्वीकार नहीं करते। ब्रह्म का प्रधान धर्म आनन्द है। जीव में यह धर्म अप्रत्यक्षा है। जब यह प्रत्यक्षा होता है तब जीव ब्रह्म हो जाता है। यही 'तत्त्वमसि' का अमिप्रमय है। शुद्धाद्वैत सिद्धान्तानुसार जीव में उत्क्रान्ति, गति, अगति आदि की योग्यता स्वीकार की गई है। इसीलिए जीव अणु है। जिस प्रकार सर्व धर्म विशिष्ट ब्रह्मकर्ता है, मोक्षता है तो तदंश जीव भी ब्रह्म के सम्बन्ध से कर्त्ता है, मोक्षता है। उसका कर्तृत्व और मोक्षतृत्व औपचारिक नहीं। 'जीव सनातन है और भगवदंश है।'

संसार जीव दो प्रकार के हैं- देवी जीव और आसुरी जीव^१। देवी जीवों के तीन भेद किये गये हैं :

- १- पुष्टि जीव
- २- प्रवाही जीव स्व
- ३- मर्यादी जीव

इन तीनों ही जीवों की देह और क्रियाएँ फल की दृष्टि से अलग अलग कही गयी हैं :

पुष्टि प्रवाह मर्यादाः विशेषेण पृथक् पृथक् ।

जीव देह क्रिया भेदैः प्रवाहेण फलेन च ॥ ३

१-मर्मांशो जीव लोके जीव भूत सनातनः ।

- गीता १५।७

२- द्वौ भूत सर्गा लोके स्मिन् देव आसुर स्व च ।

देवो विस्तरशः प्रोक्तः आसुरं पार्थ मे शृणु ॥ गीता० १६।६

३- पु० प्र० म० श्लो० सं० १

दैवी सृष्टि की तीन जीव-श्रेणियों में पुष्टि जीव सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं। भगवान् की इच्छा मात्र से जो सृष्टि हुई, उसे प्रवाही सृष्टि कहा गया। भगवान् की वाणी के द्वारा जो सृष्टि निर्मित हुई उसे वैदिक मार्ग वाली मर्यादी सृष्टि कहा गया। भगवान् के श्री अंग से जो सृष्टि हुई वह पुष्टि सृष्टि कहलाई^१। प्रवाही जीव सृष्टि सृष्टि के अन्त तक संसार प्रवाह में रहती है और वह भगवदिच्छा पर ही निर्भर रहती है। स्वर्ग नरकादि गतियाँ प्रवाही जीव को ही प्राप्त होती हैं। मर्यादी सृष्टि के जीव कल्पांत तक इस लोक में भ्रमण नहीं करते और कल्पांत से पूर्व वे मोक्ष के अधिकारी हो जाते हैं, उन्हें मोक्ष फल की प्राप्ति होती है। पुष्टि जीवों की गति निराली है। भगवल्लीला की अनुकूलता के लिए अथवा कभी दण्ड रूप में जब तक प्रभु की इच्छा हो जब तक इस सृष्टि में पुष्टि जीव का आगमन होता है। पुष्टि जीवों को लोक अथवा वेद के फल की अपेक्षा नहीं, भगवत्स्वरूप की प्राप्ति ही उनके लिए परम फल है। पुष्टिमार्गीय जीव वस्तुतः भगवान् की सेवा के लिए ही हैं। सेवा के उद्देश्य बिना उनकी सृष्टि ही नहीं होती। पुष्टि मार्ग में प्रविष्ट समस्त जीवों की गिनती एक जैसी नहीं है। इसलिए पुष्टि जीवों के आचार्य ने दो भेद किये हैं- शुद्ध पुष्टि जीव एवं मिश्रित पुष्टि जीव^२। शुद्ध पुष्टि जीवों के लिए एक मात्र भगवान ही फल है। भगवत्स्वरूप की प्राप्ति के अतिरिक्त उन्हें न मोक्ष चाहिए और न स्वर्गादि। आचार्य वल्लभ ने शुद्ध पुष्टि जीवों का वैदिकत्व अथवा नौकिकत्व दिखाने पर को कहा है^३।

मिश्रित पुष्टि जीव तीन प्रकार के हैं :

१- पु० प्र० म० श्लो० सं० ८-६-१०

२- उपरिचत् १४-१५

३- उपरिचत् २०

- १- पुष्टि मि पुष्टि
- २- मर्यादा मि पुष्टि
- ३- प्रवाही मि पुष्टि

ये तीनों भेद भगवत्कार्य की सिद्धि के लिए ही हैं। इनमें प्रथम प्रकार के पुष्टि मि पुष्टि जीव सर्वज्ञ होने के कारण अत्यन्त दुर्लभ होते हैं। मर्यादी मि पुष्टि वाले जीव भगवान् के गुणों को जानने वाले होते हैं। मर्यादी जीवों में वैदिक पक्ष वैदिक कार्यों का कारण होता है। प्रवाही मि पुष्टि वाले जीव क्रिया में प्रीति वाले होते हैं। संसारासत्य होने के कारण इनमें ली किकत्व होता है।

जैसा कि ऊपर देव एवं आसुर जीवों को दो श्रेणियों में रखकर देव जीवों का विशेषण किया जा चुका है अब आसुर जीवों के सम्बन्ध में भी एक वाक्य में इतना कहा जा सकता है कि आसुरी सृष्टि के योग आकल्पित इस संसार में मटकने के लिए हैं।^१

शुद्धाद्वैत दर्शनमें 'जगत्'

जगत् आधिमौक्तिक ब्रह्म स्वरूप है। जगत् सत् है अतः उसकी उपलब्धि होती है। असत् पदार्थ का भाव ही नहीं होता और अभाव में सत् नहीं होता।^२ ब्रह्म की इच्छा मात्र से ही आकाशादिक पंच-तत्त्वात्मक प्रपञ्च की उत्पत्ति हुई है।^३ अतः यह जगत् कार्य है और ब्रह्म कारण।

१- श्रीमद्वल्लभ- दर्शन एवं भक्ति सिद्धान्त - प्रतिभा व्यास पृ० २४

२- नासतो विद्यते भावो ना भावो विद्यते सतः ॥ गी० १२।१६

३- तदिच्छायाब्रह्मस्माद् ब्रह्म भूतांश्चेतना ॥ त० दी० नि० २७

वह अपनी स्वेच्छा से अपने संदेश के माध्यम से जगत् को आविर्भूत कर देता है, जिस प्रकार मछली अपनी नाभि से जाल का प्रसार कर देती तथा पुनः उसे समेट लेती है उसी प्रकार ब्रह्म भी जगत् को अपने में लय कर लेता है। अतः जगत् ब्रह्म का विकार नहीं अपितु अविकृत परिणाम है।

‘जगत्’ और ‘संसार’ का अर्थ

अन्य दार्शनिक मतवाल्मिहियों ने जगत् को संसार और संसार को जगत् मानकर इसमें अमेद स्थापित किया है परन्तु शुद्धाद्वैत दर्शन में जगत् और संसार का भेद बहुत स्पष्ट किया गया है। जगत् भगवत्कार्य होने के कारण सत्य है और भगवद्रूप है परन्तु संसार जीव कार्य होने के कारण अद्वैताममतात्मक है। संसार का ज्ञान के कारण नाश हो जाता है किन्तु जगत् का नाश नहीं होता, जगत् का लय होता है। संसार अविद्या का परिणाम है। जगत् ब्रह्म का अविकृत परिणाम है। अतः जगत् की स्थिति है संसार की नहीं। संसार की स्थिति ज्ञान न होने तक ही है। राग द्वेष और ममता के चले जाने पर संसार नाश हो जाता है। संसार के कारण जीव को सुख दुःख होते हैं, जगत् के कारण नहीं। इस प्रकार वाल्मि मत में जगत् और संसार अलग अलग हैं।

शुद्धाद्वैत दर्शन में ‘माया’

भगवान् की शक्ति का नाम माया है। भगवान् में सर्वरूप होने की शक्ति है। यह शक्ति अथवा माया भगवान् से अभिन्न है।

मगवान् की बारह शक्तियाँ हैं, जिस प्रकार कोई शासक अपने सेवकों द्वारा राज कार्य सम्पन्न कराता है उसी प्रकार श्री मगवान् भी अपनी शक्तियों द्वारा विश्व का शासन कर रहे हैं। ये शक्तियाँ हैं :

श्रिया पुष्ट्या, गिरा, कान्त्या, कीर्त्या तुष्टयेन्योर्जया ।

विधया विधयाशक्त्या मायया च निष्ठीवितम् ॥४॥

मत् १०।३६।५५

माया के रूप दो हैं :

१- विद्या माया और

२- अविद्या माया

विद्या माया मगवत्साक्षात्कार कराती है और अविद्या माया जीव को बंधन ग्रस्त करती है। आचार्य वल्म ने मगवत्कार्यों की साधिका होने के कारण विद्या को षट् धर्म ऐश्वर्यादि से युक्त 'योग माया' कहा है। आचार्य अविद्या को व्यामोहिका कहते हैं। यह माया प्रमोत्पादिका है। बुद्धि को यथार्थ ज्ञान से वंचित करने में यह सशक्त है। ब्रह्म बुद्धि को आच्छादित कर मिथ्या राग बुद्धि उत्पन्न कर देती है।

योग माया मगवान् की लीलीपयोगिनी माया है। अतः बंधन मुक्ति के लिए योग माया साधन है। आचार्य वल्म ने विद्या

१- या जगत्कारणभूता मगवच्छक्तिः सा योगमाया ।

- सुबो० दशम स्कन्ध जन्म प्र०

२- देवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतास्तरन्ति ये ॥ गी० ७।१४

द्वारा जीवन्मुक्ति होना बताया है :

पैतृर्षात्वि विधेयं यद्बद्धो याति संसृतिम् ।

विधया विधानाशेतु जीवन्मुक्तौ न विष्यति ॥

(त० टी० निबन्ध ३३)

जीव में अविद्याजन्य पाँच अव्यास होते हैं :

- १- देहाव्यास
- २- इन्द्रियाव्यास
- ३- प्राणाव्यास
- ४- अन्तःकर्णाव्यास
- ५- स्वरूपाव्यास

आचार्य बल्लभ अविद्या की निवृत्ति से कैवल्य मुक्ति की प्राप्ति बताते हैं।^१ सभी धर्म सम्प्रदायों में जीवन का लक्ष्य मगवद् प्राप्ति अथवा मोक्ष है। सांसारिक दुःखों से मुक्ति जिसे योगदर्शन में "हानो-पाय" कहा गया है, वही आत्यन्तिक सुखोपयोगी है। शाश्वत सुख की परि-भाषा वेदान्त दर्शन में आवागमन से मुक्ति कही गई है। आवागमन अथवा जीवन - मरण इसीलिए कष्ट प्रद है कि जीव को उसमें गर्भवास करना पड़ता है। इस गर्भवास को सभी भक्त्याचार्यों एवं दर्शनाचार्यों ने जीव के लिए अवहित माना है। अतः दर्शन में अथवा वेदान्त में जिसे "मुक्ति" कहा गया है, योग

१- आसम्यस्य हरेर्वापि सेवया देव भावतः ।

इन्द्रियाणां तथा स्वस्य ब्रह्मावात्सल्यो भवेत् ॥ त० टी० ४५

मैं जिसे ' निरोध ' कहा है, भक्त्याचार्यों ने जिसे सायुज्य मुक्ति कहकर फ़ारार उसे भक्तों ने नित्य लीला में बिहार माना है। शुद्धाद्वैत दर्शन में इसे ही ' निरोध ' कह कर भगवत् लीलानुचिन्तन का एक मात्र साधन माना है। चित्त वृत्ति का प्रपञ्चशून्य होना ' निरोध ' की प्राकट्य भूमि है। आचार्य वल्लभ ' निरोध ' को तीन प्रकार का मानते हैं :

१- उत्तम

२- मध्यम

३- कनिष्ठ^१

उत्तम प्रकार के निरोध की चर्चा करते हुए आचार्य कहते हैं कि गोकुल से भगवान् के चले जाने पर और दीर्घकाल के पश्चात् अपने स्नेह संदेश के साथ उद्धव को गोकुल प्रेषित करने पर ब्रजवासियों में जो आनंद अथवा उत्सव जागृत हुआ वैसा आनन्द जब भक्त के मन में जागृत होता है तो वही उत्तम निरोध कहा जाता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि विरह, ताप क्लेश के परिणाम स्वरूप सतत भगवत् चिन्तन पूर्ण विरह दशा का अनुभव ही उत्तम निरोध है। आचार्य के सिद्धान्त में संयोग सुख की अपेक्षा विरह दशा का सुख उच्चतम और अधिक आनन्दप्रद है :

यच्चदुःख यशोदायाः नन्दादीनां च गोकुले ।

गोफ़िनां तु यद् दुःख तद् दुःखं स्यान्मे क्वचित् ॥ २

यही वल्लभ मत में मन का सर्वोत्तम निरोध है।

१- निरोध लक्षण ग्रंथ - श्लो० २

२- उपरिक्त १

आचार्य के मत में दुःख वही है जिसकी बलेशमयी अनुभूति माता यशोदा नंद जी अथवा गोपिकाओं को हुई थी। अविद्या रूप पूतना के वध के समय अथवा मोह रूप तृणावर्त का नाश करते समय वात्सल्यमय नंद यशोदादि को जो बलेश हुआ वही बलेश अथवा दुःख आचार्य के सिद्धान्त में परम मवत के लिए वांछनीय है। उत्तम 'निरोध' की स्थिति, साधक को विरह दशा में ही प्राप्त होती है। ऐसा निरोध जिसमें ताप जन्य परमानन्द निहित होता है, भगवद् कृपा से ही मिलता है। चित्त की निरोधात्मक स्थिति लीलामय हो जाने में है। 'लीला उसका प्रयोजन है।' 'लीयन्ते जनस्याम् स लीला।' लय से तात्पर्य वृत्तियों के लय से है। सर्ग, विसर्ग, अति आदि सब भगवान् की लीलाएँ हैं। चित्त की लयावस्था में ब्रिकृष्ण विस्मृत नहीं होते अपितु वृत्तियाँ ब्रिकृष्णमय हो जाती हैं। यही भक्ति मार्गीय सैन्यास की पूर्व पीठिका है। इस प्रकार शुद्धादित दर्शन में 'लीलावत्तु कैवल्यं' लीलामय हो जाना ही मोक्षा - परमार्थ है।

तृतीय अध्याय

महाप्रभु वल्लभाचार्य कालीन काशी

अध्याय तृतीय

महाप्रभु वल्लभाचार्य कालीन काशी

उत्तर भारत में मुगल बादशाह बाबर तक मुस्लिम धर्म व्यवस्थित रूप से स्थापित हो चुका था । सूफी धर्म भी अपने उद्भव और विकास मार्ग पर था । मुसलमानों को अपने धर्म प्रचार की निरन्तर चिन्ता बनी रहती थी , किन्तु हिन्दू धर्म अनेक मतवादों से आ-क्रान्त था । ई० सन् १४५० में लोदी वंश की सत्ता स्थापित हो चुकी थी, परन्तु यह वंश अधिक काल तक दिल्ली के राज्य सिंहासन पर टिक न सका । शनैः शनैः मुगलवंश के पैर जम रहे थे, इस सन्धिकाल में समूचा भारत विशेष कर उत्तर भारत बराजकता से परिपीड़ित था । काश्मीर से लेकर सुदूर दक्षिण तक और गुजरात से लेकर बंगाल तक मुस्लिम शासन प्रसार पा रहा था और किन्हीं किन्हीं प्रान्तों में मनी भाँति जम भी गया था । मुस्लिम शासकों को न केवल राज्य तंत्र के ही प्रसार की चिन्ता थी अपितु धर्म प्रसार की उससे अधिक चिन्ता थी ।

विदेशी शासन और संस्कृति के ऐसे दुर्घट समय में महाप्रभु वल्लभाचार्य का आविर्भाव हुआ था । इस काल की धार्मिक सामाजिक परिस्थिति का आचार्य ने संकेत मात्र अपने कृष्णाश्रय में दिया है।^१ कृष्णाश्रय जहाँ एक ओर अनन्य भक्ति भावना का ग्रंथ है वहाँ दूसरी

१- सर्वमार्गेष्णुनष्टेषु कलौ न सल धर्मिणि ।

पाषांड प्रहुरे लोके, कृष्ण स्व गतिर्मम ॥

कृष्णाश्रयस्तोत्रम् श्लोक सं० १- ३

और आचार्य युगीन भारतीय समाज की स्थिति का व्यौरा भी उसमें व्यव-
नित है। इस विवरण में आचार्य बल्म ने भारतीय सवर्णों विशेषकर ब्राह्मण-
वर्ग की कर्तव्यहेनता और नीचपता का संकेत किया है। साथ ही तत्कालीन
राजनीतिक परिस्थितियों की चर्चा भी हुई है। हिन्दू तीर्थों की विनाश-
लीला का उल्लेख भी आचार्य ने कृष्णाश्रय ग्रन्थ में किया है। कहने का तात्पर्य
यह है कि आचार्य से पूर्व तीन सौ वर्षों के अन्तराल में समग्र देश अस्त व्यस्त
था। बार बार की राज्य क्रांति के कारण प्रजा अशान्त और पीड़ित थी।
बीच बीच में धर्मान्ध आक्रान्त खन शासकों के अत्याचारों के कारण प्रजा
आर्थिक और धार्मिक चोब्रों में अत्यन्त ब्रस्त थी। यदि कहीं ब्राह्मण मिला
तो सैंतों, महात्माओं और आचार्यों के वचनामृतों में ही। नामदेव से लेकर
तुलसी तक और ज्ञानेश्वर से लेकर आचार्य बल्म तक की सैंत परम्परा ने देश
को धर्म और संस्कृति के चोब्र में संरक्षण किया। इनके अमृतमय वाङ्मय
से पीड़ित मानवता को प्राण मिला। साथ ही दिशा बोध भी हुआ।

यह स्थिति केवल उत्तर भारत की ही
नहीं थी। दक्षिण भारत की भी थी। भौगोलिक स्थिति के कारण
दक्षिण भारत यद्यपि आक्रान्ताओं के लिए दुर्गम और अपराजेय बना हुआ
था। किन्तु वहाँ अन्य प्रकार की धर्मान्धता थी। गुजरात में पाशुपतों
के मठ थे। दक्षिण के ल्कुलीश और वैष्णव तथा जैन अपनी अपनी ढफनी
पर अपना अपना राग अलाप रहे थे। भारत के पश्चिमी तट से धीरे धीरे
खन भी पहुँचते की चेष्टा कर रहे थे। इस प्रकार वहाँ भी धार्मिक एकता
का अभाव था। ऐसे समय में यामुनाचार्य एवं रामानुजाचार्य के आ विर्भाव
भागवत धर्म का अरुणोदय हुआ। ११ वीं से लेकर १३ वीं शताब्दी तक
श्री रामानुज, श्री निम्बार्क, श्री विष्णु स्वामी तथा श्री मध्वाचार्य जैसे

वैष्णवों ने उच्छिन्न होते हुए धार्मिक चोत्र की बागडोर सम्हाली ।

आठवारी की राधा कृष्ण भक्ति, गीत गोविन्द की प्रेम पद्धति, नीला शुक्ल का कृष्ण कर्णामृत ऐसे समय में जन-मन को असंख्य विश्वास दे गया । उधर गुजरात में भी राधा कृष्ण-भक्ति प्रसार पा रही थी और महाराष्ट्र में 'बिठोवा' और 'रुक्माई' का माहात्म्य अत्यन्त लोकप्रिय हो रहा था । 'विठ्ठ' शब्द 'विष्णु' का कन्नड़ अपभ्रंश है। यह 'विठ्ठ' द्वाकापति कृष्ण जो रुक्मणी के पति हैं, वास्करी सैतों के परमाराध्य हैं। गुजरात के चक्रधर नामक ब्राह्मण ने महाराष्ट्र में पहुँच कर महानुभाव पैथ की नींव डाली । यद्यपि चक्रधर गुजराती थे परन्तु उनका संपूर्ण साहित्य प्राचीन मराठी में है। ये महानुभाव पैथी भी कृष्ण भक्त थे । किन्तु मूर्ति उपासक नहीं थे । इसलिए इनका प्रभाव प्रायः महाराष्ट्र में प्रसार न पा सका । वास्करी सैतों का तत्त्व ज्ञान निर्गुण-सगुण, निराकार साकार समन्वय ज्ञानेश्वर प्रतिपादित ज्ञान प्रधान भक्ति अपने अकाट्य भक्ति-सिद्धान्तों के कारण अत्यन्त लोकप्रिय हुआ । ज्ञानदेव जैतवादी ज्ञानी भक्त थे । कृष्ण को परमोपास्य मानते हुए वर्णाश्रम व्यवस्था के कट्टर समर्थक थे । जिस प्रकार महानुभाव पैथ पर वीर शैव सम्प्रदाय का प्रभाव था । उसी प्रकार ज्ञानेश्वर महाराज पर नाथ सम्प्रदाय का भी प्रभाव था । समसामयिक सम्प्रदायों में प्रायः परस्पर आदान-प्रदान होता ही है और वे परास्परिक प्रभावों से वंचित नहीं रह पाते । ज्ञानेश्वर महाराज ज्ञानी भक्त थे । परन्तु उनके समसामयिक नामदेवादि सैत अत्यन्त अनन्यतावादी थे । नामदेव ने लम्बी आयु पायी थी । उनके फाँ अथवा अमंगों में तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक स्थिति का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। यवनों के देव मंदिर तोड़ने की चर्चा उनके स्क अमंग में मिलती है। फिर भी दक्षिण विशेष कर पश्चिमी बेल अधिक यवनाक्रान्त न हो सका ।

स्कनाथ और तुकाराम के समय तक, खन सुमुदाय दक्षिण में भरपूर प्रसार पा सका था। स्कनाथ के जर्मनों में हिन्दू मुस्लिम धार्मिक विवाद गहराई से देखा जा सकता है। उस युग में उत्पीड़न का बोलबाला था। तुकाराम का "परच्छ^१" रामदास का "जस्मानी सुन्तानी^२" में तत्कालीन भारत का चित्र देखा जा सकता है।

उत्तर भारत में कबीर का प्रभाव प्रसार पा रहा था। नौक भाखा के माध्यम से जनता और शासन में पारस्परिक सहिष्णुता के बीज वफा का प्रयत्न किया जा रहा था। नौकी वंश दिल्ली की गद्दी पर आसीन था। ऐसी विशृंखल स्थिति का लाभ आक्रामक मुगलों को मिला। देश की ऐसी जीर्ण शीर्ण स्थिति में आचार्य बल्म का आविर्भाव हुआ था। उनके पिता श्री लक्ष्मण मट्ट दक्षिण से काशी चले आये थे। परन्तु काशी तक आक्रान्ताओं के पद प्रसार पा चुके थे अतः आचार्य के पिता श्री लक्ष्मण मट्ट सर्व माती हल्मागारु को तैपारण्य मध्य प्रदेश के मार्ग दक्षिण की ओर जाने को बाध्य होना पड़ा।

तात्पर्य यह कि बल्मकालीन काशी धर्म का और विधा का केन्द्र होकर भी राजनीतिक दृष्टि से असात थी। धार्मिक दृष्टि से विष्णु स्वामी का कोई मठ जगवा स्थान नहीं था। काशी विधा का केन्द्र होने के कारण दक्षिण के आचार्य यहाँ निरन्तर आते रहे। आचार्य शंकर, रामानुज, निम्बार्क, विष्णु स्वामी सर्व मध्य दक्षिण की ही देन हैं। यहाँ तक कि वेद भाष्यकार सायणाचार्य और सर्वदर्शन संग्रहकर्त्ता माधवाचार्य जो बाद में स्वामी विचारण्य हो गये-

१- तुकाराम के वे जर्मन जिसमें उन्होंने शिवाजी पर खनों द्वारा हुए हमले और वफा हरि कीर्ति में आये विघ्न को परच्छ कहा है।

२- समर्थ रामदास ने "जस्मानी सुन्तानी" में भारत के तत्कालीन दुर्मिजा

वादि विद्वान् दक्षिण के ही थे। इसीपरम्परा में, यद्यपि आचार्य वल्क्य के पूर्वज दक्षिण के थे परन्तु महाप्रभु का जन्म और अध्ययन क्रमशः मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश में हुआ।

आचार्य के पूर्वज विष्णु स्वामी सम्प्रदाय के अनुयायी थे और अपने आराध्य के रूप में गोपाल कृष्ण की उपासना करते थे। यह कुरुम्ब यज्ञ यागादिक धर्म में आस्थावान् था। लक्ष्मण मट्ट पूर्वज यज्ञनारायण मट्ट वेद के कृष्णयजुर्वेदान्तर्गत तैत्तिरीय शाखा, गौत्र भारद्वाज सूत्र वापस्तम्ब, देवी रेणुका, कुन्वेल्लनाटीय^१, एवं अवटक सैमपट्टीवार था। मट्ट यज्ञनारायण अग्निहोत्री थे। अतः यज्ञ यागादिक, इनके यहाँ सतत चलते रहते थे। मट्ट नारायण जे बत्तीस यज्ञ किये थे, इस कारण ये लोग सोमयाजी अथवा दीक्षित उपनाम से विख्यात हुए। आचार्य सदैव अपने को दीक्षित लिखते थे।

इस वंश में यह मान्यता थी कि सौ यज्ञ पूरे होने के बाद किसी भगवद्देश का अवतरण होगा। लक्ष्मण मट्ट तक १०० यज्ञ पूरे हो चुके थे। अतः उनका विचार हुआ कि प्रयाग में अवमृथ स्नान किया जाय और काशी में ब्रह्मोज^२। अपनी इस महती इच्छा पूर्ति के लिए ही लक्ष्मण मट्ट उत्तर भारत में पधारे थे और काशी में ही उन्होंने अपना घर बार जमा लिया था।

जैसा कि उल्लिखित है, काशी की स्थिति बिगड़ने पर लक्ष्मण मट्ट दक्षिण की ओर भागे परन्तु यह सूचना मिलते ही वापस काशी आगये। इसी आवागमन में सप्त भारतीय बालक वल्क्य

१- सम्प्रदाय कल्पद्रुम

२- मूलपुरुष

३- मूल पुरुष पृ० १४५ श्लोक ११०

का जन्म हुआ और काशी में ही वल्म का मरण पोषण हुआ । इस समय तक काशी में अनेक सजातीय तैलंग विप्र आक्से थे । सैमवतः लक्ष्मण भट्ट इसी मोह में लौटे होंगे । पितृकी लक्ष्मण भट्ट के स्वभाव का परिचायक एक श्लोक आचार्य वल्म ने अपनी भागवत की सुबोधिनी व्याख्या में दिया है, जो इस प्रकार है :

श्रीमद्वल्म विद्वदीश विलसद्वंशाव्यपूर्णन्दने ।
 श्रीगोपीपतिवन्दने सुमनसि ब्रह्मामृतस्यन्दने ॥
 श्रीमल्लक्ष्मणभट्ट सुरि रितियन्नामास्त्रिामीष्टदम् ॥
 तस्मात्तात महाशयाय हरये कुर्मो नमः सिद्धये ॥ १

अर्थात् 'श्रीयुत विद्वद्वय्य वल्म (आचार्य वल्म के पितामह) के तरंगोयित वंश रूपी महासागर की वृद्धि को करने वाले पूर्ण चन्द्र रूप एवं श्रीगोपियों के प्रिय श्री गोपाल कृष्ण को प्रणाम करने वाले अपने सुंदर मन में ब्रह्मामृत के निर्माता को बहाने वाले, जिनका नाम श्रीमान लक्ष्मण भट्ट सुरि है, जो समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। उन भगवत् रूप पिताश्री की सिद्धियों की प्राप्ति हेतु नमस्कार करता हूँ।

प्रस्तुत श्लोक में 'श्री गोपीपतिवन्दने विशेषण' पद से श्री लक्ष्मण भट्ट का श्रीविष्णु स्वामी की परम्परातु-कूल गोपाल कृष्ण की उपासना करना सिद्ध होता है। इस संदर्भ में प्रकाशकार श्री पुरुषोत्तम जी लिखते हैं :

“सुमनसीत्यादिना ज्ञानपदेशकथ नादहं होपासकत्वम् ।
 नाम माहात्म्य कथनेनाहं होपासना जनित सामर्थ्यवत्त्वम् ।
 पूर्णोपासकत्वबोधनाय हरय इति ।” २

१- भाग० सुबो० १।१।१ श्लोक ३

२- भागवत स्क० १ की प्रकाश टीका पृ० २

तात्पर्य यह हुआ कि श्री विष्णु स्वामी की परम्परा में प्राप्त गोपान्नीपासकना करते हुए लक्ष्मण मट्ट जी की भक्ति में 'अहं ब्रह्मास्मि' का भाव समन्वित था (अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ और गोपाल कृष्ण से अभिन्न हूँ) इस प्रकार की अहंग्रह उपासनाके कारण उनमें पूरी सामर्थ्य भी थी। और वे पूर्ण भगवदोपासक थे। इसीलिए काशी का वातावरण लक्ष्मण मट्ट को रुचिकर रहा। लगभग वि० सं० १५२७ में लक्ष्मण मट्ट काशी आगये थे। काशी में मठ्य सम्प्रदाय के एक विद्वान् माधवेन्द्र यती लक्ष्मण मट्ट के सम्पर्क में आये थे। वे दक्षिण के ही थे और नित्यानन्द महाप्रभु (चैतन्य महाप्रभु के सहचर) के गुरु भाई थे। काशी में इनकी पाठशाला चلتی थी। संभवतः उसी में आचार्य बल्लभ का विवाज्ययन हुआ था।

माधवेन्द्र यती जब ब्रजवास की इच्छा से काशी छोड़ने लगे तो अपने एक प्रिय विद्वान् माधवानन्द को अपनी पाठशाला का भार छोड़ गये। इसलिए आचार्य बल्लभ के विवाज्ययन में कोई बाधा नहीं आई। सातवें वर्ष में उन्हें अपने पिता से गोपालमैत्र की दीक्षा मिली थी। इसप्रसंग की चर्चा सगुणदास ढाँठी के पद में मिलती है। जिसका अभिप्राय यह

१- कदाचित्स सप्तमीकः काश्यां गन्तुं विनिर्गतः ।

मठ्ये मार्गे प्रयागाख्ये तीर्थराजे समागतः ॥

तत्रार्कग्रहणो प्राप्ते कृत्वास्नानादिकां क्रियाम् ।

ब्राह्मणान्भोजयामास श्रद्धाभक्ति समन्वितः ॥

- सम्प्रदाय कल्पद्रुम ६, १०

२- धन्य धन्य माधवमास, स्कादशी कृष्णपक्ष शुभरातरी ।

सात घड़ी उपरांत फल चालीस, उपज्यौ जग विख्यात री ॥

- सगुणदास

है कि दक्षिण की पद्धति के अनुसार यज्ञोपवीत धारण गायत्री मंत्र की दीक्षा
अथवा अन्य धार्मिक संस्कार करने का भी यही समय है। सगुणदास जी आगे
लिखते हैं :

काँकखारे तैलंग तिलक-द्विज बंदी श्रीमदनक्ष्मणनंद ।
श्री ब्रजराज सिरोमणि सुंदर भूतल प्रगटे वल्लभनंद ॥
अवगाहत श्री विष्णुस्वामि पथ नवधा मच्चितरत्न रसकंद ।
दरसन ही प्रसन्न होत मन प्रगटे पूरन परमानंद ॥
कीर्ति विशद कहाँ नौ बरनौ गावत नीलाश्रुति सुरकुंद ।
सगुणदास प्रभु षट्गुण संपन्न कलिजन उद्धरण आनंदकंद ॥

- सगुणदास

जब आचार्य वल्लभ काशी में ही थे और विद्याभ्यास
में रत थे। तभी एक युवक, गुरु की टोह में फिरता-फिरता काशी आया
और लक्ष्मण भट्ट के यहाँ बालक वल्लभ को देखकर उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि
यही बालक मुझे चिर शान्ति प्रदान कर सकेगा। यह युवक कृष्णदास मेघन
था जो जीवनपर्यन्त आचार्य की परिचर्या में रहा। पन्द्रह वर्ष की आयु में
आचार्य ने वैष्णव तंत्र, शैव तंत्र, प्रभाकर, कौमारिल, मौक्तिक आदि
सिद्धान्तों का गहन अध्ययन कर लिया। साथ ही विष्णु स्वामि, रामानुज,
निम्बार्क, मध्व आदि सम्प्रदायों के विशिष्ट सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त
कर लिया। थोड़े समय पश्चात् पिताश्री लक्ष्मण भट्ट ने सकुटुम्ब दक्षिण
यात्रा का विचार किया तथा आचार्य वल्लभ ने भी अपने गुरु माधवानंद
जी से दक्षिण यात्रा हेतु अनुज्ञा प्राप्त की। आचार्य के मामा का घर
विजयनगर में था। वे राज्याश्रित विद्वान् थे। वह शैव और मध्व की
परम्परा का गढ़ था। विजयनगर महाराज के यहाँ माध्व परम्परा की
उपासना थी। आचार्य वल्लभ ने वहाँ कुछ दिन विद्याभ्यास किया। वे

दर्शन शास्त्र के तो पारंगत पंडित थे ही। यहाँ उनको बौद्ध, जैन, चावोंकादि सिद्धान्तों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने का सुवसर मिला। आचार्य के ग्रंथों (सर्व निर्णय प्रकरण आदि) से उन बातों का संकेत मिल भी जाता है। विजय नगर में निवास करने के उपरान्त पिता लक्ष्मण मट्ट ने दक्षिण की तीर्थ यात्रा का संकल्प किया और ई० सन् १४८७ में श्री वैकुण्ठेश्वर का शृंगार करते करते उनमें लीन हो गये। इसी समय इनके बड़े भाई रामकृष्ण ने संन्यास ले लिया और वे केशवपुरी के नाम से विख्यात हुए।

इसी बीच आपने पुरुषोत्तम चौब्र जगन्नाथपुरी की यात्रा की और वहाँ के राजा पर अपना प्रभाव जमा लिया। यात्रा करते करते वे ग्रंथ लेखन का भी कार्य करते थे। माता से आज्ञा लेकर भारत पर्यटन किया। साथ में केवल श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीमद्भागवत तथा सेव्य सा लिग्राम ही थे। तीर्थस्थलों में वे श्रीमद्भागवत पारायण का क्रम रखते थे। श्रीमद्भागवत पर उनका असाधारण अधिकार होने के कारण उनके अनेक शिष्य भी बने। विजयनगर से, वे फेडरपुर पहुँचे, वहाँ भागवत के पारायण के साथ "तत्त्वदीप निबन्ध" एवं "अणुभाष्य" का लेखन प्रारम्भ किया। फेडरपुर से वे पुनः विजयनगर गये और यहाँ उन्होंने अपने ग्रंथों को पूरा किया। इसी मध्य विजयनगर में अन्यवादियों से शास्त्रार्थ में विजय पाने के परिणाम स्वरूप आचार्य का कनकामिषौक हुआ। पुनः तीर्थ यात्रा करते करते आप

१- निजवार्ता पृ० ३

२- संप्रदाय प्रदीप पृ० ६८ में अंकित - संग्रहस्त्वेतावदेकश्रीमद्भगवद्गीता,
भागवत मूल पुस्तक शाबनग्रामशिल्पा ।

३- राममद्रो यदा राजा राजते वै स्वपत्तने ।

तदा श्रीविल्लाचार्यः कृपया तु समागतः ॥

प्रसन्नेन तदा राजा सुवर्णनामिषचितः ॥ संप्रदायप्रदीप पृ० १७

काशी पधारे। इस समय तक आफ्ना विवाह हो चुका था। इस कारण काशी के पुरुषोत्तमदास सेठ के यहाँ निवास किया। सेठ पुरुषोत्तम दास के घर पर कुछ समय तक भागवत का पारायण करते रहे। काशी निवास में ही पद्मावल्लभ ग्रंथ की रचना की। पद्मावल्लभ का स्फुट उद्देश्य यही था कि "ब्रह्माद" अर्थात् शुद्धाद्वैत दर्शन के सिद्धान्तों को वहाँ के पंडितों से परिचय कराते हुए सँक्षेप में उनका समाधान किया जा सके।

"पद्मावल्लभ" में वे लिखते हैं :

"तच्च कृष्णप्रसादेन मायावादी निराकृतः।

आवैदिकी महादेवस्तत्र साक्षी न संशयः ॥१॥

पद्मावल्लभ से यह भी ज्वलित होता है कि उनका किसी एक मायावादी के साथ गहरा शास्त्रार्थ हुआ था। इसीलिए "सम्प्रदाय प्रदीप" में आया है :

"मायावादिगजानीकनाशने सिंह विग्रहः।

कृष्णद्वैपायनो व्यासः व्यासतीर्थः कलौत्तमः ॥ पृ० ५६

सेठ पुरुषोत्तमदास में वैष्णवी अनन्यता को देखते हुए उन्होंने सेठ पुरुषोत्तमदास को दीक्षा देने का अधिकार दे दिया था। सेठ के घर निवास करने के कारण वह आचार्य की प्रथम बैठक कहलाती है। इस बैठक के तीन महत्त्व हैं। सर्वप्रथम नंद महोत्सव श्री मदन मोहन जी को पधराकर इसी स्थान पर किया गया। "जणुमाष्य" ग्रंथ का लेखन समाप्त यहीं हुआ।

पद्मावल्लभ ग्रंथ भी यहीं लिखा गया और उनके उप-नयन एवं विवाहादि संस्कार भी यहीं हुए। काशी की दूसरी बैठक श्री हनुमान

घाट पर है। यहाँ उन्होंने संन्यास निर्णय ग्रंथ एवं अन्तःकरण प्रबोध ग्रंथ की रचना भी की और सँ० १५८७ के आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को आपने दोनों पुत्रों को शिक्षा श्लोक यहाँ लिखवा दिये। तदनन्तर आचार्य ने गंगा में जल समाधि ले ली।

काशी के दीर्घ निवास के परिणाम स्वरूप आचार्य के शुद्धाद्वैत दर्शन एवं अद्वैतवाद का भरपूर प्रचार हो चुका था। यद्यपि आचार्य श्री के काल में काशी में किसी पुष्टिमार्गीय मंदिर की स्थापना नहीं हुई थी, परन्तु आचार्य के अनेक भागवती शिष्य काशी में निवास करने लगे थे। सेठ पुरुषोत्तमदास जी के घर में श्री मदनमोहन जी की सेवा उनके निजी निधि के रूप में होती ही थी और सेठ पुरुषोत्तमदास को वैष्णवी दीक्षा देने का अधिकार प्राप्त था, इससे यह सिद्ध होता है कि आचार्य के युग में ही काशी पुष्टि मन्त्रि का केन्द्र बन चुका था और अनेक संपन्न एवं विपन्न परिवार पुष्टिमार्ग में दीक्षित हो चुके थे। काशी के पुष्टिमार्गीय वातावरण को तब और भी अधिक घना वातावरण मिल गया, जब श्री गिरिधर जी महाराज ने श्री सुकुन्दराय जी को पधराया। श्री सुकुन्दराय जी, श्री गोपाल लाल जी, श्री गोपीनाथ जी गौड़ के ठाकुर जी कहे जाते हैं। यह सुकुन्दराय जी का स्वरूप मूलतः किन्हीं गोविन्दाचार्य का था और संभवतः यह गोविन्दाचार्य आचार्य शंकर के गुरु रहे हैं। बहुत समय तक सुकुन्दराय जी का स्वरूप आचार्य बल्म के साथ रहा। यहाँ तक कि उनके भारत पर्यटन में भी यह स्वरूप साथ रहता था। साम्प्रदायिक विद्वानों का अनुमान है कि यमुनाष्टक में "सुकुन्द-रति-वर्द्धिनी" शब्द इन्हीं सुकुन्द राय जी को संकेत करके लिखा गया है तथा "मन्त्रि" और "न दुर्लभ-

१- यमुनाष्टक- सँ० श्लोक २

२- ,, ,, ६



तमारतिमुररियाँ मुकुन्दप्रिये^१” मी इन्हीं मुकुन्दराय जी के लिए लिखा गया प्रतीत होता है। काशी का यह पुष्टि पीठ षष्ठगृह के अन्तर्गत आता है। बटवारे के समय जब प्रभु नरणा विठ्ठलेश ने श्री बालकृष्ण जी को यदुनाथ जी के माथे पधराया तब उन्होंने अपने पिता से कहा कि मेरी तो श्याम-स्वरूप में रुचि है। इस पर गुसाईं जी ने उत्तर दिया था कि स्वरूप तो सब एक ही हैं उनमें श्याम और गौर का भेद कैसा ? फिर मी यदुनाथ जी ने श्री बालकृष्ण जी को स्वीकार नहीं किया। उधर उनके तृतीय पुत्र बालकृष्ण जी ने किन्हीं गौद के स्वरूप को देने की गुसाईं से प्रार्थना की तब यही श्री बालकृष्ण का स्वरूप गुसाईं जी ने अपने तृतीय पुत्र बालकृष्ण जी को दे दिया। श्री यदुनाथ जी अपने बड़े भ्राता बालकृष्ण जी के साथ रहकर श्री हार्कानाथ जी की सेवा करते थे। यदुनाथ जी ने भगवान बालकृष्ण का स्वरूप स्वीकार नहीं किया। इसका कारण यही था कि इस निधि का प्राकट्य श्री यमुना जी से है और मुकुन्दराय जी यमुना के पति हैं, अतः यमुनास्वामिनी के साथ बालकृष्ण जी का औचित्य नहीं, मुकुन्दराय जी का है। इसी कारण से वे मुकुन्दराय जी की सेवा में रहे। आगे चल कर इन्हीं मुकुन्दराय जी को गौ० गिरिधर जी ने काशी में पधराया। श्री मुकुन्दराय जी का मव्य मंदिर काशी में संवत् १८६६ में बन गया था। उस समय सत सिद्धान्त मार्तण्ड के रचयिता श्री गिरिधर श्री महाराज की अवस्था ३६ वर्ष की थी। १८७६ में एक बार श्री गिरिधर जी, जब नाथद्वारा थे, तब कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा के अन्नकूट समारोह में उन्होंने यह देखा कि उनके वंश की ओर से वहाँ कोई सेवा नहीं है, इसका उनको बहुत मानसिक खेद था।

इन दिनों नाथद्वारे में तिन्कायत श्री दामोदरदास

१- यमुनाष्टक श्लोक सं० ७

२- कांकेरौली का इतिहास- देखें

“दाऊ जी” विद्यमान थे। श्रीगिरिधर जी (यहनाथ जी के वैशज) उन दिनों नाथद्वारा थे। वहाँ उन्होंने अनेक उत्सवों में और मनोरथों में भाग लिया तथा तिल्लकायत “दाऊ जी” की सेवा के अनेक रहस्य बताये। इन दिनों मुकुन्दराय जी भी श्रीनाथ जी भी श्रीनाथ जी के साथ ही विराजते थे। उनके वहाँ विराजते तथा अन्य स्वरूपों के विराजने का रहस्य, शृंगार सेवा के अनेक रहस्य तिल्लकायत “दाऊ” जी को, श्री गिरिधर जी निरन्तर बताते रहते थे।

विद्वानों का मत है कि तिल्लकायत “दाऊ जी” अनभिज्ञ बनकर गिरिधर जी की परीक्षा लेते थे परन्तु सम्प्रदाय में यह प्रचलित है कि तिल्लकायत दाऊ जी, विशुद्ध जिज्ञासा भाव से ही उनसे ज्ञान प्राप्त करते थे, क्योंकि सम्प्रदाय में वे शुद्धाद्वैत दर्शन के अप्रतिम पण्डित थे। उनका ग्रंथ भी “सत् सिद्धान्त मार्तण्ड” शुद्धाद्वैत दर्शन का ग्रंथ है। इससे प्रभावित होकर गो० गिरिधर जी से तिल्लकायत “दाऊ जी” ने गोपाल मंत्र लेने की इच्छा की और यह भी जानना चाहा कि वे सम्प्रदाय सम्बन्धी अनेक समस्याओं का समाधान कैसे कर देते हैं। इसके उत्तर में गिरिधर जी ने अपने गुरु श्री द्वाखा नाथ जी की कृपा को ही एक मात्र कारण बताया। तदुपरान्त तिल्लकायत दाऊ जी के सम्बन्धियों द्वारा विरोध करने पर भी उन्होंने गिरिधर जी से ही गोपाल मंत्र की दीक्षा ले ली। तिल्लकायत दाऊ जी से गिरिधर जी

१- मुकुन्दराय जी की वार्ता में बताया है कि कुहुम्बियों के बहुत विरोध करने पर और यहाँ तक कि दादी जी श्री कमला बहू जी के निषेध करने पर भी दाऊ जी अपने संकल्प में दृढ़ रहे और श्री वल्म कुल के नाम से श्रीनाथ जी के नाम से आज्ञा लेने की दृष्टि से चिट्ठी डाली गयी। उसमें श्री गिरिधर जी महाराज के नाम की स्वीकृति मिलने पर तिल्लकायत दाऊ जी ने माघ शुक्ल पूर्णिमा संवत् १८७६ की चन्द्र ग्रहण के अवसर पर गोपाल मंत्र की दीक्षा ले ली।

- वार्ता मुकुन्दराय जी की पृ० २२

ने गुरु दक्षिणा मांगने के लिए कहा। श्री गिरिधर जी के यह कहने पर कि हमारी दक्षिणा आप से नहीं दी जाएगी। अतः मांगना व्यर्थ है, परन्तु तित्कायत दाऊ जी ने उनसे अत्याग्रह किया और स्वयं ही दक्षिणा देने के लिए वे वचनबद्ध हो गये। इसके पश्चात् गो० गिरिधर जी ने दक्षिणा स्वरूप मुकुन्दराय जी की याचना की। यह सुनकर श्री दाऊ जी धर्म सैकट में पड़ गये और सोचने लगे कि यह विग्रह कैसे दिया जा सकता है लेकिन प्रभु की अतर्कित लीला से श्रद्धेया दादी माँ कम्पना बहू जी की स्वप्न में गोकुलेश के विग्रह के साथ गोकुल जाने की प्रेरणा हुई और वे गोकुलेश की लेकर गोकुल चली गईं। श्रीनाथ जी के साथ विराजते वाले चार विग्रहों- नवनीतप्रिय, गोकुलेश जी मुकुन्दराय जी और गोपीनाथ जी में से गोकुलेश जी गोकुल चले गये तब श्री दाऊ जी को अवसर मिला कि अब दादी माँ की अनुपस्थिति में इस कार्य को किया जा सकता है। उन्होंने श्री गिरिधर जी के द्वारा सुझाए गये विकल्प को मान लिया जिसमें श्री मुकुन्दराय जी के स्थान पर शयन आरती

के समय 'वेणु' को पधराया गया और मुकुन्दराय जी का विग्रह श्री गिरिधर जी की सेवार्थ सौंप दिया गया। औपचारिक रूप से मविष्य में कोई विपत्ति उपस्थित न हो तदर्थ उन्होंने तित्कायत दाऊ जी से पक्की लिखा पढ़ी भी करवा ली और श्री दाऊ जी के आदेशानुसार ही उन्होंने काशी में मंदिर का निर्माण कराया। निरन्तर विघ्न आते रहे और मुकुन्दराय जी के काशी आगमन में विलम्ब होता रहा। अनेक अन्तर्बाह्य प्रतिबन्धों एवं अंतरायों के उपरान्त भी श्री मुकुन्दराय जी अपने समस्त परिकर - आभरण आभूषण सहित अनेक स्थानों पर विराजते हुए काशी पधारे। माघ शुक्ल ५ सौ० १८६७ को काशी में श्री मुकुन्दराय जी का पाटोत्सव हुआ। इस प्रकार श्री मुकुन्दराय जी और गोपाललाल जी काशी में प्रतिष्ठित हुए। श्री गोपाललाल जी सौ० १७८७ से ही विद्यमान थे। उनके १०० वर्ष बाद श्री मुकुन्दराय

जी का शुभागमन हुआ । श्री गोपीनाथ जी भी काशी में इन्हीं के साथ पधराये गये । यह स्वरूप गो० विट्ठलेश का निजी सेव्य स्वरूप था ।

मुकुन्दराय जी बहुत ही वामत्कारि रूप से काशी पधारे ही थे । श्री गिरिधर जी को नाथद्वारे से इनको जाने का संपूर्ण ज्ञेय था ही । मंदिर के निर्माण, भगवान् मुकुन्दराय की सेवा व्यवस्था, नित्योत्सव और वर्षा उत्सव के लिए उन्हें द्रव्य की आवश्यकता बनी रहती थी । बाबू हर्षिचन्द्र जो मारतेन्दु जी के पितामह थे उनसे गिरिधर जी महाराज ने ४० सहस्र रुपये का प्रबन्ध करने को कहा । हर्षिचन्द्र जी के पास उतना रुपया न होने पर उन्होंने श्री गिरिधर जी महाराज को कौहुवा और नाट्टी झमली के दो बगीचे मँट कर दिये । श्री गिरिधर जी महाराज ने केवल कौहुवा के बगीचे को ही बेचकर ४० सहस्र रुपया प्राप्त कर लिया । नाट्टी झमली का बगीचा विद्रुय होने से बच गया । इसी बगीचे का नाम बाद में मुकुन्द विनास रखा गया । यह बगीचा आज भी मंदिर के अधिकार में है। मारतेन्दु के वंशज आज भी इस बगीचे के मवन से मरत मिनाम का दर्शन करते हैं।

मुकुन्दराय जी का मंदिर जिसे गोपाल मंदिर भी कहते हैं उसके दोनों नवकारखानों का निर्माण मारतेन्दु जी के पूर्वजों ने ही कराया था । पहला नवकारखाना बाबू हर्षिचन्द्र अपने पुत्र गोपानन्द उपाध्याय गिरिधरदास के जन्म पर बनवाया और दूसरा बाबू मारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जन्म पर बना । गो० श्री गिरिधर जी महाराज ने मुकुन्दराय जी की स्थापना तो कर दी परन्तु उनके वैभव को बढ़ाने की दृष्टि से काशी के महाजनों ने विचार किया कि मंदिर का स्थाई आर्थिक प्रबन्ध हो जाना चाहिए । अतः सभी महाजनों ने चिट्ठा सड़ा किया और स्वा पाँच आना सैकड़ा प्रति व्या-

पारी काटने लगा । इसमें मारतेन्दु के पितामह सर्वप्रथम कृष्णी थे । यह क्रम आज भी बना हुआ है परन्तु आज बहुत से व्यापारी इस धर्मादा राशि को नहीं भीखते हैं और अन्य उसका विनियोग कर देते हैं^१।

काशी के व्यापारियों में वैष्णव भावना का परिचय ऊपर दिया जा चुका है। काशी मुख्यतः शैव नगरी है। श्री गिरिधर जी महाराज का पावन चरित्र ऐसा था कि उन्होंने अपने प्रताप से शैव नगरी काशी में पुष्टिमार्गीय वैष्णवत्व की गहरी नींव जमाई। बिना राज्याश्रय के मंदिर चरम उन्नति पर पहुँचाने का संपूर्ण श्रेय गो० गिरिधर जी को जाता है। गो० गिरिधर जी बहुत ही विनम्र सत स्वभाव के गौस्वामी थे। वे अन्य वल्लभ वंशज आचार्यों के समान राजसी वैभवपूर्ण जीवन नहीं बिताते थे। मारतेन्दु के पितामह के अत्याग्रह करने पर ही वे अपना जन्मोत्सव बड़ी सावगी से मंदिर के द्रव्य कोन स्पर्श करते हुए पौ० कृ० तृतीया को (श्री गौसाई जी के जन्म दिवस पर) गोपान लाल जी सुकुन्दराय जी गोपीनाथ जी आदि के साटन के वस्त्रों के साथ गिरिधर जी महाराज के वस्त्र भी मारतेन्दु के परिवार से ही जाते थे। महाराज श्री गिरिधर जी के केशर स्नान, भोग, निहावर, आरती आदि सब भेंट मारतेन्दु जी के परिवार से ही होती थी। आज भी यह उत्सव सुकुन्दराय जी के सेवक जन करते हैं।

बैंगल के प्रसिद्ध लाला बाबू, बाबू हर्षचन्द्र के बड़े मित्रों से थे। वे भी पुष्टिमार्गीय वैष्णव थे। उनके यहाँ गोकुल चन्द्रमा जी की सेवा थी। उनका वैभव प्रसिद्ध था। कहा जाता है कि बैंगल के भोग का प्रसाद जब उनको दिया गया तो १०० चाँदी के थाल भेजे गए थे। मारतेन्दु के वंश में जो नाम परम्परा चली जाती है वह पुष्टिमार्गीय है जैसे गोपान चन्द्र यमुना, गिरिधरदास, सुमद्रा आदि।

श्री गिरिधर जी के युग में उनकी सेवक संख्या वृद्धि को प्राप्त होती गई। उस समय अनेक अग्रवान् एवं व्यापारी परिवार पुष्टि मार्गीय होकर और उनको ठाकुर जी की सेवा सौंपी गई। घर घर में भगवत्सेवा का प्रारंभ हुआ। उस समय काशी के अनेक परिवारों का यह नियम बन गया था कि वे सुहृन्धराय जी के दर्शन के बिना अन्न जल ग्रहण नहीं करते थे।

काशी में महाप्रभु जी एवं गौसाईं श्री विठ्ठलनाथ जी जावि बाचार्यों की बैठकों से पुष्टिमार्गीय प्रभाव बढ़ने लगा और नित्योत्सव एवं वर्षोत्सवों का क्रम भी चलने लगा। काशी उस समय धनाढ्य व्यक्तियों से भर पुर था। उनकी चाटुकारिता में अनेक कवि काव्य रचना किया करते थे^१। परन्तु तत्कालीन वातावरण का ऐसा कुछ सात्विक प्रभाव पड़ा कि कवियों ने, कलाकारों ने धनदायों की उपेक्षा करना भी प्रारंभ कर दिया था^२।

मास्तेन्दु स्वयं सहृदय कवियों के आश्रयदाता थे और नूतन प्रतिमाओं को पर्याप्त प्रशंसा भी देते थे परन्तु वे 'नकद दमाद अभियागी' के अवश्य थे। उनके इस स्वभाव से परिचित अनेक कवियों, साहित्यकारों ने धनदों के अनावश्यक गुणगान की प्रवृत्ति को तिराजनि दे दी थी। मास्तेन्दु को इस दृष्टि से बनारस के साहित्यकारों के लिए अद्वितीय प्रेरणा स्रोत माना जायेगा।

उनके समय में अर्थात् १६२७ में काशी में एक कविता वर्द्धिनी सभा की स्थापना भी हुई थी जिसमें गुणियों, कवियों को प्रशंसा पत्र दिये जाते थे। इसी सभा में पैड़ित अम्बिकादत्त व्यास साहित्याचार्य को उनकी एक समस्या पूर्ति पर 'सुकवि' की उपाधि एवं प्रशंसा पत्र भी

१- सेठ पुरुषोत्तमदास की वार्ता- चौ० वौ० की वार्ता पृ० ३३३

२- ,, ,, ,, पृ० ३३४

३- पूरी अमी की कटोरिया सी चिरजीवी रहौ विकटोरिया रानी।

अर्पित किया गया था । काशी के तत्कालीन उच्च कौटि के कवियों के नाम इस प्रकार हैं :

सेवक कवि, सरदार कवि, नारायण, कविवर
 हनुमान, दीनदयालगिरि, पण्डित दुर्गादत्त गौड़ (उफाम दत्त) ,
 मन्नालाल द्विज आदि । काशी के जन जीवन में इन कवियों का बड़ा सम्मान
 था । ये सभी कवि उक्त कविता वर्द्धिनी समा से ' प्रशंसा पत्र ' पाये हुए
 थे । प्रशंसा पत्र का प्रारूप कुछ कुछ इस प्रकार था-

प्रशंसा पत्र^२ -----

यह प्रशंसा पत्र ----- की कवि समा की
 ओर से इस हेतु दिया जाता है कि आज की समस्या को (जो पूर्ण
 करने के हेतु दी गई थी) इन्होंने उत्तमता से पूर्ण किया और दत्त
 विषय की कविता इने प्रशंसा के योग्य की है इस हेतु मित्ती -----
 ----- की काव्य वर्द्धिनी समा के समापति, समाभूषण, समासद ,
 और लेखाध्यक्षों ने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक आदर से इनको यह पत्र दिया
 है।

मि०

संवत् १९२७

ह०

ह०

लेखाध्यक्ष

समापति

भारतेन्दुकालीन काशी

आचार्य बल्लभ स्वामी गोस्वामी विट्ठल नाथ जी के

१- प्रशंसा पत्र का प्रारूप भारतेन्दु द्वारा ही बताया गया ।

भा० पृ० ६४

२- श्री भारतेन्दु जी के निजी संग्रह से (श्री गिरिश जी से सामार)

समय से लेकर भारतेन्दु तक के दो सौ पैंसठ वर्षों के अन्तराल में अनेक राज-नीतिक उथल पुथल हुई। लोदी वंश, मुगल वंश की समाप्ति, फ्रांसीसियों और अंग्रेजों का आगमन आदि घटनाएँ देश के द्वांति पूर्ण राजनीतिक एवं सामाजिक जन जीवन के इतिहास की ओर संकेत करते हैं। भारतेन्दु के समय तक अंग्रेजी राज की स्थापना हो चुकी थी। महारानी विक्टोरिया के शासन के शान्ति काल का अरुणोदय हो चुका था फिर भी देश की स्वतन्त्रता के प्रेमी कतिपय प्रहरी जागृत थे। मने ही-वे संगठित न रहे हो। उसी का परिणाम था कि अटूट रह सौ सत्तावन की द्वांति विफल हो गई और तात्या टोपे, महारानी लक्ष्मीबाई जैसे देश के लिए प्राण निशान कर देने वाले वीर शिरो-मणि काल कवलित हो गए। देश अनेक स्वार्थी नरेशों के अधिकार में विभा-जित हो चला था। परिणामतः सत्तावन की द्वांति विफल होनी ही थी। उस विफलता ने अंग्रेजी शासन की वह सुदृढ़ नींव जमाई कि वे सन् १९४७ तक अर्थात् लगभग ६० वर्षों तक सुदृढ़ शासन करते रहे और समूचे देश को उन्होंने वह दासता प्रदान की जो स्वतन्त्रता के बाद भी आज तक धोये नहीं मिट पा रही है। अंग्रेजी दासता की विशेषता यह रही कि वह भारतीय भाव, भाषा, संस्कार, वेशभूषा, खान पान सब पर सवार हो गई।

राजनीतिक स्थिति के अतिरिक्त इस समय देश में वराजकता के साथ रुढ़िग्रस्तता, निष्क्रियता भी बुरी तरह देशवासियों में घुस गई थी। अशिक्षा तो अपनी गरम सीमा पर थी। समूचा समाज लगभग दो भागों में स्पष्ट रूप से विभाजित हो गया था। भारतीय संस्कार भारतीय शिक्षा दीक्षा वाला समाज पिछड़ा समझा जाने लगा। अंग्रेजी पढ़ा लिखा समाज अधिक सम्य एवं सुसंस्कृत। आर्थिक दृष्टि से देश की शर्तें शर्तें बुरा जा रहा था। भारतेन्दु के प्रफितामह सेठ अमीचंद के साथ जो

विश्वासघात किया गया वह इतिहास प्रसिद्ध घटना है। नया पूँजीवादी साम्राज्यवाद ऐसे फस रहा था जिससे वर्ग विशेष का ही हित हो सके। परिणामतः देश में व्याप्त वर्ग भेद ने मानसिक दृष्टि से समग्र राष्ट्र को खण्ड खण्ड कर दिया था। यह भी एक कारण था कि भारतेन्दु के मन में धन के प्रति संपूर्ण विवृण्णा जग उठी थी और उन्होंने आजीवन संपत्ति संग्रह के प्रति विद्रोह का भाव अपनाये रखा। अँगरेजों की इस शोषण वृत्ति को भारतेन्दु ने गहराई से परखा था, फड़ा था। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है :

मीतिर मीतिर सब रस ठूसै ।
हंसि हंसि के जन मन धन ठूसै
जाहिर बातन में बति तेज ।
क्योंसह साजन, नहिं अंग्रेज ॥ १

आर्थिक शोषण इतना मयावहनही था जितना भारतीय भाषाओं विशेषकर हिन्दी को समाप्त करने का अँगरेजी प्रयास। भारतेन्दु ने इस तथ्य को मली भाँति समझ लिया था। वे इस अँगरेजी जाल को सफल नहीं होने देना चाहते थे, अतः उन्होंने भाषा विषयक एक उदार दृष्टिकोण अपनाया साथ ही अत्यन्त सावधानी से वे हिन्दी के हित में जुट गए। हिन्दी के लिए उनमें एक अद्भुत तड़प थी अतः हिन्दी के लिए उन्होंने स्वयं भी बहुत काम किया और अपने समानधर्मी लोगों से भी काम कराया।

भारतेन्दु ने हिन्दी को राजभाषा बनाने के लिए एक बान्धोलन भी शुरू किया था। स्तदर्थें अनेक समारोहों, प्रेस को भी लिखा, दूसरों से भी लिखाया, पिटिशन भी भेजे, परन्तु तत्कालीन

शिक्षा दिख कर पैसत पर राजा शिवप्रसाद का गहरा प्रभाव था । राजा शिव प्रसाद अंगरेजों के पिटू थे । वे " कल के जोकरे " की बात कैसे चन्ने देते । उन्हें भारतेन्दु की बढ़ती लोक प्रियता से ईर्ष्या थी, फलतः पिटीशन बस्वी-कृत हो गए । छपर भारतेन्दु का मन " हाकिमी " अन्याय से दुःखी ही नहीं हुआ । सदा के लिए नाराज हो गया ।

राजा शिव प्रसाद फारसी मिश्रित हिन्दी बोलने के पक्षापाती थे । भारतेन्दु हिन्दी की परंपरागत सशक्त बोली के पक्षधर थे, अतः उन्होंने न केवल हिन्दी को नयी " बाल में ढाला " अपितु भारत की अन्य भाषाओं के निकट खड़ी बोली को ला दिया । भाषा एवं भारतीय संस्कृति के प्रति सही नीति को अपनाने के कारण ही करोड़ों हिन्दी भाषियों ने ब्रिटिश सरकार के बनारस " सितारे हिन्द " के मुकाबले में हरिश्चन्द्र को " भारतेन्दु " बना दिया और अपने हार्दिक प्रेम का परिचय दिया ।

परन्तु भारतेन्दु की एक विशेषता थी कि हिन्दी को परंपरागत रूप देते हुए तथा युगानुकूल हिन्दी आन्दोलन का नेतृत्व करते हुए भी उन्होंने उसे साम्प्रदायिक रुख नहीं अपनाने दिया । वे उर्दू के विरोधी नहीं थे । वे स्वयं उर्दू का अखबार निकालना चाहते थे उसकी घोषणा भी कर चुके थे । कवि गोष्ठियों के अनेक आयोजनों के साथ उर्दू मुनायरे भी कराते थे । " रसा " उपनाम से उर्दू गजलों भी कहते थे । वस्तुतः सत्य तो यह है कि भाषा के सम्बन्ध में भारतेन्दु ने सही नीति निर्धारित करके न केवल अपने समय में- अपितु भविष्य के लिए भी हिन्दी को एक सुनिश्चित दिशा प्रदान की ।

ऊपर भारतेन्दु कालीन राजनीतिक स्थिति का संकेत दिया जा चुका है। उनके समय की धार्मिक स्थिति भी देश की बिगड़ी हुई थी। उनके मतमतान्तरों अन्ध विश्वासों में जकड़ी जनता दिग् भ्रान्त थी। अपने "कवि वचन सुधा" के सिद्धान्त वाक्य (मोटो) के लिए भारतेन्दु ने अपने "सत्य हरिश्चन्द्र" नाटक का निम्नांकित मूल वाक्य चुना था -

“ सल गगन सौं सज्जन दुखी मत होहिं,

हरि पद रति रहै ।

उपधर्म छूटे, सत्त्व निज भारत गहै ,

कर दुख बहै ॥

बुध तजहिं मत्सर , नारि नर सम होहि,

सब जग सुख लहै ।

तजि ग्राम कविता सुक विजन की अमृत,

बागी सब कहै ॥ १

देश में स्त्रियों की संस्था वृद्धि पर थी। "उपधर्म" का बोलबाला था। धर्म परिवर्तन की घटनाएँ खूब हो रही थीं। पादरी लोग निम्न जातियों में धर्म परिवर्तन करके उन्हें ईसाई बना रहे थे। अंगरेजों की यह चाल भारतेन्दु को नहीं भाई। अतः वे "सत्त्व निज भारत गहै" लिखने को बाध्य हुए थे। साहित्यिक अराजकता का संकेत भी उपर्युक्त मूल वाक्य में मिल जाता है "तजि ग्राम कविता सुक विजन की अमृत बानी सब कहै"। " मैं तत्कालीन समाज के सत् साहित्य के स्वाध्याय से मुँह मोड़ने का संकेत है ही। "नारि नर सम होहि" से स्त्री जाति की हीन दशा जहाँ उन्नत है वहाँ आभिजात्य वर्ग का स्त्रियों के प्रति असमान अत्याचार मरा

व्यवहार भी ज्वलित है। यह भारतेन्दु का ही बनोवन था कि वे समाज के मुँह पर तमाचा जड़कर उसे सही दिशा का बोध करा देते थे।

भारतेन्दु एक कृती साहित्यकार थे। उन्हें काव्य या साहित्य में ग्राम्यत्व कतई पसन्द न था। उन्होंने लिखा भी है—
 “तजि ग्राम कविता सुकवि जन की अमृत बानी सब कहै।” वे सुकवि उसी को स्वीकारते थे जो परिष्कृत नागरिकता के भावों से भरपूर सुरुजि सैपन्न काव्य की सृष्टि करते हों। वैदिकी हिंसा हिंसा नभवति में वे कहते हैं :

“कजरी ठुमरिन सौ मोड़ि मुख सत कविता सब कोइ कहै।
 यह कवि बानी बुध बदन में रवि ससि नैं प्रगटित रहै ॥१

वस्तुतः भारतेन्दु सच्चे पुष्टिपार्श्वीकषणव थे। अपनी चंद्रावली नाटिका के अन्त में वे लिखते हैं :

“जग जान कौं हि अधिकार नहि
 कृष्ण नरित सबही कहै।
 यह रतन दीप हरि प्रेम को,
 सदा प्रकाशित जग रहै ॥ २

भारत दुर्दशा में वे एक प्रकार से काशी का ही चित्र प्रस्तुत करते हैं। एक स्थान पर वे लिखते हैं :

“मूसों के प्रचण्ड शासन के दिन गर,
 अब राजा ने प्रजा का स्वत्व पहिचाना विद्या की नरचा फैल जयी ----

१- वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति का भरत वाक्य।

- मा० ना० पृ० ३६३

२- श्री चंद्रावली नाटिका। मा० ना० पृ० ५७३ सं० ४० प्र० १६२७

तुम्को उस पर भी वही सीधी बातें, भांग के गोले, ग्राम गीत, वही बान्धव विवाह, मृत प्रेत की पूजा, जन्म पत्री की विधि, वही थोड़े पैँ जैतोज, गप हाकिमे पैँ प्रीति और सत्यानाशी बातें । हाय अब भी भारत की यह दुर्दशा । ”

भारतेन्दु जी को जहाँ काशी से अतिशय प्रेम था, वहाँ वे उसकी व्यसन प्रियता, अन्ध विश्वासों, और प्रादुर्ण काल्याप्त की प्रवृत्ति से बड़े दुःखी थे । गणित ज्योतिष में भारतेन्दु का अवश्य विश्वास था किन्तु फलित ज्योतिष को वे कौरी गप्प समझते थे ।

इस प्रकार जहाँ स्क और भारतेन्दु जी ने अपनी सम सामयिक काशी का अपरूप चित्रण किया है तो दूसरी ओर उसी काशी की श्रेष्ठता सिद्ध करते हुए उसका परम शोभनीय वर्णनीय परिचय दिया है। प्रेम जोगिनी नाटिका में गंगा पुत्र जैसे सुवक्त्र पण्डे और भूरी सिंह जैसे मंगड़ी काशी के स्क दो वर्ग विशेषों का सही प्रतिनिधित्व करते हैं तो दूसरी ओर विदेशी पैँडितों को काशी का शोभनीय रूप दिखाने के लिए पात्र के रूप में सुधाकर पैँडित जैसे विद्वान् भी प्रस्तुत किये गए हैं। भारतेन्दु के मन में अंकित काशी का रूप देखना हो तो इन्हीं सुधाकर पण्डित के शब्दों में-

“ सुनिए, काशी का नामान्तर वाराणसी है, जहाँ भगवती जह्नुमन्दिनी उत्तरवाहिनी होकर धनुषाकार तीन ओर से रेखी लिपटी है, मानो इसको शिव की प्यारी जानकर गोद में लेकर आनिंगन कर रही है और अपने पवित्र जल कण के स्पर्श से ताप त्रय दूर करती हुई मनुष्यमात्र को पवित्र करती है। उसी गंगा के तट पर पुण्यात्माओं के बनार बड़े बड़े घाटों के ऊपर दो मैजिनें चौ मैजिनें, पैँ मैजिने और सतरे

मंजिने ऊँचे ऊँचे घर आकाश से बातें कर रहे हैं। मानों हिमालय के श्वेत शृंग सब गंगा सेवन करने को स्फूर्त हुए हैं। उसमें भी माधौराय के दोनों धरहरे तो ऐसे दूर से दिसाई देते हैं मानों बाहर के पथिकों को काशी अपने दोनों हाथ ऊँचे करके बुलाती है। साँक सबेरे घाटों पर अर्द्धस्थ स्त्री पुरुष नहाते हुए ब्राह्मण लोग सैन्ध्या वा शास्त्रार्थ करते हुए, ऐसे दिसाई देते हैं मानों कुबेर पुरी में अन्नकर्मदा में किन्नरगण और कर्षिगण अवगाहन करते हैं और नगाड़ा नफीरी, शैल घण्टा, माँक स्तव और जयका तुमुल शब्द ऐसा गूँजता है मानों पहाड़ों की तराई में मयूरों की प्रतिध्वनि हो रही है। उसमें भी जब कभी दूर से साँक का वा बड़े सबेरे नौबत की सुहानी धुन कान में आती है तो कुछ ऐसी मली मादूम पड़ती है कि एक प्रकार की माफकी सी आने लगती है और घाटों पर सबेरे धूप की मल्ल और साँक को जल में घाटों की परछाई की शोभा भी देखते ही बन आती है।

जहाँ ब्रज ललना नात्ति चरण युगलपूर्ण परब्रज सच्चिदानन्द धन वासुदेव आप ही श्री गोपाल लाल रूप धारण करके प्रेमियों को दर्शन मात्रसे कृत कृत्य करते हैं और भी बिन्दु माधवादि अनेक रूप से अपने नाम धाम के स्मरण, दर्शन, चिन्तनादि से पतितों को पावन करते हुए विराजमान हैं।

जिन मंदिरों में प्रातःकाल सैन्ध्या समय दर्शकों की भीड़ जमी हुई है, कहीं कथा, कहीं हरि कीर्तन, कहीं नाम कीर्तन कहीं नाटक, कहीं भगवत-लीला-अनुकरण इत्यादि अनेक कौतुकों के मिस से भी भगवान् के नाम गुण में लोग मग्न हो रहे हैं।

जहाँ तारकेश्वर विश्वेश्वरादि नामधारी भगवान् भवानी पति तारक ब्रज का उपदेश करके तनु त्याग मात्र से जानियों

को भी दुर्लभ अर्पुणव परम मोक्ष पद मनुष्य, पशु, कीट, पक्षी आदि आपाकर जीव मात्र को देकर उसी जाण अनेक कल्प संचित महा पापपुण्य मरम कर देते हैं।

जहाँ अन्धे, बूढ़े लंगड़े बहरे, मूर्ख और निरुध्म आन्सी जीवों को भी भगवती अन्नपूर्णा अन्न वस्त्रादि देकर माता की भाँति पालन करती हैं।

जहाँ अब तक देव, दानव, गंधर्व, सिद्ध, चारुण, विद्या धर, देवर्षि, राजर्षिगण और सब उत्तम उत्तम तीर्थ कोई मूर्तिमान, कोई छिप्कार और कोई रूपान्तर कहे नित्य निवास करते हैं।

जहाँ मूर्तिमान सदाशिव प्रसन्न वदन आशुतोष सकल सद् गुणैकरत्नाकर, विनयैक निवेदन, निखिल विद्या विशाख प्रशान्त हृदय, गुणजन समाश्रय, धार्मिक प्रवर, काशी नरेश महाराजाधिराज श्रीमदीश्वरी प्रसाद नारायण सिंह बहादुर और उनके कुमारोप कुमार श्री प्रभु नारायण सिंह बहादुर दान धर्म समा राम लीलादि के मिस से धर्मोन्नति करते हुए और अस्तु कर्म नीहार को सूर्य की भाँति नाशते हुए पुत्र की तरह अपनी प्रजा का पालन करते हैं।

जहाँ श्रीमती सखी वल्लभनित्य पूजित पादपीठा श्रीमती महाराज्ञी विकटोरिया के शासनानुवर्त्ती अनेक कमिश्नर, जज, कलेक्टरादि अपने अपने काम में सावधान प्रजा को हाथ पर लिये रहते हैं और प्रजा उनके विकट दण्ड के सर्वदा जागने के भरोसे नित्य सुख से सोती है।

जहाँ राजा शंभुनारायण सिंह, बाबू फतह नारायण सिंह, बाबा गुरुदास, बाबू माधवदास, विश्वेश्वरदास, राय नारायणदास इत्यादि बड़े बड़े प्रतिष्ठित और धनिक तथा बाबूदेव शास्त्री, श्री बाल शास्त्री से प्रसिद्ध पण्डित श्री राजा शिव प्रसाद, सैयद अहमद खाँ बहादुर ऐसे योग्य पुरुष, मूलचन्द मिस्तरी से गिनप विद्या निपुण वाजपेयी जी से तंत्रीकार, श्री पण्डित बेन जी, शक्ति जी, श्री ताराचरण से संस्कृत के सेवक और हरिश्चन्द्र से भाषा के कवि, बाबू अमृतलाल, मुंशी गन्नलाल, श्यामसुन्दर लाल से शास्त्र व्यसनी और स्कान्त सेवी, श्री स्वामी विश्व रूपानंद से यति श्री स्वामी विशुद्धानन्द से धर्म्म-प्रेष्टा, दातृगणैकाग्रगण्य श्री महाराजा धिराज विजय नगराधिपति से विदेशी सर्वदा निवास करके नगर की शोभा दिन दूनी रात ठाँगुनी करते रहते हैं।

जहाँ बक्सी कान्जि, (जिसमें भीतर बाहर चारों ओर श्लोक और दोहे दुखे हैं) जयनारायण कान्जि से बड़े, बंगाली टोला, नार्मल और लन्दन मिशन से मध्यम, तथा हरिश्चन्द्र स्कूल से छोटे अनेक विद्या मंदिर, जिनमें संस्कृत, अंगरेजी, हिन्दी, फारसी, बंगला महाराष्ट्री की शिक्षा पाकर प्रतिवर्ष अनेक विद्यार्थी विद्योत्तीर्ण होकर प्रतिष्ठा लाभ करते हैं। इनके अतिरिक्त पंडितों के घर में तथा हिन्दी फारसी पाठकों की निज शाला में अलग ही लोग शिक्षा पाते हैं और राय लैटाप्रसाद के परिश्रमोत्पन्न पब्लिक लायब्रेरी, मुंशी सीतल प्रसाद का सरस्वती भवन, हरिश्चन्द्र का सरस्वती मण्डार इत्यादि अनेक पुस्तक मंदिर हैं जिनमें साधारण लोग सब विद्या की पुस्तकें देखने पाते हैं।

जहाँ मान मंदिर ऐसे यन्त्र भवन, साक्षात्

की धमिस से प्राचीनावशेष निह्न, विश्वनाथ के मंदिर का वृषभ और स्वर्ण शिखर, राजा चेतसिंह के गंगा पार के मंदिर, कश्मीरीमल की हवेली और बबीस कालिज की शिल्पविद्या और माधोराय के धरहरे की ऊँचाई देखकर विदेशी जन सर्वदा चकित रहते हैं।

जहाँ महाराज विजयनगर के तथा सरकार के स्थापित स्त्री विद्या मंदिर, औषधानय, अन्ध भवन, उन्मत्तागार इत्यादि नोक दूध साक्षर अनेक कीर्तिकार कार्य, वैसे ही बूढ़ बाने इत्यादि महाजनों का सदावर्त और श्री महाराजाधिराज सिधिया जादि के कटल सत्र से ऐसे अनेक दीनों के आश्रयभूत स्थान हैं जिनमें उनको अनायास ही मौज्जा-च्छादन मिलता है।

जहाँ अहोबल शास्त्री, जगन्नाथशास्त्री, पण्डित काकाराम, पण्डित मायावत्त, पण्डित हीरानंद चौबे, काशीनाथ शास्त्री, पण्डित भवदेव, पण्डित सुखान्न ऐसे धुरंधर पण्डित और भी जिनका नाम इस समय मुझे स्मरण नहीं आता, अनेक ऐसे ऐसे हुए हैं जिनकी विद्या मानों मण्डनमिश्र की परंपरा पूरी करती थी।

जहाँ विदेशी अनेक तत्त्व वैत्ता धार्मिक धनी जन घर बाहर कृष्ण देश विदेश होकर निवास करते हुए तत्त्व चिन्ता में मग्न सुख दुःखमुल्लस संसार को यथारूप में देखते सुख से निवास करते हैं।

जहाँ पण्डित लोग विद्यार्थियों को ज्ञा, यजु, साम, अथर्व०, महाभारत, रामायण, पुराण, उपपुराण, स्मृति, न्याय व्याकरण, सांख्य, पातंजल, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त, शैव, वैष्णव अक्षर, साहित्य, ज्योतिष, इत्यादि शास्त्र सहज में पढ़ाते हुए मूर्तिमान गुरु और व्यास से शोभित काशीकी विद्यापीठता सत्य करते हैं।

जहाँ मित्त देश निवासी आस्तिक
विद्यार्थी गण परस्पर देव मंदिरों में, घाटों पर अध्यापकों के घर में,
पण्डित समाजों में वा मार्ग में मित्कर शास्त्रार्थ करते हुए अनर्गल धारा
प्रवाह संस्कृत भाषण में सुनने वालों का चित्त हरण करते हैं।

जहाँ स्वर, नय, बन्द मात्रा हस्त कंपादि
से शुद्ध वेद पाठ की ज्वलि से जो मार्ग में चलते वा घर बैठे सुन पड़ती है,
तपोवन की शोभा का अनुभव होता है।

जहाँद्रविड़, मगध, कान्छकुब्ज, महाराष्ट्र,
बंगाल, पंजाब, गुजरात, इत्यादि अनेक देश के लोग परस्पर मित्रे हुए अपना
वपना काम करते दिखाते हैं और वे एक एक जाति के लोग जित मुहल्लों
में बसे हैं वहाँ जाने से ऐसा ज्ञात होता है मानो उसी देश में जाए हैं, जैसे
बंगाली टोले में ढाके का, लाहौरी टोले में अमृतसर का, और ख्रिस्ताघाट में
पूने का भ्रम होता है।

जहाँ निराहार, पयाहार, यताहार,
मिच्छाहार, रक्ताम्बर, श्वेताम्बर, नीलाम्बर, चम्पाम्बर, दिगम्बर,
दण्डी, सैन्यासी, ब्रजवारी, योगी, यती, सेवड़ा, फकीर, सुधरे साहें,
कनफटे, ऊर्ध्व बाहु, गिरी, पुरी, भारती, वन, पर्वत, सरस्वती, किना-
रामी, कबीरी, दादू पंथी, नान्दकुसाही, उदासी, रामानंदी, कौल वधोरी,
शैव, वैष्णव शाक्त, गाणपत्य सौर इत्यादि हिन्दू और ऐसे ही अनेक माँति
के मुसलमान फकीर नित्य हथर से उधर मिच्छा उपार्जन करते फिरते हैं
और इसी माँति सब अधि, लंगड़, बूले, दीन, पंगु, असमर्थ लोग भी मिच्छा
पाते हैं। यहाँ तक कि बाघी काशी केवल दाता लोगों के मरौसे नित्य वन्न
साती है।

जहाँ हीरा, मोती, रुपया, पैसा, कपड़ा, अन्न घी, तेल, बत्तर फुत्तेल, पुस्तक, सिलौने इत्यादि की दुकानों पर हजारों लोग काम करते हुए मोल लेते बेचते दलाली करते दिसाई पड़ते हैं।

जहाँ की बनी कमख़ाब, बाफ़ता, हमरु, समरु, लुबदन, पोत, बनारसी साड़ी, हुफ़्टे, पीताम्बर, उपरने, चील खण्ड, गौंटा, फ़टा इत्यादि अनेक उत्तम वस्तुएँ देश विदेश जाती हैं और जहाँ की मिठाई, सिलौने, मित्र, टिक्नी, बीड़ा इत्यादि और भी अनेक सामग्री ऐसी उत्तम होती है कि दूसरे नगर में कदापि स्वप्न में भी नहीं बन सकती।

जहाँ प्रसादी तुलसी माना फूल से पवित्र और स्नायी स्त्री पुरुषों के अंग के विविध चंदन, कस्तूरी, बत्तर इत्यादि सुगंधि-द्रव्य के मादक बामोद संयुक्त परम शीतल ताप द्रव्य विमोचक गंगा जी के कण, स्पर्श मात्र से अनेक लौकिक अलौकिक ताप से तापित मनुष्यों का चित्त सर्वदा शीतल करते हैं।

जहाँ अनेक रंगों के कपड़े पहने, लोहों सिंगार, बत्तीसो आमरण सजे पान खास मिस्सी की घड़ी जमार, जौबन, मदमाती कमफ़माती हुई बार बिनासिनी देव दर्शन, वैद्य, ज्योतिषी, गुण्ठी गृहगमन जार, निन्न, गान, श्रावण, उपवन, प्रमण, इत्यादि अनेक बहानों से राज पथ में इधर उधर भ्रमती भ्रमती नैनो के फटे फेरती विचारे दीन पुरुषों को ठगती फिरती हैं और कहाँ तक कहें काशी काशी ही है। काशी सी नगरी त्रैलोक्य में दूसरी नहीं है। आप देखियेगा तमी जा नियेगा बहुत कहना व्यर्थ है।^१

प्रेम जो गिनी नाटिका यद्यपि भारतेन्दु का अपूर्ण ग्रंथ है, तथापि तत्कालीन काशीका जो चित्र प्रस्तुत करती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। जहाँ से प्रारम्भ होने वाले बाइस अनुच्छेदों में भारतेन्दु ने काशी का ऐसा कोई पक्ष नहीं है जो उन्होंने अछूता छोड़ा हो। पावन गंगा की महिमा, काशी में प्रतिष्ठित देव गण एवं देव मंदिर भगवती अन्नपूर्णा की महिमा, तत्कालीन शासन का स्वरूप, समसामयिक महापुरुष, विद्वान्, संत, साधु, साहित्यकार, धनपति, कलाकार सभी का सांगोपांग वर्णन देना भारतेन्दु को अभीष्ट था। यहाँ तक कि वार विनासिनियों के चित्रण में भी वे नहीं बूके हैं। तत्कालीन काशीवासियों में सभी प्रान्तों का प्रतिनिधित्व था, अतः भारतेन्दु ने सभी प्रान्तीय बोलियों का प्रत्यक्ष भी काशी की बोली में दिखाने की चेष्टा की है। प्रेमजा गिनी का गौपाल प्रवाहपूर्ण मराठी बोलता है। साथ ही तत्कालीन पंडितों की उस मनोवृत्ति का भी पता चलता है जो वे शास्त्रार्थों में शास्त्रों के अगम उद्धरणों से अपने मन माने निर्णय कराकर धर्मोपार्जन करते थे।

एक ओर जहाँ भारतेन्दु में स्वदेशाभिमान और राष्ट्रीय भावना की अग्नि प्रज्ज्वलित थी वहाँ दूसरी ओर नीरक्षीर विवेक की मनोवृत्ति के कारण अंगरेजों की अक्साइयों से भी परितुष्ट थे। और वे उन अक्साइयों की मन से प्रशंसा भी करते थे। अंगरेजों के नारी स्वातंत्र्य की प्रवृत्ति से वे प्रभावित थे। भारतीय नारियों की दुर्दशा से उनका चित्त बड़ा दुखी था। भगवान् को उलाहना देते हुए उन्होंने एक स्थान पर लिखा है :

“हूँ अनाथ भारत कुल विधवा बिलपहिं दीन दुखारी।

बल करि दासी तिनहिं बनावहिं तुम नहिं न्यत सरारी ॥२

१- प्रेम जो गिनी गमक चौथा पृ० ७५१

२- नीलदेवी आंठवां बंक (भार० नाटकावली)

। भारतेन्दु जी ने अपने समय का चित्रण अपने
कम नाटकों में किया है। उनमें वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, नीलदेवी,
मुद्रा राचास (प्रहसन) विशेष उल्लेख्य है।

निष्कर्षतः आचार्य वल्लभ से भारतेन्दु तक की
काशी का सा विकासशील इतिहास है जिसमें पुष्टिमार्ग विशेषकर काशी
जैसी शैव नगरी में वैष्णवी धारा के पल्लवन की सा रमणीय गाथा अन्त-
र्निहित है। काशी में श्री सुन्दराय जी का स्वरूप कितनी कठिनाई से श्री
गोस्वामी गिरिधर जी महाराज के मगीरथ प्रयत्न के स्वरूप पधार सका ।
इसका लेखा जोखा ऊपर दिया जा चुका है। श्री गिरिधर जी महाराज
भारतेन्दु जी के वंश परंपरा के गुरु थे । इन्हीं गिरिधर जी महाराज से
भारतेन्दु ने पाँच वर्ष की अवस्था में ब्रह्म सम्बन्ध की दीक्षा ली थी ।
भारतेन्दु के वंश में ब्रह्म सम्बन्ध की दीक्षा लेने की परिपाटी ५ वर्ष की
अवस्था में ही ली जा^ए थी । इस प्रकार भारतेन्दु पर पुष्टिमार्गीय वैष्णव
संस्कार शैशव से ही जम गए थे । एक ओर जहाँ वे कट्टर वैष्णव थे दूसरी
ओर विनासी गोस्वामियों की आलोचना भी करने में नहीं झुकते थे ।
परन्तु शैशव में वृद्धता से पदे वैष्णवी संस्कार आजन्म बने रहे ।

निष्कर्षतः उनकी रचनाओं में विशेषकर निबन्धों
नाटकों में यत्र तत्र सर्वत्र राधाकृष्ण की भक्ति, कृष्ण, प्रेम, तुलसी, कौठी
माना के प्रति आस्था यमुना भक्ति, वल्लभीय ग्रंथों का पथानुवाद आदि
मिलता है। भारतेन्दु की पुष्टिमार्ग के प्रति गहरी आस्था और साकारो-
पासना के प्रति वृद्धाग्रह दिखाना ही मुख्यतः इसग्रन्थ का प्रधान न्यय है।

१- देखिए- श्री गिरीशचन्द्र चौधरी का १२-६-२१ का पत्र डा० गोवर्धन नाथ
शुक्ल के नाम (फोटो स्टेटकापी)

२- देखी- यमुना वर्णन (चन्द्रावती नाटिका)

चतुर्थ अध्याय

मार्तण्ड और पुष्टि सम्प्रदाय

चतुर्थ अध्याय

भारतेन्दु और पुष्टि सम्प्रदाय

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की जीवनी लेखकों ने उनके आठ पीढ़ी तक के पूर्वजों का उल्लेख किया है। उनके सभी के नाम पुष्टि मार्गीय पद्धति पर मिलते हैं। मूल पुरुष बालकृष्ण तथा उनके पुत्र गिरिधारी नान के निर गिरिधरचरित लिखा है। अपने पूर्वजों के नाम देने में भारतेन्दु ने प्रायः गुरु और दृष्टदेव का उल्लेख किया है। यह सौभाग्य की बात है कि स्वयं भारतेन्दु जी ने उत्तरार्द्ध भक्तमान में अपने वंश का परिचय स्वयं ही दिया है। साथ ही यह ध्यान देने की बात है कि नाना जी के भक्तमान की पद्धति पर लिखा गया यह भक्तमान यह दावा तो करता है कि यह उनके बाद के सभी भक्तों को अपने में समाहित किये हुए है। किन्तु भारतेन्दु जी का मुकाब आचार्य वल्लभ स्वामी विठ्ठलनाथ जी के भक्तों की ओर अधिक है।

उत्तरार्द्ध भक्तमान की 'अधपरम्परा' में परम गुरु श्रीकृष्ण स्वयं उनकी बायां शक्ति श्री राधा की प्रणाम करते हुए आचार्य वल्लभ की गुरु परम्परा का उन्होंने उल्लेख किया है। 'मायावाद पैतृगम'।

१- वंश वृक्षा सन्तान

२- वैश्य अग्रकुल मैं प्रगट बालकृष्ण कुल पान ।

ता सुत गिरिधर चरित वर गिरिधारीनान ॥ (भक्तमान ४८)

३- उ० भक्तमान पृ० २२७ भारतेन्दु ग्रंथावली ना० प्र० स०

४- ता पाहैं अबनीं भर जे हरि पद रत सैत ।

तिनके जस बरनन करत सोहैं हरि कहैं अति कैंत ॥

के लिए "केहरी" के समान हरि और राधिका के परमोपासक बल्लभाचार्य और उनके वंशजों का परिचयात्मक वर्णन भारतेन्दु के उत्तरार्द्ध भक्तमान में पड़े पड़े मिलता है। अतः यह स्पष्ट है कि भारतेन्दु की स्वमार्ग के प्रति अनन्य भाव का जो साहित्यासाधन के क्षणों में नाहें जब पुहर ही उठता था। यद्यपि नामा जी की भी स्वमार्गीय के रागात्मकता यद्यत्त ज्वलित हुई है किन्तु वे प्रत्यक्षातः सभी संप्रदायों के भक्तों के प्रति न्यायोचित विष्ठा मय रहे हैं।

भारतेन्दु के वंश में दीक्षा की परम्परा एक विशिष्ट पद्धति पर बंधी हुई थी, उनके वंशज श्री गिर्रीधर नौधरी भारतेन्दु भवन काशी ने अपने एक पत्र में स्पष्ट लिखा है कि हमारे यहाँ दीक्षा पाँच वर्ष की बाल्यावस्था में ही ग्रहण कर ली जाती है।

संवत् १७११ में नाथद्वारे के तिलकायत गो० दामोदर जी हुए। वे बड़े दाऊन जी कहे जाते थे। इन्हीं के समय में दक्षिणा रूप श्री मुकुन्दराय जी का विग्रह श्री गिरिधर जी को मिला था। यह भगवत् स्वरूप श्रीनाथ जी के गोद का स्वरूप था। इस स्वरूप को वे नाथद्वारे से काशी तक बहुत राजसी वैभव से साथ लाये थे। ये गिरिधर जी गो० विठ्ठलेश्वर जी जगन्नाथ जी के वंश में हुए थे।

भारतेन्दु जी की गुरु परंपरा

गो० गिरिधर जी जो शुद्धाद्वैत मार्तण्ड के रत्न-

१- डा० गोवर्धन नाथ गुप्त के नाम लिखे गये पत्र की फोटो स्टेट कापी में द्रष्टव्य। संलग्न।

थिता थे । वे मारुतेन्दु जी के पिता श्री गोपालदास उफाम गिरिधरदास के भी गुरु थे । पिता ने जफा उफाम गिरिधर दास गो० गिरिधरदास के बहुमुख वैदुष्य और विनम्रता पाण्डित्य से प्रभावित होकर ही जफा को उनका समर्पित दास बना लिया था । इसप्रकार पिता पुत्र के रूप ही दीक्षा गुरु थे । तत्कालीन काशी में गो० गिरिधर जी का कदा मारी प्रभाव था । वे न केवल सुद्धादित सिद्धान्त के प्रकाण्ड पण्डित थे वे उच्च कोटि के भक्त भी थे । उन्हें वाक् सिद्धि थी । उनका काशीवाँद सदैव सफल होता था अतः तत्कालीन काशी के लगभग सभी धनपति उनके शिष्य थे । किन्तु ये स्वयं बर्हिन्न जीवन व्यतीत करते थे । नाथद्वारे से श्री मुकुन्दराय जी का विग्रह है जे राजसी वैभव से नाथे थे । और उसी राजसी वैभव को अच्युण्ण रहने में उनके धनवान कृत्तम शिष्यों ने महान् योगदान दिया था । यहाँ गिरिधर जी की वैश परंपरा का उल्लेख किया जाता है जिससे पाठकों को मारुतेन्दु की गुरु परंपरा का बोध हो सके ।

मारुतेन्दु की गुरु-परंपरा^१

(गो० गिरिधर जी की वैश परंपरा)

१५३५ वि० स० से १६६० वि० स० तक

महाप्रभु बल्लभाचार्य जी महाराज (१५३५ वि० स०)

।

गो० विट्ठल नाथ जी (१५७२ वि० स०)

।

गो० यदुनाथ जी (१६१५ वि० स०)

१- श्री बल्लभाचार्य जी ना वंशनी वंशावली- शास्त्री कल्याणजी कान जी

प्रकाशक- सेठ नारायणदास जेठानंद वासनकर ट्रस्ट- बुम्बई जन् १९४३ ।

गो० यदु नाथ जी

|

गो० मधुसूदन जी

(१६३४)

गो० रामचन्द्र जी

(१६३८)

गो० जगन्नाथ जी

(१६४२)

|

गो० प्रद्युम्न जी (१६६० वि० सै०)

|

गो० विट्ठल नाथ जी (१७१७ वि० सै०)

|

गो० प्रद्युम्न जी (१७६२ वि० सै०)

|

गो० विट्ठल राय जी (१७८५ वि० सै०)

|

गो० गोपाल बाल जी (१८१० वि० सै०)

|

गो० गिरिधर जी (१८४७) शुद्धादितमार्तपङ्कत्ता

|

गो० श्री जीवन जी (नीलमणि) (१९२२ वि० सै०)

|

गो० श्री सुरभीधर जी (१९६० वि० सै०) विधमान

गो० गिरिधर जी महाराज आचार्य बल्म से दशवीं पीढ़ी में हुए थे एवं गो० विट्ठल नाथ जी के बड़े नाथ जी यदुनाथ जी से बाठवीं पीढ़ी पर हुए थे । गो० यदुनाथ जी की मानसी सेवा सिद्ध थी । उसका प्रसन्न अथावधि हस्वश के गोस्वामियों पर विद्यमान है। भारतेन्दु के पितामह बाबू हर्षचन्द्र जी ने गिरिधर जी महाराज की ही आज्ञा से ही अपने घर में श्री बल्म कुल की प्रथातुसार ठाकुर मदनमोहन जी की सेवा पधरायी । और उनके भोगराग का समस्त प्रबन्ध राजसी ठाट-बाट से प्रारंभ हुआ । ठाकुर श्री मदनमोहन जी का युगस्वरूप धातु निर्मित है और उनके ही समय से निरन्तर सेवा चली आ रही है। आज इस विग्रह की सेवा करते हुए १६४ वर्ष व्यतीत हो गए । भगवान् मदनमोहन का यह विग्रह भारतेन्दु के वंश में आने से भी पूर्व का है। पहले इस स्वरूप की सेवा श्री गोकुलचन्द्र साहू के यहां होती थी । जब बाबू हरिश्चन्द्र और बाबू गोकुल चन्द्र में हिस्सा हुआ तब एक बड़ा बाग, एक बड़ा मकान, एक बड़ा ग्राम, जिसकी माफ़ी जी और फास हजार रुपया ठाकुर जी के हिस्से में अलग कर दिया गया और ठाकुर जी का महा-प्रसाद नित्य ब्राह्मण, साधु, वैष्णव तथा सद्गृहस्थ आज भी लेते हैं। घर में भगवान् की बल्ल्मीय सेवा पधराने के कारण यह स्वामाविक था कि बाबू हरिश्चन्द्र के जीवन, उनकी विचारधारा और उनके साहित्य पर पुष्टिमार्ग का गहरा प्रभावपड़ता और वह पड़ा भी । भारतेन्दु के पितामह बाबू हर्षचन्द्र गो० गिरिधर जी के परम भक्त थे । गो० गिरिधर जी की पुत्री श्यामा

१- षष्ठः श्री यदुनाथो भूत मानसे सेवने रतः ॥५॥ (अथ श्रीमद्वल्म-
चार्य चरणवंश विस्तारवर्णनम्) पृ० १

२- निधियों के बटवारे में षष्ठ गृहाधीश श्री यदुनाथ जी को अपने पिता श्री विट्ठलनाथ जी से मदनमोहन जी का ही स्वरूप प्राप्त हुआ था । अतः भारतेन्दु जी के घराने में श्री मदनमोहन जी का ही स्वरूप सेव्य हुआ ।

- शोधार्थी

३- भारतेन्दु बाबू जीवन चरित्र- राधाकृष्णादास पृ० १८

बेटी जो इन्हें अपने माई की तरह मानती थी और माई दूज का तिन्क भी कादती थी ।

बाबू हर्ष चन्द्र ने गिरिधर जी को एक बगीचा दिया था जिसका नाम सुकुन्द विलास पड़ा । बाबू हरिश्चन्द्र के काफी अवस्था तक कोई सन्तान नहीं हुई । श्री गिरिधर जी महाराज ने बागीचा के से संवत् १८६० में बाबू गोपालचन्द्र नामक पुत्र हुआ । यह पुत्ररत्न गो० गिरिधर जी के अमोघ आशीर्वाद के ही फलस्वरूप हुआ था । अतः इसका द्वितीय नाम गिरिधर दास रखा गया । इस वंश में यह परंपरा थी कि पाँचवें वर्ष में गुरु दीक्षा ले ली जाती है । अतः (गिरिधरदास) गोपालचन्द्र जी ने १८६५ वि० सं० में गो० गिरिधर जी से दीक्षा ले ली थी । ये कवि और नाटककार दोनों ही थे । इनके विषय में यह प्रसिद्ध था कि इन्हें कभी क्रोध नहीं आता था । इनकी जीवनीके लेखक ने लिखा है कि इनका नाम पान्न बड़े लड़काने से हुआ था किन्तु शोटी अवस्था में ही बाबू हर्षचन्द्र का देहावसान हो जाने से पिता का साया इनके ऊपर से उठ गया । इनमें तीन गुण विशिष्ट थे । विद्वत्ता, सच्चरित्रता और भगवद्भक्ति । तत्कालीन काशीवासियों का दृढ़ विश्वास था कि उनके ये अणि तुल्य गुण उनके गुरुदेव श्री गो० गिरिधर जी महाराज के आशीर्वाद सहवास और शिष्टा के फल-स्वरूप थे । यह सत्य है कि विद्वत्ता प्रतिभा सदैव सद्गुरु के आशीर्वाद का परिणाम होती है, इसीलिए भारतेन्दु के पिता गोपालचन्द्र जी उच्च कोटि के ज्ञान्त स्वभाव वाले होते हुए भी यदि कोई गोपाल मंदिर कृपा धर्म सम्बन्धी निन्दा करता था तो वे श्रुद्ध हो जाते थे । स्वयं भारतेन्दु ने अपने पिता के विषय में लिखा है :

“ उनके सब विचार परिष्कृत थे बिना किसी शिष्टा के भी उनको अपने समय का स्वरूप मन्ती भाँति विदित था । धर्म

के विषय में वे इतिने परिष्कृत थे कि वैष्णव व्रत की अनन्य पूर्णता के हेतु अन्यदेवता मात्र की पूजा और व्रत उन्होंने घर से उठा दिये थे । उस समय के अंग्रेजी स्कूलों में हमारी बड़ी बहिन को उस स्कूल में प्राङ्गण्य रीति पढ़ने बैठा दिया और हम लोगों को अंग्रेजी शिक्षा दी । सिद्धान्त यह कि उनकी सब बातें परिष्कृत थीं ।^१ ”

भारतेन्दु बाबू ने यह स्वीकार किया कि उनके यहाँ भगवत्सेवा सर्व कविता के अतिरिक्त कोई अन्य व्यसन नहीं था । घर में ठाकुर सेवा थी ही । उनके पिता स्नान करने से पहले श्री मुकुन्दराय जी के दर्शन करने “ ताम्रकाम ” पर बैठकर जाते थे । घर में ठाकुर जी का ही महाप्रसाद लिया जाता था । प्रति एकादशी को जागरण होता था । जब उनके पिता कोई भी ग्रंथ लिखना प्रारंभ करते तो “ गोपीजनवल्लभायनमः ” लिखना न भूलते । इन सब प्रसंगों की चर्चा करने का सूत्रमात्र तात्पर्य इतना ही है कि परिवार परिकर और चतुर्दिक् वातावरण पुष्टिमयितमय था ।

जब भारतेन्दु जी का जन्म संवत् १६०७ में हुआ तब गौ० गिरिधर जी महाराज विद्यमान थे । वंश परंपरानुसार गौ० गिरिधर जी ने भारतेन्दु जी को दीक्षा दी, यह उनके वंशज श्रीगिरीशचन्द्र चौधरी के पत्र से स्पष्ट हो जाती है।^१

दीक्षा अर्थात् ब्रह्म सम्बन्ध (समर्पण) के उपरान्त तपस्वीगुरुदेव ने पूछा- “ बोलो लक्ष्मी अथवा सरस्वती ? ” बालक भारतेन्दु ने उत्तर दिया- सरस्वती । सरस्वती उनकी वाणी पर जन्म भर बैठी रही । उन्होंने लक्ष्मी को तुच्छीकृत करके सरस्वती की ही प्रबल आराधना

की। परिणामतः वै "जयन्ति ते सुकृतिनो रस सिद्धाः कवीश्वराः।" नास्ति येषां यशः काये जरामरणजैमयम्।" के अनुसार रससिद्ध सुकृति भारतेन्दु आज भी अपनी कम्पनी कीर्ति के आधार पर हमारे बीच विद्यमान हैं।

प्रानुसार विदित होता है कि भारतेन्दु जी को सन् १६१२ में दीक्षा दीगयी थी। भारतेन्दु जी पुष्टि सम्प्रदाय के ग्रंथों से अबाध और अगाध रूप में प्रभावित थे। उन्होंने सन् १६३० में जब वे लगभग २२ वर्ष के थे तब उन्होंने काशी में "तदीय समाज" की स्थापना की थी "तदीय" शब्द आचार्य बल्लभ के "सेवाफल ग्रंथ" का सातवाँ श्लोक है। इसका तात्पर्य यही है कि तदीय वैष्णवों को कतिपय कर्त्तव्य निभाने होते हैं तभी उनकी तदीयता सफल होती है। तदीयता की परिभाषा करते हुए आचार्य ने अपने बाल बोध ग्रंथ में लिखा है :

"समर्पणोनात्मनो हि तदीयत्वमवेत् ध्रुवः।" २

अर्थात् अपने संपूर्ण समर्पण करने के कारण अपना तदीयत्व सिद्ध होता है। यह "तदीयत्व" एक उच्चतम स्थिति है। जब तक पूर्णतः सिद्ध न हो तो केवल आश्रय मात्र से ही प्रारम्भिक साधक अपनी साधना प्रारम्भ कर सकता है।

भारतेन्दु को तदीय समाज की स्थापना की प्रेरणा आचार्य के षोडश ग्रंथ से ही मिली थी। इसके नौ नियम थे जिसमें वास्तिकता पर जोर था। प्रेमोपासना, समाज में द्रव्य का विनियोग भगवान् का गुणानुवाद गुरुओं के नामों का संकीर्तन, भगवद्गीता एवं श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध का पाठ और नाम संकीर्तन एवं मांस- मदिरा रहित शुद्ध खान-

१- तदीयैरपि तत्कायं पुष्टौ नैव विलम्बयेत् । सेवाफल० ७

२- बालबोध श्लोक १८

पान इस समाज के कठोर एवं अनिवार्य नियम थे। इस समाज ने 'मगवत भक्ति तोषिणी' नाम से एक पत्रिका भी प्रकाशित की थी।^१ तदीय समाज में, जो नामांकित वैष्णव होते थे उनकी उपाधि 'तदीयानामांकित अन्य वीर वैष्णव' की उपाधि दी जाती थी। स्वयं भारतेन्दु अपने को 'तदीयानामांकित अन्य वीर वैष्णव' कहते थे। इन 'तदीय अन्य वीर वैष्णवों' के लिए सौलह नियमों का पालन अनिवार्य था। एक प्रकार से ये नियम पुष्टिमार्गीय कठोर वैष्णवता के अनुपालन का संकेत करते हैं। तदीय समाज की अपनी अलग एक मोहर भी होती थी। भारतेन्दु ने इस समाज के स्थापना और संचालन में अपना अहं विगलित करके समर्पित भाव से स्पष्ट लिखा है -

“यद्यपि मैंने लिख दिया है तथापि इसकी लाज तुम्हीं को है।”^२ इस समाज की स्थापना और नियमों को देखने से भारतेन्दु का न केवल पुष्टिमार्ग में दीक्षित होना सिद्ध होता है, अपितु उनके मन वचन कर्म और विचार और साहित्य सर्जन में गहरी छाप दीखती है।

पुष्टि दीक्षा का मन्त्र 'ब्रह्म सम्बन्ध' कहा जाता है, जिसमें 'सर्वतोभावेन' समर्पण का सिद्धान्त ही निहित है।^३ तदीय समाज में न केवल समर्पण की ही बात है अपितु सीमित भोजन, मागवत पाठ, तुलसी की माला और पीत वस्त्र के धारण जैसी बाह्याचार पालने की भी शर्तें हैं। तात्पर्य इतना ही कि भारतेन्दु में पुष्टिमार्गीय दीक्षित भक्त

१- भारतेन्दु बाबू का जीवन चरित्र- राधाकृष्णदास पृ० ६६

२- ,, ,, ,, पृ० ६८-६९

(देखें भारतेन्दु के स्वहस्ताक्षरों से युक्त तदीय समाज के नियम)

३- सिद्धान्त रहस्य- डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल

का रूप पूर्णतः सुरक्षित था ।

“ तदीय समाज की नियमावली का स्वरूप यहाँ यथावत् प्रस्तुत किया जा रहा है :

“ इस को मि० श्रावण शुक्ल १३ बुधवार सं० १९३० को आरंभ किया था । इसके नियम ये थे -

- १- श्री तदीय समाज इसका नाम होगा ।
- २- यह प्रति बुधवार को होगा ।
- ३- कृष्ण पक्षा की अष्टमी को भी होगा ।
- ४- प्रत्येक वैष्णव इस समाज में आ सकते हैं परन्तु जिनका शुद्ध प्रेम होगा , वे इसमें रहेंगे ।
- ५- कोई भी आस्तिक इस समाज में आ सकता है पर जब एक सभासद उसके विषय में मली माँति कहेगा ।
- ६- जो कुछ द्रव्य समाज में स्फुलित होगा धन्यवाद पूर्वक स्वीकारा जायगा ।
- ७- समाज क्या करेगा-
 - (क) समाज का आरम्भ किसी प्रेमी के द्वारा ईश्वर के गुणानुवाद से होगा ।
 - (ख) गुरुओं के नामों का सँकीर्तन होगा ।
 - (ग) एक वक्ता कोई सभासद गत समाज के चुने हुए विषय पर कहेगा ।
 - (घ) एक अध्याय श्रीगीता जी का और श्री भागवत दशम का एक अध्याय पढ़े जायेंगे ।
 - (ङ०) समाज के समाप्ति में नाम सँकीर्तन होगा । दूसरे समाज के हेतु विषय निर्यत किया जायगा और अन्त में प्रसाद बँटेगा ।

८- इसके और भी क्रम सामाजिकों की आशा से बढ़ सकते हैं ।

९- यद्यपि इस समाज से जगत् और मनुष्यों से कुछ सम्बन्ध नहीं तथापि जहाँ तक हो सकेगा शुद्ध प्रेम की वृद्धि करेगा और हिंसा के नाश करने में प्रवृत्त होगा । १

तदीय समाज की स्थापना और उसकी नियमावली पर गहराई से दृष्टि डालने पर कुछ ऐसी बातों का पता चलता है, जो भारतेन्दु के भक्ति सिद्धान्त और उनके पुष्टिमार्गीय ग्रंथों के गहरे बोध की परिचायक हैं। जैसे सप्ताहमें बुधवार का दिन समाज गोष्ठी दिवस के रूप में इसलिए चयन किया कि वह भगवान् श्री का मूल जन्म दिवस है। पाक्षिक गोष्ठी के रूप में उन्होंने प्रत्येक मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को ही चुना था । इतने पर भी वे अनुदार दृष्टिकोण के व्यक्ति नहीं थे । उन्होंने सभी वैष्णवों के लिए इस तदीय समाज का द्वार खोल रखा था । यहाँ तक कि कोई भी आस्तिक उसका सदस्य हो सकता था । श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध और गीता पर भारतेन्दु ने तदीय समाज के सदस्यों के लिए विशिष्ट बल दिया है। इस तथ्य पर यदि विचार किया जाय तो भारतेन्दु को आचार्य वल्लभ के सर्व निर्णाय स्मरण में किए उल्लेखों का पर्याप्त बोध था । नाम संकीर्तन तथा गुरु स्मरण स्व भगवत् गुणानुवाद जैसे पुष्टिमार्गीय निज सिद्धान्तों का भारतेन्दु जी ने अपने तदीय समाज के लिए अनिवार्य बना दिया था ।

* तदीय नामांकित- अन्य-

वीर वैष्णव समाज का प्रतिज्ञा-पत्र

000

१- भारतेन्दु बाबू का जीवन चरित्र- राधाकृष्ण दास पृ० ६६

२- श्रीभागवतमेवात्र परं तस्य हिसाधनम् ।। सर्वनि० स्मरण श्लोक ३२६

“ हम हरिश्चन्द्र अगरवाले श्री गोपालचन्द्र के पुत्र काशी चौखम्भा महल्ले के निवासी तदीय समाज के सामने परम सत्य ईश्वर को मध्यस्थ मानकर तदीय नामांकित अनन्य वीर वैष्णव का फल स्वीकार करते हैं और नीचे लिखे हुए नियमों को आजन्म मानना स्वीकार करते हैं :

- १- हम केवल परम प्रेममय भगवान् श्री राधिकारमण जी का ही भजन करेंगे ।
- २- बड़ी से बड़ी आपत्ति में भी अन्याय नहीं करेंगे ।
- ३- हम भगवान से किसी कामना हेतु प्रार्थना न करेंगे ।
- ४- जुगल स्वरूप में हम भेद दृष्टि न देखेंगे ।
- ५- वैष्णव में हम जाति बुद्धि न करेंगे ।
- ६- वैष्णव के सब आचार्यों में से एक परपूर्ण विश्वास रखेंगे । परन्तु दूसरे आचार्यों के मत में कभी निंदा न करेंगे ।
- ७- किसी प्रकार की हिंसा वा मांस भक्षण कभी न करेंगे ।
- ८- किसी प्रकार की मादक वस्तु कभी न खायेंगे न पीयेंगे ।
- ९- श्रीमद्भागवतगीता और श्रीभागवत को सत्य शास्त्र मानकर नित्य मन शीलन करेंगे ।
- १०- महाप्रसाद में अन्न बुद्धि न रखेंगे ।
- ११- हम आमरणान्त अपने प्रभु और आचार्यों पर दृढ़ विश्वास रखकर विशुद्ध भक्ति के फैलाने का उपाय करेंगे ।
- १२- वैष्णव मार्ग के अविरुद्ध सब कर्म करेंगे और इस मार्ग के विरुद्ध श्रौत स्मार्त का लौकिक कोई कर्म न करेंगे ।

१३- यथाशक्ति सत्य शौच दया दिक का सर्वदा पालन करेंगे ।

१४- कभी कोई वाद, जिससे रहस्य उद्घाटन होता हो अन्धिकारी के सामने न कहेंगे और न कभी ऐसा वाद अवलम्बन करेंगे जिससे आस्तिकता की हानि हो ।

१५- चिह्न की भाँति तुलसी की माला और कोई पीत वस्त्र धारण करेंगे ।

१६- यदि ऊपर लिखे नियमों को हम मंग करेंगे तो जो अपराध बन पड़ेगा , हम समाज के सामने कहेंगे और उसकी क्षमा चाहेंगे । और उसकी धृणा करेंगे ।

साक्षी

मिती भाद्रपद शुक्ल ११

संवत् १९३०

पं० वैचन राम तिवारी

हरिश्चन्द्र

पं० ब्रह्मदत्त

हस्ताक्षर तदीय नामांकित अनन्य

चिन्तामणि

वीर वैष्णव । यद्यपि मैंने लिख

दामोदर शर्मा

दिया है तथा पि इसकी लाज

शुकदेव

तुम्हीं को है

नारायणदाव

(निज कल्पित अक्षर मैं)

माणिक्य लाल जोशी शर्मा

मुहर (तदीय समाज) १

तदीय समाज के प्रतिज्ञा पत्र को पुष्टिमार्गीय
वैष्णव समाज की, यदि आचार संहिता कहा जाय तो अतिशयोक्ति न

१- भारतेन्दु बाबू का जीवन चरित्र - राधाकृष्णदास पृ० ६६

न होगी। इसमें भारतेन्दु की यही विशेषता है कि उन्होंने इसको एक सम्प्रदाय विशेष का संकुचित प्रतिज्ञापत्र नहीं बनाया साथ ही वैयक्तिक आचार शुद्धि और नैतिकता के साथ साथ संपूर्ण समाज को सत्पथ पर चलते रहने की सतत प्रेरणा देता है। यह प्रतिज्ञा पत्र एक प्रकार से संपूर्ण भारतीय संस्कृति और धर्म का ताबीजी संस्करण है।

ब्रिटिश साम्राज्य के अरुणादय में जबकि भारतीय समाज अपने पत की आस्था और अस्मिता को खो रहा था उस समय इस प्रकार के समाज की स्थापना कर देगा, निश्चय ही भारतेन्दु की धर्म और नैतिकता में अगाध विश्वास की द्योतिका है। समाज विशेष के माध्यम से उन्होंने समूचे राष्ट्र कल्याण और समाज हित की भावना का परिचय दिया है।

जैसा कि कहा जा चुका है कि भारतेन्दु के पितामह बाबू हर्ष चन्द्र जी ने गुरुदेव श्री गो० गिरिधर जी की आज्ञा से अपने घर में श्री मदनमोहन जी का युगल स्वरूप पधराया था। गो० गिरिधर जी ने इस युगल स्वरूप को पधराने की प्रेरणा इसलिए दी थी कि उनका घर कूटा घर कहा जाता है। कूटे घर को गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने बटवारे में श्री मदन मोहन जी का स्वरूप दिया था। इसीलिए गिरिधर जी ने भारतेन्दु के परिवार को इसकी प्रेरणा दी। वैसे गो० यदुनाथ जी को मूलतः श्री बाल कृष्ण जी का स्वरूप प्रदान किया गया था। इससे वे असन्तुष्ट रहे। अतः गो० विट्ठलनाथ जी ने उन्हें कल्याण राय जी का स्वरूप दिया। ये कल्याण राय जी शेरगढ़ में रहे और मदनमोहन जी मथुरा में। वस्तुतः भारतेन्दु का गुरु घराना कूटे घर का तृतीय उपगृह है। गो० यदुनाथ जी के तृतीयपुत्र गो० जगन्नाथ जी का वंश ही काशी में स्थित हुआ^१।

१- देखो- श्रीनाथ सेवा रसोदधि की द्वितीय तरंग

इसी अध्याय के पृष्ठ तीन पर यह प्रामाणिकता के साथ दिखाया जा चुका है। भारतेन्दु जी के पितामह श्री हर्ष चन्द्र जी की उपासना एवं सेवा रुचि किशोर भाव में थी। अतः गौ० गिरिधर जी महाराज ने उनकी रुचि के अनुकूल दो स्वामिनी वाला मदनमोहन जी का स्वरूप उनके माथे पधराया 'अर्थात् भगवत् सेवा सौंपी।

यह ध्यान देने योग्य है कि भगवान् की मुख्य शक्ति श्री राधिका का निमृत् निकुंज की स्वामिनी है तो चंद्रावली निबिड़ निकुंज की। भारतेन्दु का चंद्रावली नाटिका प्रस्तुत करने का हार्दिक प्रयोजन अपने आराध्य को दो स्वामिनी वाला सिद्ध करने का है। यद्यपि उनके ग्रंथों में स्वामिनी राधिका उपेक्षित नहीं, फिर भी स्वामिनी ललिता एवं तुर्य प्रिया स्वामिनी श्री यमुना को छोड़ चंद्रावली को अपनी नाटिका का लक्ष्य बनाने में भारतेन्दु का अवश्य ही कोई न कोई मन्तव्य रहा होगा। वह मन्तव्य अन्य कुछ नहीं स्वामिनी श्री राधिका की आज्ञा से श्री स्वामिनी चंद्रावली की निकुंज (निमृत्) में सुखेन श्रीकृष्ण पधारै^१। रसिक भक्त भारतेन्दु को पुष्टिमार्गीय कुंज भावना एवं श्रीकृष्ण की चारों स्वामिनियों की सेवा मर्यादा का अनुपम बोध था। अपने ही घर में दो स्वामिनीवाला किशोर भाव युक्त रसेश्वर ठाकुर मदनमोहन का स्वरूप बिराजता हो तो उसके अन्तरंग रहस्य पर रसिक भक्त भारतेन्दु की दृष्टि जाना स्वाभाविक है। चंद्रावली के दिव्य प्रेम की चर्चा भारतेन्दु को अभीष्ट थी।

अतः वे लिखते हैं- 'लो, तुम्हारी चंद्रावली तुम्हें समर्पित है- अंगीकार तो किया ही, -----

इसमें तुम्हारे उस प्रेम का वर्णन है, इस प्रेम का

१- चंद्रावली नाटिका 'समर्पण'

नहीं, जो संसार में प्रचलित है।”

यह ढिटाई कि तुम्हारा सिद्धांत कह डालना । १

प्रस्तुत समर्पण में भारतेन्दु का लक्ष्य पुष्टिमार्गीय कान्ता भावापन्न अलौकिक दिव्य प्रेम की गोपनीयता से है। नाटिका के प्रथम दृश्य में शुकदेव जी को प्रस्तुत करके भारतेन्दु ने पुष्टिमार्गीय प्रेम लक्षणा भक्ति वाले सिद्धान्त को सूत्र रूप में कह डाला है। पुष्टि मार्ग रुद्र संप्रदाय है। गोपियाँ सर्वोच्च प्रेम की रूक मात्र अधिकारिणी हैं आदि सिद्धान्त ज्ञानी भक्त शुक से द्वारा कहलवाने में भारतेन्दु का मन्तव्य यही था कि चंद्रावली नाटिका में वे लोकोत्तर प्रेम साधना को ही प्रस्तुत करने जा रहे हैं। यह प्रेम साधना चरम विरहाग्नि में भस्मीभूत होकर दिव्य रस रूप में पुष्ट होती है।

तात्पर्य यह कि भारतेन्दु ने अपने घर के ठाकुर को कौरा धातु निर्मित स्वरूप न समझकर उसे चिन्मय दिव्य स्वरूप में ही देखा और उससे पुष्टिमार्गीय दिव्य प्रेम की अबाध प्रेरणा लेते हुए अपने प्रेम प्रधान साहित्य का सर्जन किया। उनके घर के निजी ठाकुर जी की सेवा न तो दैभ मयी थी न यांत्रिक वह भक्ति की प्रेरणा प्रीति थी। उनके पिता श्री गोपाल चन्द्र जी जिनका उपास्य गिरिदास था - लगभग चालीस ग्रंथों के प्रणीता थे। जिनमें भगवान के प्रमुख अवतारों की कथा - “कथामृत” नाम से लिखी थी^२। तात्पर्य इतना ही कि भारतेन्दु और उनके पिता का लगभग संपूर्ण साहित्य भक्ति सिद्धान्त से ही ओत प्रीति है। और उसके मूल में उनके उपास्य हैं और उनकी उपास्य भावना है।

पुष्टिमार्ग में नित्य सेवा एवं वर्णार्त्सव सेवा

१- भार० नाटकावली पृ० ४६ इंडियन प्रेस १९२७

२- भारतेन्दु जी० च० राधाकृष्ण पृ० ३६ संस्करण १९७६

के ऐसे अनेक अवसर हैं जिन पर जयदेव की अष्टपदियाँ अनिवार्यतः गायी जाती हैं। जैसे- प्रलय पयोधि जले धृतवानसि वेदम् । प्रायः यह अष्टपदी सभी जयन्तियों पर गायी जाती है। इसी प्रकार बसन्त ढोल हौली और रास पर कुछ निश्चित अष्टपदियाँ हैं जो अनिवार्यतः तत्तद अवसरों पर गायी जाती हैं। कौमलकान्त पदावली के आचार्य जयदेव उच्च कौटि के रसिक भक्त थे, जिनकी अष्टपदियों की ब्रजनायक रसेस भगवान् श्रीकृष्ण गायक के समक्ष खड़े होकर सुनते हैं। यह वार्ता सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है। भारतेन्दु इस तथ्य से भली भाँति परिचित थे और वे यह भी जानते थे कि जयदेव की अष्टपदियाँ किन विधि निषेधों के साथ गायी जाती हैं। अतः जयदेव की ३८ अष्टपदियों का भारतेन्दु ने एक प्रकार से उसी कौमल कान्त पदावली में भाषानुवाद ही प्रस्तुत कर दिया है। जिस प्रकार अष्टपदियों के अन्त में "श्री जयदेव कवेरिद" प्रत्येक पद में आया है उसी का अनुसरण करते हुए भारतेन्दु जी ने अपनी सभी अष्टपदियों में उसी शैली का अनुसरण किया है। अन्तर इतना ही है कि जयदेव की अष्टपदियाँ संख्या में २४ हैं। इनकी ३७ हैं। इसका प्रमाण द्रष्टव्य है -

दोहा

अष्टपदी चौबी इमि गाई कवि जयदेव ।
भाषा करि हरिचंद सौह, कही प्रेम-रस मेव ॥१॥
गुप्त मैत्र सम पद सबै, प्रगटे भाषा माँहि ।
यह अपराध महा कियो, यामैं संसय नाहि ॥२॥
कमि हैं निज जन नानि सो जुगल दास तकसीर ।
हरि हैं अपनो समुझि जिय कठिन मोह भव पीर ॥

तात्पर्य इतना ही कि गीत गोविंदानंद की

रचना के पीछे कौरी कवि मनीषा ही नहीं है, अपितु साम्प्रदायिक भावना पद्धति भी निहित है। जिसे भारतेन्दु के आधुनिक आलोचकों ने अपनी दृष्टि से ओझल कर दिया है।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि भारतेन्दु को दीक्षा के समय गुरुदेव ने लक्ष्मी और सरस्वती में से एक को वरण करने के लिए कहा था, जिसमें से भारतेन्दु ने सरस्वती को ही वरण किया था। अतः उनका अध्ययन और लेखन दोनों ही अपने दौत्र में अद्वितीय रहे हैं। परंपरागत साम्प्रदायिक सेवा भावना होने से उन्होंने कृष्ण भक्ति पर लेखनी उठाने से पूर्व आचार्य वल्लभ स्वामी गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के ग्रंथों का अनुशीलन किया था। अतः उनके ग्रंथों पर आचार्य के जिन ग्रंथों की ह्वाप है उनका उल्लेख किया जा रहा है :

- १- षोडश ग्रंथ
- २- भागवत दशम स्कन्ध एवं तृतीय स्कन्ध
(सुबोधितो)
- ३- द्विविध लीला नामावली
- ४- मधुराष्टक
- ५- श्रीकृष्ण प्रेमामृत
- ६- श्रीनन्दकुमाराष्टक
- ७- श्रीगिरिराज धार्याष्टक
- ८- श्रीकृष्णाष्टक
- ९- श्री गोपीजनवल्लभाष्टक आदि

आचार्य के उपर्युक्त ग्रंथ श्रीकृष्ण की किशोर लीलाओं से सम्बन्धित हैं। विद्वानों की यह मान्यता है कि आचार्य ने पुष्टि

मार्गीय भक्ति की द्विविध उपासना का स्मृत किया है। सार्वजनीन उपासना के रूप में उनकी वात्सल्य भावोपासना प्रसिद्ध है एवं विशिष्ट भक्तों के लिए उनकी किशोर भावना प्रसिद्ध है।^१

भारतेन्दु के साहित्य में वात्सल्य भावापन्न पुष्टिमार्गीय भक्ति साधना दृष्टिगोचर नहीं होती। इसका स्पष्ट तात्पर्य यही है कि आचार्य के राधा भाव की भावना वाले ग्रंथों का उन पर विशिष्ट प्रभाव पड़ा है। हिन्दी के कतिपय विद्वानों ने प्रारंभ में यह भ्रम उत्पन्न कर दिया था कि आचार्य वल्लभ ने अपने ग्रंथों में भगवती राधा की चर्चा ही नहीं की है^२ किन्तु तथ्य यह है कि राधा भाव की मधुरोपासना का सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण करने वाले आचार्य वल्लभ ही हैं। भारतेन्दु में संयोग और विप्रयोग शृंगार के दोनों ही पक्ष परिपक्व होकर उदित हुए हैं। जितना भी विप्रयोग पक्ष है वह आचार्य वल्लभ का पक्ष है और जितना भी संयोग पक्ष है वह गो० विठ्ठलेश का प्रभाव है। इसी दृष्टि से गो० विठ्ठलनाथ जी के ग्रंथों की चर्चा करना भी समीचीन प्रतीत होती है।

गो० विठ्ठलेश ने लगभग ४०-४२ ग्रंथ लिखे हैं जिनमें भारतेन्दु पर निम्नांकित ग्रंथों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है :

१- श्री सर्वोत्तम स्तोत्र

२- वल्लभाष्टकम्

३- स्फुरत् कृष्ण प्रेमामृतस्तोत्रम्

१- जययज्ञ समिति की स्मारिका - चौखम्बा काशी- आचार्य वल्लभ की

भावोपासना - ले० डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल । सं० २०३६ ।

२- अष्टाक्षर और वल्लभ सम्प्रदाय भाग २ पृ० ५२

- ४- यमुनाष्टपदी
- ५- राधा प्रार्थना चतुःश्लोकी
- ६- स्वामिनी प्रार्थना
- ७- व्रतचर्याष्टपदी
- ८- दानलीलाष्टक
- ९- रससर्वस्वम्
- १०- विज्ञप्तायः

उपर्युक्त १० ग्रंथों से भारतेन्दु ने सर्वोत्तम स्तोत्र को तो मानो हिन्दी साहित्य में पुनरुत्तरित किया है। इस स्तोत्र की पुष्पिका में वे स्वयं लिखते हैं :

“ इति श्रीमद्विठ्ठलनाथ-चरण-फैज-
पराग-लेपापसारित निखिलकल्मष हरिश्चन्द्र कृत भाषान्तरित
कीर्तनस्वरूप श्री सर्वोत्तमस्तोत्रम् समाप्तिमगम् । ” १

प्रस्तुत पुष्पिका से यह सिद्ध होजाता है कि भारतेन्दु पुष्टिमार्गीय आचार्यों के प्रतिकितने गहरे निष्ठावान् थे। इसी प्रकार वैष्णवस्वामी विठ्ठलनाथ जी के राधा विषयक ग्रंथों के भी भारी कृणी हैं। “ दानलीला ” में तो उनका ग्रंथ गुसाईं जी विरचित दानलीलानुसारी ही है। इसी प्रकार प्रेम माधुरी, प्रेम तरंग, प्रेममन्त्राप, तन्मयलीला आदि ग्रंथों पर श्री विठ्ठलेश ग्रंथों की छाया स्पष्ट है।

भारतेन्दु की प्रेम मालिका और प्रेमाशु तो उनके प्रेमलक्षणा मन्त्र के ही ग्रंथ हैं। यदि उनके ग्रंथों का गहराई से अनु-

शीलन किया जाय जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है तो विदित होगा कि उन्होंने वल्लभ विट्ठल के अतिरिक्त साम्प्रदायिक ग्रंथों का गंभीर अध्ययन किया था। वे अपने कृतित्व में श्री हरिराय जी के अधिक ऋणी प्रतीत होते हैं। हरिराय जी लोकोत्तर प्रेमलक्षणा भक्ति के परमाचार्य स्वीकार किये गये हैं। वे स्वयं रसिक क्लाप से हिन्दी में कविता करते थे^१। हरिराय जी ने आचार्य वल्लभ और गो० विट्ठलनाथ जी के लगभग सभी ग्रंथों का हार्द प्रगट किया था। यह कहा जा चुका है कि भारतेन्दु संस्कृत का अच्छा ज्ञान रखते थे अतः उन्होंने वल्लभाचार्य और गो० विट्ठलनाथ जी के ग्रंथों का अच्छा अध्ययन करने के बाद हरिराय जी की हिन्दी कविताका भी अच्छा अध्ययन किया था। अतः उनके कृतित्व पर हरिराय जी के सीधे प्रभाव की किंचित् चर्चा की जाय तो भारतेन्दु जी के द्वारा किए गए पुष्टिमार्गीय ग्रंथों के अनु-शीलन का सहज ही बोध हो जायेगा।

भारतेन्दु को 'राधा' सम्बन्धी सर्व उत्सव सम्बन्धी पदों की स्पष्टप्रेरणा गो० हरिराय जी से ही मिली है। इनकी कृतियों पर गो० हरिराय जी का गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है। यहाँ उन ग्रंथों की सूची प्रस्तुत की जा रही है, जिनसे भारतेन्दु का साहित्य प्रभावित है।

- १- मार्गस्वरूप निर्णय
- २- स्वमार्गीय साधन रहस्य
- ३- भक्तिमार्ग पुष्टिमार्गत्व निश्चय
- ४- पुष्टिमार्गीय स्वरूप निरूपण

१- हरिराय जी का पद साहित्य पृ० ७

“नृपति द्वार ठाढ़े रहे दरसन आसा जास की।

आसुधीर उद्योत कर रसिक क्लाप हरिदास की ॥

२- हरिराय वाड० मुक्तावली भाग १-२

- ५- श्रीमद्भगवद्गीता स्वीकृत प्रकाश
- ६- स्वमार्गीय शरण समर्पण सेवादि निरूपण
- ७- पुष्टिपथ मर्म निरूपण
- ८- स्वमार्गग्रहस्य निरूपण
- ९- सर्वात्मभाव निरूपण
- १०- भगवच्चरणचिह्न वर्णन
- ११- सत्संग निर्णय
- १२- स्वप्न विज्ञप्ति
- १३- श्रीकृष्णचरण विज्ञप्ति
- १४- दैन्याष्टक
- १५- श्रीराधाष्टकम्
- १६- स्वामिनी प्रार्थनाष्टक
- १७- श्री यमुना विज्ञप्ति
- १८- श्री नृसिंह वामन जयन्त्युत्सव व्रत वैशिष्ट्य
- १९- अष्टपदी
- २०- पदानि (संस्कृत ग्रंथ सूची समाप्त)
- २१- दानलीला
- २२- राधा का रूप
- २३- दाम्पत्य प्रेम
- २४- कुंज कैलि
- २५- युगल विहार
- २६- नव विलास
- २७- सुरतान्त
- २८- ब्रजबालाओं की आसक्ति
- २९- दूती

- ३०- प्रियमिलन
- ३१- रूपगर्विता
- ३२- प्रेमगर्विता
- ३३- सैद्धिता
- ३४- मान मनावन
- ३५- मानमोचन
- ३६- गुरुमान- मान मोचन
- ३७- विरह
- ३८- उत्सव त्यौहार सम्बन्धी पद

दीपावली, गोपूजन, प्रबोधिनी, बसन्त पंचमी, फूलहोल, पवित्रा स्कादशी यमुना महिमा, बधाइयाँ, भक्ति भावना, दीनता, आश्रय, पश्चात्ताप, सत्संगादि ।

इस प्रकार संस्कृत और हिन्दी के ३८ ग्रंथ भारतेन्दु जी के साहित्यपर प्रतिष्ठापित हैं। यहाँ तक कि भारतेन्दु की समय समय पर अपने नाटकों में अथवा पदों में गुजराती पंजाबी भाषाओं में पद लिखने की बात सूझी है, वह भी एक प्रकार से हरिराय जी का ही प्रभाव है।

भारतेन्दु के अथवा अधि अध्ययताओं ने उन्हें विशुद्ध कवि अथवा नाटककार के रूप में देखा है। पुष्टि मार्ग जैसे भक्ति सम्प्रदाय से अनुस्यूत कहे नहीं। यह एक प्रकार से भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का पैगु अध्ययन ही कहा जायेगा। गौ० हरिराय जी के ब्रजभाषा पद साहित्य

१- हरिराय जी के पद संख्या ६६८ गुजराती। ६६६ पंजाबी।

क्रमशः (१) व्हाली मनोहर मूर्त चित्ठानो चोर। (गुजराती)

(२) हौरी दे सेल बिनु यह क्या कीता (पंजाबी)

को तीन प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है :

१- कृष्णलीला

२- उत्सव त्यौहार एवं

३- सम्प्रदाय सम्बन्धी बधाइयाँ भक्ति पद्धति

और दीनता विनय आदि । लगभग इसी आधार पर स्वयं भारतेन्दु ने अपने काव्य को तीन प्रकार से स्वयं विभाजित किया है। वे प्रेम मालिका में लिखते हैं :

“ विजयते जीवितेशः ”

इस छोटे से ग्रंथ में मेरे बनार कीर्तनों में से कतिपय कीर्तन स्कन्न किए गये हैं, इसमें कीर्तन तीन भाँति के हैं। एक तो लीला सम्बन्धी, दूसरे दैन्य भाव के और तीसरे प्रेममय अनुभव के हैं। इसको स्कन्न करना और छप्पाना अप्रयोजन था, क्योंकि एक तो संसार में प्रायः अधिकारी लोग हैं। दूसरे इसके द्वारा लोगों में अपनी प्रसिद्धि की इच्छा नहीं तथापि परम प्रीति से यह प्रेम पुष्प ग्रथित मालिका उसी के श्री कंठ में समर्पित है जिसे इसमें गया है।^१

तात्पर्य यह कि भारतेन्दु ने अपने गेय पदों को स्वयं कीर्तन संज्ञा दी है। यह सर्व प्रसिद्ध है कि पुष्टिमार्ग में पदों को “ कीर्तन ” कहा जाता है। भारतेन्दु ने अपने कीर्तनों को “ भगवन्नामां कित ”^२ बतलाया है। इसी कारण पुरस्कृत दोष भावदोष अथवा काव्य दोषादि सभी के लिए उन्होंने रसिक जनों से क्षमा याचना कर ली है। प्रायः सम्प्रदाय

१- प्रेममालिका की भूमिका पृ० ४४ (भारतेन्दु ग्रंथावली खण्ड २)

२- भक्त सर्वस्व की प्रस्तावना भा० ग्र० (२) पृ० ३

मुक्त कवि कार्तिके महात्म्य, वैशाख महात्म्य, अथवा गंगा सप्तमी, वामन द्वादशी नृसिंह चतुर्दशी आदि के महात्म्य से कौई प्रयोजन नहीं रखते न ब्राह्मण भोजन अथवा फलवानों की चर्चा करते हैं। यह विशुद्ध साम्प्रदायिक प्रवृत्ति है। प्रेम सरोवर के समर्पण में उन्होंने अक्षय तृतीया पर आग्रह रखा है। साथ ही लोक वेदादि मर्यादा को प्रेम के क्षेत्र में तिलांजलि देने का दावा किया है :

‘लोक वेद को प्रथम ही देहु तिलांजलि दान ।’ १

लोक वेदादि प्रेम पुष्टि मार्ग की अपनी विशेषता है। एक बात ध्यान देने की यह भी है कि भारतेन्दु के तथाकथित भगवन्नामांकित ग्रंथों की रचना में उन्होंने प्रारंभ या समाप्ति के लिए उन्होंने पुण्य तिथियों का ध्यान विशेष रूप से रखा है। जैसे प्रेम मानिका अक्षय तृतीया को प्रारंभ हुई। प्रेम सरोवर भी संवत् १९३० के अक्षय तृतीया को प्रारंभ हुआ। प्रेमाशुवर्षाण वर्षा का चोतक होने के कारण श्रावण की हरियाली अमावस्या को प्रारंभ हुआ।

जहाँ भारतेन्दु को घोर पुष्टिमार्गीय स्वीकार किया जा सकता है, वहाँ वे उदार भाव से जैन कृतुहल जैसे ग्रंथों की भी रचना कर सकते हैं। साम्प्रदायिक ग्रंथों के अनुशीलन में यह उल्लेख करना अस्थानीय नहीं होगा कि भारतेन्दु को जहाँ भी राधा और कृष्ण के शृंगार की चर्चा करने का जहाँ भी अवसर मिला है वहाँ उन्होंने पुष्टिमार्गीय साज शृंगारपरक वस्तुओं के ही नाम दिये हैं। श्रीकृष्ण की गोकुलीय लीला में सर्वाधिक महत्त्व गौवर्धन लीला अथवा पूजा का है। भारतेन्दु ने ऐसे महत्वपूर्ण

१- प्रेम सरोवर - दोहा १२ (भा० ग्र० (२) पृ० १०४

२- मधुसूक्त - भा० ग्र० (२) पृ० ४०६

प्रसंगों को नहीं छोड़ा है।

संदीप में भारतेन्दु के पुष्टिमार्गीय ग्रंथों के अनुशीलन पर, यहाँ पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। साथ ही यह भी स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है कि भारतेन्दु के कवि कर्म में अंतःसलिला की भाँति पुष्टिमार्गीय भक्ति की मँदाकिनी अजग्न रूप से बह रही है। जहाँ उनमें वल्लभ विठ्ठल हरिराय जी लेकर गिरिधर जीतक के गोस्वामी बालकों के ग्रंथों की प्रतिच्छाया देखी जा सकती है वहाँ एक बात बड़े महत्त्व की ये है कि उन्होंने सूरदि अष्टकापियों की मान्य कीर्तन परम्परा को भी नहीं छोड़ा है। उनको पुष्टिमार्गीय कवियों की परम्परा में ससम्मान समाहित किया जा सकता है। राग संग्रह एवं स्फुट कविता संग्रह में अनेक ऐसे पद हैं जो अष्टकापी कवियों से टक्कर लेते हैं। इस कथन का आशय यह है कि न केवल उन्होंने पुष्टिमार्गीय आचार्यों के ग्रंथों का गंभीर अध्ययन किया था, अपितु सूरदि अष्टकापी कवियों से भी वे पर्याप्त प्रभावित थे। सूर की छाया तो उनके अनेक ग्रंथों में देखी जा सकती है। जैसे प्रेममालिक, प्रेम फुलवारी, मान मनौजल, हौरी, बसंत, फाग, डोल, तथा मूलेकै पदों में सूर सागर की वस्तु और शैली का सहज स्मरण हो आता है। अपनी इतनी अल्प वय में भारतेन्दु ने हिन्दी विशेष कर ब्रज भाषा साहित्य की अनेक विधाओं में अपनी लेखनी चलाई, यह तो आश्चर्य है ही, साथ ही वे पुष्टि भक्ति और दर्शन के गंभीर रहस्यों से परिचित थे, यह एक सुखद आश्चर्य का विषय है।

...

पंचम अध्याय

महात्मेन्दु साहित्य का सामान्य परिचय

पंचम अध्याय

भारतेन्दु साहित्य का सामान्य परिचय

हिन्दी भाषा और साहित्य की प्रतिष्ठा की अभिवृद्धि का सूत्रपात भारतेन्दु ने किया था । चौतीस वर्षों की अन्पायु में, अकेले ही हिन्दी साहित्य को विभिन्न चोत्रों में विकसित करने का श्रेय भारतेन्दु जी का है। हिन्दी साहित्य को काव्य की कृंज गली से निकालने का साहसपूर्ण कार्य स्वयं में एक विराट् विस्मय है। हिन्दी को जीवन देने में सूर और तुलसी का, हिन्दी को सज धज देने में देव और बिहारी का जो स्थान है वही स्थान हिन्दी को चहुमुखी प्रतिष्ठा देने में भारतेन्दु का है। भारतेन्दु से ही खड़ी बोली, न केवल घुटनों के बल चलना छोड़कर खड़ी होना सीखती है, अपितु वह साहित्य एवं वाङ्मय के विभिन्न चोत्रों में विचरणा करने का भी पथ निर्देश प्राप्त करती है। भारतेन्दु का साहित्यिक कृतित्व , मूल्यकिन करते समय देखा जा सकता है कि उसका प्रसार बहु आयामी रूप में हुआ है। कवि के रूप में वे आत्म विस्मृत में सोये भक्त कवियों के नवीन संस्करण हैं। नाटककार के रूप में स्वदेशी और विदेशी परम्पराओं का दिग्दर्शन कराने वाले मौलिक नाटक साहित्य के आदि संस्थापक हैं और भारतीय रंग मंच के अभिनव भरत ।

निबन्धकार के रूप में भारतेन्दु उस अनुप्राणित स्वातन्त्र्यात्मक शैली के प्रवर्तक हैं जिसका दुर्भाग्यवश हिन्दीमें आगे कुछ अधिक

विकास न हो सका । पत्रकार के रूप में, वे स्वतंत्र विचारशक्ति और निष्पक्ष विवेचना के आदर्शों के जन्मदाता थे । धर्म और दर्शन के क्षेत्र में , वे बाल्य सम्प्रदाय के अनुयायी वैष्णव थे , परन्तु क्रांतिजीवी होने के कारण गतानुगतिकता से कौनों दूर रहकर समाज को, धर्म और इतिहास के क्षेत्र में मार्ग दर्शन देते रहे ।

यह सर्व विदित है कि उन्नीसवीं शती का उत्तरार्द्ध आन्दोलनों का युग था । भाषा, समाज, धर्म और राजनीति इन चारों क्षेत्रों में आन्दोलनों की बाढ़ आयी हुई थी । ' निज भाषा उन्नति अहै ' के मूल मंत्र की अवधारणा करके चले वाले भारतेन्दु ने पुस्तकों पत्र पत्रिकाओं, नाटक नाटिकाओं, प्रहसनों, व्याख्यानो और समा समितियों के माध्यम द्वारा युग की तृष्णा और पीड़ा को मिटाने हेतु बीड़ा उठाया था । उन्होंने साहित्य सेवा की दृष्टि से सन् १८७० ई० में ' कवितावर्द्धिनी ' समा ' की स्थापना की । वहीं स्वतन्त्रता की लड़ाई हेतु और धर्मोत्थान के लिए सन् १८७३ ई० में ' तदीय समाज ' नामक एक धार्मिक समाज की स्थापना की । दीन दलितों के उद्धार के लिए जहाँ अनाथरक्षिणी समा बनायी वहीं उन्होंने युवकों का संगठित करने के लिए ' यंगमैनस एसोसियेशन ' की स्थापना की की । तात्पर्य यह कि भारतेन्दु जी में विराट् नेतृत्व की क्षमता थी । उनकी प्रतिभा का प्रसार देखकर, कौन ऐसा होगा जो दाँतों तले अंगुलि न दबा लेता हो । हिन्दी भाषा तथा नागरी अक्षरों की उपयोगिता के विषय में उन्होंने अनेक पत्रक प्रकाशित कराके वितरित कराये थे । विभिन्न नगरों में जा जाकर भाषण दिये थे । इसका इतना प्रभाव पड़ा कि देश के विभिन्न स्थानों में अनेक हिन्दी हितकारी संस्थाओं ने जन्म लिया । सन् १८७५ ई० में श्री राधाचरण गोस्वामी ने ' कवि कुल कौमुदी समा , काशी ' में स्थापित की । सन् १८८४ ई० में प्रयाग में

हिन्दी उद्धारिणी प्रतिनिधि मध्य सभा^१ प्रतिष्ठित हुई। पटना में 'कवि समाज' तथा राँची में 'मातृभाषा प्रचारिणी' नामक संस्था बनी। हिन्दी के प्रचार प्रसार की दृष्टि से 'नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना सन् १८६३ ई० में बाबू हरिश्चन्द्र जी की प्रेरणा से श्यामसुन्दर दास एवं पं० राम नारायण मिश्र आदि हिन्दी सेवियों के प्रयत्नों से काशी में हुई।

भारतेन्दुकालीन इस गतिविधि से जहाँ समग्र उत्तर भारत प्रभावित हो रहा था, वहाँ अलीगढ़ नगर प्रभावित हुए बिना मला कैसे रह सकता था। ३० जून, १८८२ ई० के साप्ताहिक 'भारतबधु' में एक विज्ञप्ति छपी थी, जो इस प्रकार है :

“ देश भाषा की उन्नति के निमित्त एक भाषा संवर्द्धिनी नाम सभा अलीगढ़ में सन् १८७७ स्थापित हुई। बहुत से स्वदेशीय एवं विदेशीय विद्वान् भारतवर्ष के अनेक नगरों में इस सभा के सभा सदस्य हो चुके हैं। और बराबर बनते चले जाते हैं। कुछ पुस्तकें भी उक्त सभा की सैमति से छपकर प्रकाशित हो चुकी हैं। और अब छपने को तैयार हैं। गत वर्ष में तीन प्रकार की पुस्तकें पर सभा ने पारितोषिक भी देना अंगीकार किया था। स्त्री शिक्षा पर १००) रुपये और हिन्दी सीरीज अर्थात् हिन्दी भाषा की श्रेणीबद्ध पुस्तक पर २००) रु० और कृषि विद्या की पुस्तकें पर १२५)-----। ”

पं० मिहिश्चन्द्र ने अपने ग्रंथ अष्टादश स्मृति की भूमिका में लिखा है :

“ इस अलीगढ़ नगर में बहुत दिनों से भाषा

१- भारतबधु- साप्ता० अलीगढ़ संपा० बाबू तौताराम वर्मा, ३० जून सन् १८८२ ई०।

संस्कृतिनी समा नियत है। इनका उद्देश्य यह है कि संस्कृत के उत्तम उत्तम ग्रंथों का भाषा में अनुवाद कराकर और कृपा कर प्रचार किया जाय। एक समय समा का विचार हुआ कि अठारह स्मृतियों का भाषा में अनुवाद किया जाय।^१”

” श्रीमान् बाबू तोताराम जी का जीवन चरित्र नामक पुस्तक में कहा गया है-

” अलीगढ़ में आपो (तोताराम जी) भाषा संस्कृतिनी समा बनाई। इसका मुख्य उद्देश्य देश भाषा की उत्थति थी। हिन्दी के पक्षपातियों को इस समा से बड़ी प्रेरणा मिली।”

उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि बाबू भारतेन्दु जी ने भाषा और साहित्य की समृद्धि के लिए जो कण्ठ उठाया था उसकी छाया में कितने ही हिन्दी साहित्य प्रेमियों ने हिन्दी भाषा के विकास के साथ भारतीय समाज एवं धर्म की, सुगठित तथा संरक्षित करने की व्यापक साधना में आपो को प्राणपण के साथ समर्पित कर दिया।

बाबू भारतेन्दु जीको आपो पिता की अतुल संपत्ति का उत्तराधिकारी होने का अवसर दुर्भाग्य से अल्प एवं अफ़सव वय में ही मिल गया और बाल कंधों पर इतना भार दुर्वह होना स्वाभाविक ही था परन्तु फिर भी बाबू जी ने अपनी प्रतिभा का परिचय देते हुए अत्यन्त पटुता के साथ सारा कारोबार सहज मन से सम्हाल लिया। आपके शिक्षार्जन काल में यह स्थिति एक बहुत बड़ी खाई बन गई और यथोचित शिक्षा प्राप्त न हो सकी। प्रतिभा के धनी एवं विद्या व्यसनी होने के

१- अष्टादश स्मृति - अनु० पृ० मिहिरचन्द्र- प्रथम बार १८६१ ई०

२- श्रीमान् बाबू तोताराम वर्मा का जीवन चरित्र- मुन्नीलाल वकील पृ० ३

कारण आफ्ना, हिन्दी एवं संस्कृत विषयों का स्वाध्याय घर पर ही चलता रहा । विद्वान् एवं साहित्यसेवी तथा स्वामिमानी पू० फ़िता के गुण तथा संस्कार आफ्नी मिले थे । आफ्नी फ़िता बाबू गौपालचन्द्र उफ़्ताम गिरधरदास जी हिन्दी भाषा तथा साहित्य के प्रति असीम अनुरागवान् एवं धर्म के प्रति आस्थावान् उदार वैष्णव वैश्य थे । भारतेन्दु जी ने अपने "नाटक" नामक विबन्ध में लिखा है :

" मेरे फ़िता ने बिना अँगरेजी शिक्षा पाये उधर (अर्थात् पात्र प्रवेशादि नियम रक्षण द्वारा भाषा- नाटक- रचना की ओर) क्यों दृष्टि दी, यह बात आश्चर्य की नहीं । उनके सब विचार परिष्कृत थे । बिना अँगरेजी की शिक्षा के भी उनको वर्तमान समय का स्वरूप भली भाँति विदित था । पहले तो धर्म के विषयमें ही वे इतने परिष्कृत थे कि वैष्णव व्रत पूर्ण पालन के हेतु अन्य देवता मात्र की पूजा और व्रत घर से उठा दिये थे । "

भारतेन्दु जी का वैश वैष्णव मतानुयायी पुष्टिमार्गीय था । जैसा उल्लिखित उद्धरण से स्पष्ट है। वल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्त और साहित्य के प्रति असीम अनुराग भारतेन्दु जी में विद्यमान था । इसका एकमात्र कारण उनकी आनुवंशिकता है। हिन्दी साहित्य के उद्धार के लिए ही प्रभु ने भारतेन्दु जी को इस घरायाम में भेजा था और इसके लिए जितनी विद्या , बुद्धि कला , कौशल तथा धन संपत्ति की आवश्यक्ता थी, उतनी उस जगन्नियता जगदीश्वर ने इनके लिए प्रस्तुत कर दी थी । कविवचन सुधा मासिक पत्र में प्रकाशित उनकी ये चार पंक्तियाँ उनके

१- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - श्यामसुन्दर दास बी०ए० (ई०प्रै०लि० प्रयाग)

सन् १९२७ पृ० १५

मातों और विचारों पर पर्याप्त प्रकाश डालती हैं :

खल गनन सौ सज्जन दुखी मति होंहि हरिपदमति रहै ।
उपधर्म कूटै, स्वत्व निज भारत गहै, कर- दुख बहै ॥
बुध तजहिं मत्सर नारिनर सम होहि, जग आनंद लहै ।
तजि ग्राम कविता सुकवि जन की अमृतबानी सब कहै ॥१

बाबू राधाकृष्ण जीइस सिद्धान्त पर विचार करते हुए लिखते हैं :

“ यद्यपि इस समय (सन् १९६०) इन बातों का कहना कुछ कठिन प्रतीत होता है, परन्तु उसे अन्ध परम्परा के समय में इनका प्रकाशन रूप से इस प्रकार कहना सहज था । नव्य शिक्षित समाज को ‘ हरि पद मति रहै ’ कहना जैसा अरु चिकर था, उससे बदकर पुरानी लकीर के फकीरों को ‘ उपधर्म कूटै ’ कहना क्रोधोन्मत्त करना था । जैसा ही अंगरेज हाकिमों को ‘ स्वत्व निज भारत गहै ’, ‘ कर दुख बहै ’ कहना कर्ण कटु था उससे अधिक ‘ नारि नर सम होहि ’ कहना हिन्दुस्तानी मद्र समाज को चिढ़ाना था, परन्तु वीर हरिश्चन्द्र ने जो जी में आया उसे कह ही डाला । और जो कहा उसे अन्त तक निबाहा भी । इन्हीं कारणों से ये गवर्नमेंट के क्रोध भाजन हुए, अपने समाज में निर्दित हुए और समय समय पर नव्य समाज में भी बुरे बने । परन्तु जो व्रत इन्होंने धारण किया उसे अन्त तक नहीं छोड़ा । यहाँ तक कि कवि वचन सुधा से अपना संबंध छोड़ने पर भी आजन्म यही व्रत रखा । ”

१- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - श्यामसुन्दर दास बी०ए० (इंडियन प्रेस लि०

प्रयाग) सन् १९२७ पृ० ११

२- वही

पृ० २१-२२

कवि वचन सुधा से ही संतुष्ट रहकर इन्होंने सन् १९३० में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' निकालना आरंभ किया। यह मासिक रूप में निकलता था और इसमें अच्छे अच्छे लेख निकलते थे। परन्तु इसकी केवल आठ संख्याएँ छप सकीं, तदनन्तर यह 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' के नाम से छपी लगा। कुछ वर्षों तक भारतेन्दु जी इस चन्द्रिका को निकालते रहे। इसके अनन्तर पंडित मोहन लाल विष्णुलाल पंड्या के कहने पर इसे उन्हें दे दिया। परन्तु वे इसे सुचारु रूप से नहीं चला सके। इसलिए चार वर्षों के पश्चात् इन्होंने फिर उसे स्वयं संपादित करना आरंभ किया। परन्तु इसके दो ही मास के अनन्तर भारतेन्दु जी का परलोकवास हो गया और चन्द्रास्त के साथ ही चन्द्रिका भी सदा के लिए विनीत हो गई।

भारतेन्दु जीकी साहित्यसेवारूपी सुरसरि अनेक धाराओं में प्रवाहित हुई थी। नाटक, आख्यान, काव्य, स्तोत्र, परिहास, इतिहास, महात्म्य इत्यादि भिन्न भिन्न विषयों पर इनकी लेखनी परिचालित हुई थी। उनके बहुकार्य व्यापृत जीवन में इतने अधिक ग्रंथ लिखे जा सके, यह उनकी आशु रचना शक्ति और तीव्र मेधा का ही फल है। भारतेन्दु जी को इतना अधिक आत्म बल अनन्य भगवत् भक्ति से प्राप्त हुआ था और अत्यन्त स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करते हुए भी किस प्रकार स्कीन्मुख अनुरक्ति के साथ साथ संसार से मधुर विरक्ति की भावना उनके अन्दर काम किया करती थी, इसका परिचय उनके समर्पण लेखों में सर्वत्र परिचित होता है। संचित स्नेह लुटाकर चलना ही उनका अंतिम लक्ष्य था -

“डंका कूच का बज रहा मुसा फिर जागो रे माई ।

देखोनाद चले पंथी सब तुम क्यों रहे मुलाई ॥

जब चलना ही निहचै है तो लै किन माल न्दाई ।

हरीचंद हरिपद बिनु नहिं तौ रहि जैहो मुंह बाई ॥१

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उन महाकवियों में हैं जो अपनी पूर्व परंपरा पर चले हुए भी स्वयं एक परंपरा छोड़ जाते हैं। पूर्ववर्ती हिन्दी साहित्य की प्रायः सभी धाराओं का प्रतिनिधित्व उनके काव्य में मिल जाता है। भक्ति काल की कृष्णाश्रयी एवं रामाश्रयी दोनों सगुण धाराओं तथा ज्ञानाश्रयी निर्गुण धारा का प्रतिबिंब उनके भक्ति काव्य में हमें मिलता है। कबीर और तुलसी से वे इतने प्रभावित नहीं हुए, जितने सूर से हुए हैं।

भारतेन्दु जी वल्म सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। वे, इसलिए उनके साहित्य में श्रीकृष्ण विषयक कथ्य ही सर्वाधिक हैं। वे अष्टछाप परम्परा की अन्तिम कड़ी हैं। अष्टछापी कवियों में वे सूर से सर्वाधिक प्रभावित हैं। पद लेखन की परंपरा में वे विद्यापति एवं मीरा के समकाल हैं तो कवित्त और सवैया लेखन की परंपरा में वे शृंगारी कवियों- देव, फ़माकर, ठाकुर, घनानंद एवं रसखान की कोटि के हैं।

जहाँ तक आधुनिक काव्य के विषय में बात है, वे उसके प्रवर्तक हैं। रीतिकाल में हिन्दी साहित्य जन जीवन से अलग हो गया था। भारतेन्दु जी ने यह प्रयत्न किया कि साहित्य को जन जीवन के निकट लाकर खड़ा कर दिया और साहित्य तथा जीवन के मध्य उत्पन्न गहरी खाई को पाट दिया। भारतेन्दु ने देश भक्ति, राजभक्ति, समाज सुधार, स्वदेश प्रेम, हिन्दुत्व, हिन्दीप्रेम आदि विषयों पर कविताएँ लिख कर काव्य की संकीर्ण सीमा का विषय विस्तार किया।

भारतेन्दु के साहित्य में जीवित समरसता का एक शाश्वत सन्देश है। इसे अभी तक मली मालि आँका नहीं गया। जीवन के प्रति जिस स्वस्थ दृष्टिकोण को उन्होंने अनुबिंबित किया है, वह केवल दो चार कवि ही हिन्दी को दे पाये हैं। साहित्य भ्रष्टा के रूप में उनका

अप्रतिम स्थान है। भारतेन्दु जीकी साहित्य सेवा रूपी सरिता अनेक धाराओं में प्रवाहित हुई थी। काव्य, नाटक, निबन्ध, आख्यान स्तौत्र परिहास, इतिहास, माहात्म्य इत्यादि विभिन्न विषयों पर आपकी लेखनी चली और इतनी चली कि उसने भारतेन्दु युग को ही जन्म दे दिया। हिन्दी नवोत्थान आन्दोलन के प्रमुख पक्ष थे- 'धर्म और साहित्य'। इन दोनों पक्षों की भारतेन्दु ने साहित्य में अवतारणा की और हिन्दी भाषियों तथा हिन्दी साहित्यानुरागियों में अद्भुत आशा का संचार किया। भारतेन्दु के प्रायः सभी ग्रंथ उनके जीवन काल में पहले तो 'कवि वचन सुधा' और 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। पुनः स्वतन्त्र ग्रंथों के रूप में प्रकाशित हुए। भारतेन्दु अर्द्ध शताब्दी की महोत्सव के अवसर पर सन् १९३५ ई० में नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने इनके समस्त काव्य ग्रंथों का संकलन कर 'भारतेन्दु ग्रंथावली - २ भाग' के नाम से प्रकाशित किया था।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की सीमा रेखा एवं विषय-यानुरूपता की दृष्टि से भारतेन्दु जी के साहित्य का परिचय परमापेक्षित है।

१- भारतेन्दु के काव्य

(१) प्रेममात्मिका (सं० १६२)

इस छोटे से ग्रंथ में १०० पद हैं। भारतेन्दु जी ने इसकी भूमिका में लिखा है :

“ इस छोटे से ग्रंथ में मेरे बनारस कीर्तनों में से कतिपय कीर्तन स्कन्न किए गये हैं। इसमें तीन भाँति के कीर्तन हैं- स्कन्न तो

लीला सम्बन्धी, दूसरे दैन्य भाव के और तीसरे परम प्रेममय अनुभव हैं। प्रेममाङ्गिका सँ० १६२२ में प्रकाशित हुई। इस रचना में, उनके इतने सुंदर कीर्तनों का संग्रह मिलता है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि उन्होंने पर्याप्त पद रचना की थी। ये पद आत्मामिव्यक्ति प्रधान हैं। भारतेन्दु जी का साहित्यिक जीवन प्रेममाङ्गिका से नहीं अपितु 'विद्या सुंदर' के अनुवाद से प्रारंभ होता है। इस नाटक में १२ कवितारें और आठ पद हैं।

२- प्रेम सरोवर (सँ० १६३०)

'प्रेम सरोवर' प्रेम के निरूपण में सफेष्ट एवं सशक्त काव्य है। यह ४१ दोहों का अति लघु ग्रंथ है। देखने से विदित होता है कि रसखान के काव्य ग्रंथ 'प्रेम-वाटिका' के आधार पर इस ग्रंथ की रचना हुई है।

३- प्रेमाश्रुवर्णना (सँ० १६३०)

इस ग्रंथ में ४६ पद हैं जिनका विषय प्रेम के आँसुओं की वर्णा है। प्रत्येक पद वर्णा की विभिन्न भाविकियों को प्रस्तुत करने में सख्त तन्मय सा दिखाई देता है।

४- प्रेमाधुरी (सँ० १६३२)

इस काव्य में २ दोहे ४६ कवित्त और ८५ सवैया हैं। भारतेन्दु के कवित्त सवैयाँका यह एक मात्र संग्रह है। प्रेम और विरह की अभिव्यंजना का मार्मिक काव्य होने का श्रेय इसी ग्रंथ को दिया जा सकता है। रीति मुक्त कवियों की रचनाधर्मिता से जुड़ने वाला यह परम रमणीय काव्य है।

५- प्रेमप्रलाप (सं० १६३४)

इस संग्रह में ७६ कवितारें हैं। विभिन्न विषयों पर प्रेमप्रलापपरक रचनाएँ सहज आकर्षणमयी बन पड़ी हैं, भक्तों के सम्बन्ध में प्रेम चर्चारे एवं भगवल्लीलापरक प्रेम चर्चारे अति माधुरी समन्वित हैं। प्रेमालाप में श्रीविल्लभ और श्री विट्ठल के प्रति भी स्रद्धामिव्यक्तित्व हुई है।

६- प्रेमतरंग (१६३४ सं०)

प्रेमतरंग १४८ पदों का संग्रह है। इसकी रचनाएँ प्रेमास्वादमयी हैं। अधिकांश रचनाओं में कवि का आत्मामिव्यंजन हुआ है। इनका आधार राधा और कृष्ण का प्रेम न होकर नितान्त लौकिक प्रेम है। साधारण जनता में गाये जाने वाले अनेक प्रकार के लोकगीतों को यहाँ साहित्यिक रूप दिया गया है। लोक गीतों जैसा सारल्य एवं सहजता, इनमें सर्वत्र व्याप्त है। इनके अतिरिक्त भक्ति भाव परक दैन्य एवं नीला के गीत स्फुट रूप में ही विद्यमान हैं।

७- सतसई सिंगार (१६३५ सं०)

यह ग्रंथ बिहारी सतसई के दोहों पर रचित है। दोहों के साथ भारतेन्दु जी ने कूँडलिया बनाकर एक नवीन काव्यप्रयोग किया है। किसी किसी दोहे के साथ कई कई कूँडलियाँ निर्मित की हैं।

८- होली (१६३६ सं०)

इस लघु काव्य ग्रंथ में ७६ कूँद हैं। यह काव्य होलिकोत्सव के मदिर उल्लास से परिपूर्ण है। होली की सारी मस्ती इसमें उद्देश्य दी गई है। शब्दों का स्वच्छन्द एवं स्वतन्त्र प्रयोग जिस मुक्तता के साथ

क्रिया गया है उसे देखकर ऐसा लगता है कि मानों कवि अपने मन की दबी क्षिपी भावनाओं को निकालने के लिए आतुर हो ।

६- मधु मुकुल (१९३७ सँ०)

होली काव्य की भाँति ही 'मधु मुकुल' की बासन्ती सुगंध रसिकों के उर अलियों को अपनी ओर अनायास खींच लेती है। इस रचना का मूल स्रोत प्रेम है। यह रचना होलियों का संग्रह है। इसमें ८१ होलियाँ संगृहीत हैं। कुछ होलियाँ राष्ट्रीय भावना से ओत प्रोत हैं।

१०- वर्षा विनोद (१९३७ सँ०)

'वर्षा विनोद' में १३० पद संगृहीत हैं। इसमें अधिकांश मलार और कजलियाँ हैं। जिनमें ६६ कूँद तो 'होली' और 'मधु मुकुल' जैसे ही हैं। शेष ६१ कूँद बधाहंपरक हैं। चंद्रावली, बलराम, कृष्ण और राधा के जन्म पर बधाई के, ये पद भक्तों को रस की पूर्ण प्रतीति कराने वाले हैं।

११- विनय प्रेम चचासा (१९३८ सँ०)

यह ग्रंथ विनयपरक पदावलियों से युक्त है। ब्रज खड़ी- दोनों भाषाओं का मिश्रण और सत भक्त कवियों जैसा दैन्य एवं चरम भगवदानुरक्ति इस रचना में सर्वत्र देखी जा सकती है। इस संग्रह में ५० पद संकलित हैं।

१२- कृष्ण चरित (सँ० १९४०)

इस कृति में कृष्ण चरित सम्बन्धी कथानक

चित्रित किया गया है। यह प्रबन्धात्मक न होकर भावात्मक है। पदों में घटनाओं का तार्ताम्य कहीं नहीं है। यह स्फुट प्रसंगों का संग्रह है जिसमें पद कवित्त और सर्वथे मिलाकर ५१ कवितारें संग्रहीत हैं।

१३- राग संग्रह (१६४१ सं०)

आकार प्रकार की दृष्टि से भारतेन्दु जी का यह सर्वाधिक बड़ा काव्य ग्रंथ है। इसमें पदोंकी संख्या १४१ है। इसमें राग-रागिनीबद्ध अनेक पद हैं। विशेष उत्सवों पर गाये जाने योग्य अनेक पद इस कृति में समाहित हैं। वल्मीक पद हैं। वल्मीक कृष्ण मंदिरों में गाने के उद्देश्य से इन पदों की रचना की गई है।

(ब) माहात्म्य विषयक काव्य

१- भक्त सर्वस्व

इसका दूसरा नाम श्री चरण चिन्ह वर्णन है। इसके अन्तर्गत श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण के चरण चिह्नों का विशद वर्णन किया गया है। श्री चरण भक्तों के लिए परमार्थ एवं सर्वस्व है। अतः यह ग्रंथ भक्त सर्वस्व नाम से प्रसिद्ध है।

२- उत्तरार्द्ध भक्तमाल

श्री नामा जी द्वारा विरचित भक्तमाल के बाद जो भक्त रहगर या और उत्पन्न हुए उनका वर्णन इस कृति में प्रस्तुत करके भारतेन्दु जी ने " उत्तरार्द्ध " भक्तमाल " की रचना की। नामा जी कृत भक्तमाल का यह पूरक ग्रंथ है।

३- फूलोंकागुच्छा

यह ग्रंथ लावनियों का अद्भुत संग्रह है। इसकी सभी रचनाएँ निर्गुण रहस्यवादी परंपरा का अनुसरण करती हैं। बनारस के लावनी बाबाओं के रूपात्कर्षों को इसमें देखा जा सकता है।

४- जैन कुतूहल

भारतेन्दु बाबू एक बार किसी जैन मंदिर में गये थे। वहाँ कुछ धर्मान्ध लोगों ने इन पर नास्तिकता का लांकुन लगाया तो इन्होंने 'जैन कुतूहल' नामक ग्रंथ लिखकर अपनी उदार धर्म भावना का परिचय दिया। इस ग्रंथ के मुख पृष्ठ पर संस्कृत का यह श्लोक 'अहंनित्यपि जैन शासनरताः' उद्धृत है। इसमें 'अहंत्' भी भी परमात्मा के अनन्त नामों में से एक नाम माना गया है। इसके अन्दर ३६ पद संग्रहीत हैं।^१

५- वैशाख माहात्म्य

इस ग्रंथ को भारतेन्दु बाबू दोहा नामक कुन्द में लिखा है। यह उनकी प्रारंभिक कृति है। भारतेन्दु की निम्नांकित प्रसिद्ध काव्य पैवित्याँ इसी ग्रंथ का मंगलाचरणा हैं :

‘मरित नेह नव नीर सौ बरसत सुरस अथौर ।

जयति अलौकिक धन कौऊ नखि नाचत मन मोर ॥

इसके अतिरिक्त इस ग्रंथ में ६३ दोहे हैं। यह ग्रंथ स्नान, व्रत, नियम उपासना और अन्यान्य विधानादि सम्मत है।

१- भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि- डा० किशोरी चान गुप्त पृ० ११

६- कार्तिक स्नान

इस काव्य कृति में २५ मजन संगृहीत हैं। भारतेन्दु जी अस्वस्थ हो जाने के कारण एक बार कार्तिक स्नान करने से वंचित रह गये थे किन्तु वे नित्य एक पद की रचना करके कृष्ण भक्ति में मानसिक स्नान किया करते थे। २५ मजनों को देखकर ऐसा अनुमान किया जाता है कि वे मास में केवल २५ दिन ही स्नान करने सेवंचित रहे होंगे^१। कार्तिक स्नान ग्रंथ भक्ति भाव समन्वित ग्रंथ है। इन मजनों में कृष्ण भक्ति व्याप्त है। सामान्य कार्तिक स्नान जैसी कोई प्रतीति इनसे नहीं होती।

७- गीत गोविंदानंद

“गीतगोविंदानंद” काव्य जयदेव कृत “गीत गोविंद” का पद्यानुवाद है। प्रारंभ में सात दोहे और अन्त में तीन दोहे भारतेन्दु जी द्वारा विरचित हैं। आठ से लेकर सैंतीस कुन्द तक श्लोक अनुदित हैं। यह स्तवन सर्व महिमा प्रधान रचना है।

भारतेन्दु के उपर्युक्त काव्य ग्रंथों के अतिरिक्त कतिपय स्फुट काव्य भी उपलब्ध होते हैं, जिन्हें दो वर्गों में रख सकते हैं :

(अ) देवस्तुतिपरक काव्य

- १- श्री पंचमी
 - २- वैष्णुगीत
 - ३- उरहना
 - ४- तन्मयलीला
 - ५- प्रबोधिनी
 - ६- दान मान लीला
-

- ७- प्रातः स्मरण मंगल पाठ
- ८- दैन्य प्रलाप
- ९- राम लीला
- १०- भक्त सर्वस्व
- ११- वैष्णव सर्वस्व
- १२- वल्लभीय सर्वस्व
- १३- युगल सर्वस्व
- १४- नारदसूत्र (अनुवाद)
- १५- भक्ति सूत्र वैख्यन्ती (अनुवाद)
- १६- तदीय सर्वस्व (अनुवाद)
- १७- चतुश्लोक्य (आचार्य कृत अनुवाद)
- १८- स्वरूप चिन्तन
- १९- सर्वोत्तम स्तौत्र
- २०- मीष्मस्तवराज
- २१- श्रीनाथाष्टक
- २२- निवेदन पैक्क
- २३- अपवर्ग पैक्क
- २४- पुरुषोत्तम पैक्क
- २५- प्रबोधिनी
- २६- श्रीसीतावल्लभ स्तौत्र (संस्कृत) आदि ।

भारतेन्दु के काव्य के विविध मुखी आयाम हैं। एक ओर उसमें जागरण और आह्वान का स्वर है तो दूसरी ओर उसमें संस्कृति और धर्म के प्रति समर्पण का भाव है। शासकों की अज्ञाहियों को निरूपित करने वाली प्रशस्तिपूर्ण उनकी रचनाएँ भी साहित्यिक दृष्टि से

महत्वपूर्ण है। भारतेन्दु के काव्य की महत्ता इसमें है कि उनका काव्य जन-तांत्रिक शक्ति से युक्त है। उनके काव्य की स्वस्थ एवं मस्त परंपरा इसी में है कि उन्होंने भाव, भाषा, छन्द, अङ्कार, विषय और व्यंजना सबको ग्रहण किया है। इनमें से वे किसी चीज़ को भी ग्राह्य या अग्राह्य स्पर्श या अस्पर्श को कोटि में न रखकर, इनके प्रति एक समन्वयात्मक दृष्टि रखते हैं।

भारतेन्दु जी ने अपनी बाल्यावस्था से ही कविता करना प्रारंभ कर दिया था। उनका सर्वप्रथम निर्मित पद प्रस्तुत है :

हम तो मोल लिये या घर के ।
दास दास श्री वल्लभ कुल के चाकर राधावर के ॥
माता श्रीराधिका पिता हरि बँधु दास गुनकर के ।
हरीचंद तुमरे ही कहावत , नहि विधि के नहि हरि के ॥ १

उनका सर्वप्रथम निर्मित सवैया यह है-

यह सावन सौक नसावन है, मन भावन यामैं न लाजै मरो ।
जमुना पै चलीं सु सबै मिलि कै, अरु गाह बजावै सौक हरो ।
इमि भारवत है हरिचंद पिया, अहो लाहिली देर न यामैं करो ।
बलि भूलौ भुलाओ, भुको उफको, रहि पासै पतिव्रत तासै धरो ॥ २

सर्वप्रथम निर्मित कीर्तन और सवैया से स्पष्ट होता है कि भारतेन्दु जी पर वल्लभ सम्प्रदाय का समग्र प्रभाव पड़ता था किन्तु वे ब्रज वसुंधरा और ब्रज की संस्कृति के साथ श्रीकृष्ण लीला से अत्यधिक प्रभावित हुए थे ।

भारतेन्दु जी के काव्य की मूल अन्तर्धारा है-

१- बाबू हरिश्चन्द्र का जीवन चरित - श्री राधाकृष्णदास पृ० ६१

२-

,,

,,

६१-६२

प्रेम । इसी प्रेम के कारण वे मानवतावादी करुणा से अभिभूत हो समाज सुधार चाहते हैं। यही प्रेम विविध रूपों में उनके काव्य ग्रंथों में सर्वाधिक रूप से प्रस्फुटित हुआ है। प्रेम फुलवारी, प्रेम तरंग, प्रेमाश्रुवर्णन, प्रेम माधुरी, प्रेम फलाप, फूलों का गुच्छा आदि ग्रंथ प्रेम काव्य के अनुपम उदाहरण हैं। भारतेन्दु के काव्य में वर्णित कृष्ण और गोपिकारों रीतिकालीन कृष्ण और गोपियों से अधिक प्रगतिशील हैं- क्योंकि एक नये युग के नये दृष्टिकोण से भारतेन्दु ने उनका अंकन किया है। ये गोपियाँ देव बिहारी की- " पीत पटवारी वाही मूरति पै वारी हों " कहने वाली या " कूँज बिहारी साँ बिहरि गिरिधारी उरधारि " वाला शब्द प्रपञ्च बिकाने वाली गोपियाँ नहीं हैं। अपितु एक कदम आगे बढ़कर " सैमारहु अपने को गिरिधारी " कह कर चुनौती देने वाली गोपियाँ हैं जो कहती हैं- " हरीचंद निधरु बिहराँगी अधर सुधारस भीनी ।^१ "

श्रीमद्भगवत का भारतेन्दु के काव्य पर सर्वत्र प्रभाव देखा जा सकता है। वे भागवत की मधुरिमा और अनौकिक सर्व दिव्य रसवत्ता को ब्रजभाषा के माध्यम से टिकार हर तथा गीत गोविन्द की भूमती हुई आनंद हिलोर को स्थिर रखते हर अपार प्रेम पारावार में आपादमस्तक निमग्न हो गये हैं। ब्रज भाषा की प्रचलित कवित्त सवैया शैली लावनी कजली, होली ठुमरी शैली और जनजीवन से प्राप्त गजल कव्वाली बूरनवालों के लटके आदि का प्रभाव भारतेन्दु के काव्य पर परिलक्षित होता है। भारतेन्दु जी ने बँगला गुजराती और संस्कृत भाषा में भी रचनाएँ की थीं। मधुर व्यंग के साथ कथन की अमिनव भाव मँगिमा उनके काव्य में सर्वोपरि रूप में विद्यमान है।

जैसा कि सर्वविदित है कि भारतेन्दु की बुद्धि का विकास अत्यन्त अल्पवय में ही हो चुका था । सबसे अधिक विस्मय की बात तो यह है कि १२ वर्ष की अल्पवय में ही पंडित तारारण्य तर्करत्न जो काशिराज महाराज ईश्वरी नारायण सिंह बहादुर के समान पंडित थे , भारतेन्दु जी की कविता शक्ति से मोहित हो गये थे । भारतेन्दु जी संस्कृत की कविता के साथ समस्यापूर्ति तो बात ही बात में कर दिया करते थे । विद्वान् ऐसे थे कि स्वामी दयानंद सरस्वती सरीखे विद्वान् महात्मा से इनका शास्त्रार्थ हुआ था । पंडित तर्करत्न जी ने सन् १६१६ में, महाराजा काशिराज की आज्ञा से 'शृंगार रत्नाकर' नामक एक काव्यग्रंथ लिखकर प्रकाशित कराया था । इस समय ये महानुभाव भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की युक्ति युक्त उक्तियाँ से पूर्णतः प्रभावित थे । 'नव रस' के साथ चार नवीन रसों की कल्पना भारतेन्दु जी ने की थी- वात्सल्य, सख्य, भक्ति और आनन्द । भारतेन्दु जी का कथन था कि इन चारों भावों का शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर , भयानक, वीमत्स, अद्भुत और शान्त- इन नव रसों के किसी भी भाव से सम्बन्ध नहीं है। अतः इन चारों को पृथक् रस मानना चाहिए । इनके अलावा तर्करत्न से सुगंध होकर ५० तर्करत्न जी ने अपने 'शृंगार रत्नाकर' ग्रंथ में लिखा है- 'हरिश्चन्द्रास्तु वात्सल्य सख्य भक्त्या नन्दोदाख्यमधिकं रसं मन्यते । अर्थात् हरिश्चन्द्र तो वात्सल्य सख्य भक्ति और आनंद नामक रसों को नव रस से अधिक रस मानते हैं।'

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि भारतेन्दु जी रसशास्त्रीय विश्लेषण को सूक्ष्म दृष्टि से प्रस्तुत करने में समर्थ थे । इस समय के काव्यशास्त्रीय पंडितों में इनकी ख्याति का होना इनके रसशास्त्रीय ज्ञान का प्रमाण है। भारतेन्दु जी अपने पिता के अक्षर ग्रंथ 'रस रत्नाकर'

को पूर्ण करना चाहते थे। भारतेन्दु जी ने कतिपय रसों का संचिप्त विश्लेषण 'नाटक' नामक ग्रंथ में किया है।

भारतेन्दु जी समस्यापूर्ति में अग्रगण्य थे। महाराणा उदयपुर के दरबार में बैठकर समस्यापूर्ति करना कोई सहज काम नहीं था। सुप्रसिद्ध कवि मट्ठलाल जी महाराज इनकी समस्यापूर्ति पर परम प्रसन्न थे। वृन्दावनस्थ श्री शाह कुन्दनलाल जी की समस्या पर इनकी पूर्ति द्रष्टव्य है। काशीराज के पौत्र के यज्ञोपवीत के उपलक्ष्य में 'यज्ञोपवीत परम पवित्र' पर कतिपय श्लोक उस महोत्सव की धूमधाम में बिना आयास के भारतेन्दु जी ने बनाए थे। आशुकिता द्वारा समस्यापूर्ति ही नहीं किन्तु वे अपनी क्षमता में आशु ग्रंथकर्ता भी थे। 'अंधिर नगरी' नामक कति एक दिन में लिखी गई थी। भाषाशास्त्रिक डाक्टर ग्रियर्सन ने इनके रस गुण पर मोहित होकर उन्हें 'द आनली क्रिटिक आव् नार्दन इण्डिया' कहा है।

भारतेन्दु के काव्य साहित्य को देखने पर पता चलता है कि आपने उर्दू भाषा में अनेक स्फुट कवितारें लिखी हैं। गुजराती भाषा में भी रचित उनकी कवितारें दर्शनीय हैं। पंजाबी भाषा महाराष्ट्रीय भाषा और बंगाली भाषाओं में रचित भारतेन्दु जी की कवितारें अत्यन्त मनोहारी हैं।

२- भारतेन्दु जी के नाटक

संवत् १९४० में रुग्णावस्था में भारतेन्दु ने एक नाटक 'नामक' ग्रंथ की रचना शुरू की थी जो अपूर्ण रह गया। इसमें दश रूपक - भारतीय नाट्य शास्त्र, विक्सन्स हिन्दू थियेटर्स, हिस्टरी, दि ड्रैमैटिक थियेटर्स आदि ग्रंथों से सहायता लेकर वे नाटकों के विषय में

१- भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जीवन चरित- श्रीराधाकृष्णदास पृ० ७८

२-

,,

,,

पृ० ८३

अपने मन्तव्य ग्रथित करना चाहते थे। उनके पिता द्वारा रचित "नहुष" नाटक से भारतेन्दु को एक परिष्कृत दृष्टि एवं विपुल साहित्य प्रणयन का दाय मिलता था। इसलिए अपने नाटकों के कथानक रचने में और पात्रों के निर्माण में, भारतेन्दु सदैव बिना फिफक और सँकोच के सौदेश्यता को प्राधान्य देते थे। उनके अनुसार सभ्यता के अनुरूप नाटक संरचना में उद्देश्य फल उत्तिम हो, यह बहुत आवश्यक है। नाटक का परिणाम शिक्षाप्रद हो, जिससे श्रोता-दर्शक पाठक रूप सहृदय अपनी सभी दशाओं में अभ्यान्वित हो सके। एक अत्याधुनिक पश्चिमी नाट्य समालोचक ग्रेनविल बास्कर-ए-नैशनल थियेटर^१ में लिखता है -

"ही मस्ट स्पीड फार दी ड्रामा रेज समर्थिंग मोअर देन कूजुअल स्टैटेनमेंट, एज सन आर्ट वदी टू रैंक विद अदर फाइन आर्ट्स एण्ड एज हैविंग इट्स स्पिरिचुअल फंक्शन टू।" (अर्थात् आधुनिक नाटककार को नाटक की कला को केवल मनोरंजन प्रधान मानकर उससे अधिक ललित कलाओं की समकक्षा एक कला के रूप में उसके आध्यात्मिक महत्त्व सहित मानना चाहिए।)

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का प्रत्येक नाटक इस दृष्टि से अर्थ पूर्ण है। उनके नाटकों का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :

"हरिश्चन्द्र मैगजीन के प्रकाशन के साथ ही सर्वप्रथम नाटक लेखन के प्रति आफ़ी रुचि हुई। सन् १८२५ में "प्रास" नामक नाटक लिखा। लेकिन अधूरा रह गया। इसी वर्ष उन्होंने रत्नावली

नाटिका का अनुवाद प्रारंभ किया था । दुर्भाग्य से यह भी अधूरा रह गया ।
उनके नाटकों का क्रम उनके द्वारा लिखित 'नाटक' नामक निबन्ध में अंकित
किया गया है। इस सूची में दिये गये नाटक अधोलिखित हैं^१ :

- १- मुद्राराक्षस
- २- सत्य हरिश्चन्द्र
- ३- विद्यासुन्दर
- ४- अन्धेर नगरी
- ५- विष्णुस्य विष्णुमौ षधम्
- ६- सती प्रताप
- ७- चन्द्रावली
- ८- माधुरी
- ९- पाखंड विडंबन
- १०- नवमल्लिका
- ११- दुर्लभ बंधु
- १२- प्रेमयोगिनी
- १३- जैसा काम वैसा परिणाम
- १४- कर्पूरमंजरी
- १५- नील देवी
- १६- भारत दुर्दशा
- १७- भारत जननी
- १८- धर्मजय विजय
- १९- वैदिकी हिसा

इस सूचना के अतिरिक्त बाबू राम दीन सिंह

१- भारतेन्दु ग्रंथावली (नाटक) शिव प्रसाद मिश्र रुद्र पृ० २७

ने पुष्प पारिजात , नवमल्लिका या गौर चंद्रोदय नाटकों की चर्चा हरिश्चंद्र कला के प्रथम भाग में की है और बाबू ब्रजरत्नदास ने ' प्रवास ' नाम के एक अन्य नाटक की सूचना देते हुए संकेत दिया है कि भारतेन्दु जी प्रारंभ में इस नाटक को लिखने में प्रवृत्त हुए थे । आज इस नाटक का कोई भी अंश प्राप्त नहीं होता । इस प्रकार भारतेन्दु के कुल २३ नाटकों की सूचना मिलती है। इनमें नवमल्लिका , पुष्प पारिजात गौर चन्द्रोदय और प्रवास की तो केवल चर्चा ही सुनाई पड़ती है। इनका कोई भी अंश उपलब्ध तक नहीं है। ' भारत जननी ' रूपक भारतेन्दु रचित नहीं है वे मात्र उसके परिष्कारक हैं। बंग भाषा में रचित भारत माता नामक नाटक का ' भारत जननी ' नाम से अनुवाद हुआ है। विद्यासुन्दर , धनंजय विजय , मुद्राराक्षस, कर्पूर मंजरी और दुर्लभ बंधु ' अनूदित हैं। अनूदित अन्य नाट्य कृतियों में रत्नावली और पाखंड विहम्बन अधूरी कृतियाँ हैं। ' वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति ' विष्णुस्य विष्णुमौणधम् ' , चंद्रावली, भारत दुर्दशा, नील देवी और अंधर नगरी मौलिक कृतियाँ हैं। प्रेम जोगिनी और सती प्रताप मौलिक अपूर्ण कृतियाँ हैं। ' सत्य हरिश्चन्द्र ' अनूदित कृति न होकर आचार्य चामेश्वर रचित ' चंड कौशिक ' की प्रेरणा पर लिखी गयी स्वतन्त्र नाट्य कृति है। भारतेन्दु के प्रहसनों में ' सबै जाति गोपाल की ' , बसंत पूजा , ' जाति विवेकिनी समा ' , ' सैमंडयोः संवाद , बंदर समा , पान्चवे (चूसा) फगम्बर श्री रामलीला , रणधीर प्रेममोहिनी की प्रस्तावना ' आदि प्रसुख हैं ।

भारतेन्दु के नाटकों का कार्यक्रम समझने के लिए उपर्युक्त नाटकों को इस प्रकार रखा जा सकता है :

१- विद्यासुंदर स० १६२५

१- भारतेन्दु ग्रंथावली (नाटक) शिवप्रसाद मिश्र रुद्र पृ० २७

२- ,, ,, ,, पृ० २८

- २- रत्नावली सँ० १६२५
- ३- पासैंड विडैंबन सँ० १६२६
- ४- वैदिक हिंसा हिंसा न भवति सँ० १६३०
- ५- धर्मजय विजय सँ० १६३१
- ६- मुद्राराक्षस सँ० १६३१
- ७- बसंत पूजा सँ० १६३१
- ८- विषास्य विषामौषधम् सँ० १६३२
- ९- प्रेमजोगिनी सँ० १६३२
- १०- सत्य हरिश्चन्द्र सँ० १६३३
- ११- चन्द्रावली सँ० १६३३
- १२- भारत दुर्दशा सँ० १६३३
- १३- कर्पूरमंजरी सँ० १६३३
- १४- ज्ञातिविवेकिनी समा १६३३
- १५- भारत जननी सँ० १६३४
- १६- सैद्धमंत्योः संवादः सँ० १६३५
- १७- रणधीर प्रेम मोहिनी सँ० १६३६
- १८- श्रीरामलीला सँ० १६३६
- १९- बंदर समा सँ० १६३६
- २०- दुर्लभ बंधु सँ० १६३७
- २१- नीलदेवी सँ० १६३७
- २२- अधिराज्य सँ० १६३८
- २३- नाटक अथवा दृश्य काव्य सँ० १६४०
- २४- सती प्रताप सँ० १६४१
- २५- सबै जात गोपाल की सँ० १६४१
- २६- पाँचवे ब्रूसा पैगम्बर सँ० १६४१

इस क्रम में पाँचवा चूसा फेगम्बर , बंदर समा, सबै जाति गोपाल की , बसंत पूजा आदि प्रहसन हैं। " राम लीला " जैसे आदि ग्रंथ आख्यानपरक नाटक हैं। भारतेन्दु ने काव्य और नाटकों के अतिरिक्त आख्यायिका, उपन्यास, स्तौत्र, अनुवाद, परिहास, धर्मतिहास, राजनवित और स्फुट विषयों को लेकर अपनी सतत लेखनी चलाई है।

३- भारतेन्दु के आख्यायिका और उपन्यास

आख्यायिका और उपन्यास लेखन के क्षेत्र में भारतेन्दु ने अपनी कलम से नवीन द्वारों का उद्घाटन किया । भारतेन्दु जी गद्य और पद्य दोनों शैलियों पर अपना अधिकार रखते थे :

- १- हमीर हठ
- २- राजसिंह
- ३- कुछ आप बीती कुछ जग बीती
- ४- सुलोचना
- ५- मदालसा
- ६- शीलवती
- ७- सावित्री चरित्र
- ८- राधारानी
- ९- शरद ऋतु की कहानी ।

४- भारतेन्दु का स्तौत्र साहित्य

भारतेन्दु जी धर्म धुरणि व्यक्ति थे वे परम आस्तिक और श्रद्धावान व्यक्ति थे । उनके द्वारा धार्मिक निष्ठा की स्थापना

हुई थी। भगवान् गुरु सैं महात्माओं के प्रति वे सदैव विनत भाव से समर्पित रहते थे। उनके द्वारा विरचित स्तौत्र साहित्य इस बात का पूरा प्रमाण है। स्तौत्र साहित्य संस्कृत शैली में न लिखकर उन्होंने हिन्दी भाषा में लिखा। हालाँकि वे चाहते तो संस्कृत में भी लिख सकते थे। संस्कृत और हिन्दी में उनका लेखन समकक्षीय था। श्री सीता वल्लभ स्तौत्र उनके द्वारा रचित संस्कृत पद्य का काव्य है। उन्होंने हिन्दी में जो स्तौत्र लिखे उनका क्रमिक विवरण इस प्रकार प्रस्तुत है :

- १- भीष्मस्तवराज
- २- सर्वोत्तम स्तौत्र
- ३- प्रातःस्मरण मंगलपाठ
- ४- स्वरूपचिन्तन
- ५- प्रबोधिनी
- ६- श्रीनाथाष्टक

भारतेन्दु जीउर्दू और फार्सी में भी काफी ज्ञान रखते थे। उन्होंने 'कुरान शरीफ' का अनुवाद किया था। वे किसी भी कीमत पर हो गुणग्रहण करना चाहते थे। विद्याग्रहण करना उनका स्वभाविक व्यसन था। संस्कृत स्तौत्र साहित्य का उन्होंने अनुवाद भी किया था। उनके इस अनूदित साहित्य का क्रम निम्नांकित है :

- १- तारदमवित सूत्र
- २- तदीय सर्वस्व
- ३- अष्टपदी का भाषार्थ
- ४- श्रुतिरहस्य
- ५- कुरान शरीफ
- ६- श्री वल्लभाचार्य कृत चतुश्श्लोकी
- ७- प्रेमसूत्र

५- भारतेन्दु जी का हासपरिहास पूर्ण साहित्य

भारतेन्दु जी ने अनेक रचनाएँ हास और व्यंग्य प्रधान की हैं। इन सभी रचनाओं में हास्य और व्यंग्य का सुन्दर समन्वय मिलता है। उन्होंने समाज की कुरीतियों पर व्यंग्य बाण चलाए हैं। उनका उद्देश्य आडम्बर पाखण्ड सर्व धर्म के नाम पर व्याप्त सामाजिक भ्रष्टाचार को उद्घाटित करना ही नहीं था अपितु वे कर्मकाण्डी ब्राह्मणों की लोभ वृत्ति टके पर जाति बेचने की भावना का उन्मूलन करना चाहते थे। उनके व्यंग्य में तीखाफन समाहित करने की क्षमता के होते हुए भी वह किसी प्रकार का मनोमात्तन्य अथवा विद्वेष को नहीं जगाता। इसका कारण उनकी विनोदपूर्ण शैली है। हास परिहास पर एक कृतियाँ क्रमिक रूप में प्रस्तुत हैं :

- १- स्वर्ग में विचार समा का अधिवेशन
- २- वेश्या स्तोत्र
- ३- अंग्रेज स्तोत्र
- ४- मदिरास्तवराज
- ५- कैंकड़ स्तोत्रम्
- ६- ककरी विज्ञाप
- ७- स्त्री दंड संग्रह
- ८- परिहासिनी
- ९- फूल बुझावन
- १०- मुशाइयरा
- ११- स्त्री सेवा पद्धति
- १२- रुद्रा मावार्थ
- १३- उर्दू का स्यापा
- १४- मेला फमेला आदि ।

६- भारतेन्दु का राज भक्तिपरक साहित्य

भारतेन्दु बाबू पैदाइशी से खानदानी राज भक्त थे जैसा कि प्रत्येक रईस होता है। अपनी राजभक्ति प्रदर्शित करने का कोई अवसर उन्होंने नहीं छोड़ा। राज परिवार के सुख दुःख, हर्ष-विषाद सभी अवसरों पर उन्होंने हर्ष-विषाद प्रकट किया। एक प्रकार से जो कार्य हैंगलैण्ड के राज कवि का है, वही कार्य राजवंश के लिए भारत की ओर से भारतेन्दु ने किया। उनके राजभक्ति परक साहित्य का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :

- १- स्वर्गवासी श्री अन्वर्त वर्णन अन्तर्नीयिका
- २- भारत वीरत्व
- ३- भारत भिक्ता
- ४- मुँह दसिावनी
- ५- मानसोपायन (संग्रह)
- ६- मनोमुकुलमाला
- ७- लुहसा विवाह वर्णन
- ८- राजकुमार विवाह वर्णन
- ९- विजयिनी विजय वैजयन्ती
- १०- रियनाष्टक
- ११- विजयवल्लरी
- १२- जातीय संगीत (नेशनल स्न्थम का अनुवाद)
- १३- सुमनोजंली (संग्रह)
- १४- राजकुमार (सुस्वागत पत्र)

७- भारतेन्दु जी के धर्म और इतिहास परग्रंथ

भारतेन्दु जी का ऐतिहासिक और धार्मिक महत्त्व इससंदर्भ में है उन्होंने युगीन समाज में अपने धर्म और इतिहास के प्रति नागरिकों और सामाजिकों में अनुरक्ति उत्पन्न की थी। भारतवर्ष की वैष्णवता की जीवित रस्मों के लिए उन्होंने नामादास के भक्तमान के आधार पर "उत्तरार्द्ध भक्त मान" की रचना की। वैष्णव संस्कृति की रक्षा में वे अल्प वय में ही इतना कार्य कर गये कि तत्कालीन समाज के लिए ही नहीं अपितु युगी तक उन्हें महापुरुष कहा जायेगा। उनके धर्म ग्रंथ हैं :

- १- भक्त सर्वस्व
- २- वैष्णव सर्वस्व
- ३- वल्लभीय सर्वस्व
- ४- युगल सर्वस्व
- ५- पुराणोष्मणिका
- ६- उत्तरार्द्ध भक्तमान
- ७- भारतवर्ष और वैष्णवता

ऐतिहासिक ग्रंथों में विशुद्ध इतिहास पर लिखे गये उनके प्रेरणापरक महापुरुषों के आलेख, अपनी जाति और जीवन का विकास पर उल्लेख, प्राचीन संस्कृत आदि ब्रजभाषा के कवियों का जीवन चरित आदि कार्य उनके इतिहास पर लेखन की सीमा में रहे जा सकते हैं। उदाहरण स्वरूप-

- १- कश्मीर कुसुम
- २- बादशाह दर्पण
- ३- महाराष्ट्र देश का इतिहास

- ४- उदय पुरोदय
- ५- बूंदी का राजवंश
- ६- अग्रवालों की उत्पत्ति
- ७- खत्रियों की उत्पत्ति
- ८- पुरावृत्त संग्रह
- ९- पैव पवित्रात्मा
- १०- रामायण का समय
- ११- श्री रामानुज स्वामी का जीवन चरित
- १२- जयदेव जी का जीवन चरित
- १३- सूरदास जी का जीवन चरित
- १४- कालिदास का जीवन चरित
- १५- विक्रम और विन्हण
- १६- काष्ठजिह्वा स्वामी का जीवन चरित्र
- १७- पैडित राजाराम शास्त्री का जीवन चरित्र
- १८- श्री शंकराचार्य का जीवन चरित्र
- १९- श्रीविष्णुआचार्य जी का जीवन चरित्र
- २०- नेपोलियन का जीवन चरित
- २१- जज द्वाकानाथ मिश्र का जीवन चरित्र
- २२- लार्ड म्यो का जीवन चरित्र
- २३- लार्ड लारेन्स का जीवन चरित्र
- २४- जार का संचिप्त जीवन चरित्र
- २५- कालचक्र
- २६- सीतावट निर्णय
- २७- दिल्ली दरबार दर्पण आदि^१

१- भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जीवन चरित्र - राधाकृष्णदास पृ० १००-१०१

देश जाति ~~सक~~ के अमान से प्रेरित होकर उन्होंने समाज में नवजागरण के लिए अपनी चेखनी चलाई थी। वे भारत की सांस्कृतिक एकता के पक्षधर थे। वे आर्थिक स्वावलम्बन पर विशेष ध्यान देते थे। नैतिक पहलू उनके दृष्टिकोण का प्रथम नक्ष्य था। भारतेन्दु ने साहित्य और भाषा का अलग-अलग करके देखा था। इसीलिए हिन्दी के हिमायती होते हुए भी उन्होंने उर्दू, बंगला, पंजाबी, गुजराती, संस्कृत, अरबी, फारसी सभी में रचनाएँ की। उनकी दृष्टि में -

“अंग्रेजी और फारसी अरबी संस्कृत डेर।

खुले खजाने तिन्हहिं क्यों हूटत लावहु डेर ॥” १

भारतेन्दु ने ज्योतिष पर भी चेखनी चलाई थी :

- १- भूगोल सम्बन्धी बातें
- २- मंडरी
- ३- वर्णमालिका
- ४- मध्याह्न सारिणी

और मूल प्रश्न उनके ज्योतिष परक ग्रंथ हैं।

भारतेन्दु जी ने अपनी यात्राओं पर भी आलेखन किया है :

- १- मैवाड़ यात्रा
- २- जनकपुर यात्रा
- ३- सरयू पार की यात्रा
- ४- वैद्यनाथ की यात्रा

उनके द्वारा रचित यात्रा साहित्यकी महत्त्वपूर्ण कड़ियाँ हैं। उन्होंने अपने

द्वारा रचित व्याख्यान शैली के ग्रंथों की भी चर्चा की है।

१- खुशी

२- हिन्दी (दोहों में)

३- भारतवर्ष उन्नति कैसे हो सकती है

इत्यादि ।

भारतेन्दु ने अनेक पत्र पत्रिकाओं के संपादन में अपनी प्रतिभा को लगाया । लेकिन आर्थिक कठिनाइयों के कारण ये पत्रिकाएँ उनके जीवन का-च में ही बन्द हो गईं । भारतेन्दु अनेक सम्पादन कार्यों के कर्ता के रूप में भी स्मरणीय हैं। उनके द्वारा संपादित और संग्रहीत साहित्य की एक लम्बी सूची है।

(८) भारतेन्दु का सम्पादित एवं संग्रहीत कार्य

भारतेन्दु का सम्पादन कार्य साहित्य के क्षेत्र में एक अद्भुत योगदान है। इसका विवरण क्रमिक रूप से प्रस्तुत है :

१- सुंदरी तिलक

२- राधा सुधा शतक

३- सुजान शतक

४- कवि हृदय सुधाकर

५- शृंगार सप्तशती

६- गुल्जारे पुर बहार

७- नई बहार

८- मुकरी (काशीराज कृत)

९- गदाधर भट्ट जी की वाणी

१०- कजरी महार संग्रह

- ११- चैती घाटो संग्रह
- १२- रस बरसात
- १३- मलारावली
- १४- भारतीमूषण
- १५- साहित्यलहरी आदि

६- भारतेन्दु का स्फुट निबन्ध लेख साहित्य

- १- हिन्दी भाषा
- २- संगीत सार
- ३- कृष्णपाक
- ४- प्रतिमा पूजन विचार
- ५- कुलवधू जनों को चेतावनी
- ६- सती चरित्र
- ७- बसन्त और कौकिल
- ८- लाख लाख बात की एक बात
- ९- बुद्धिमानों के अनुभूत सिद्धान्त
- १०- लेवी प्राण लेवी । आदि

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने पुष्कल साहित्य रच करके हिन्दी साहित्याकाश में भारतेन्दु की पदवी प्राप्त की थी। ऐसा कोई भी चोत्र भारतेन्दु की लेखनी से नहीं कूटा जिस पर उनकी इस सारस्वत हैसिनी के चरण न पड़े हों। भारतेन्दु की प्रतिमा के फौफन कीफन्क उनके व्यंग, दूर दृष्टि की पहचान, उनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक कृतित्व और धर्म बुद्धि की गहरी पैठ उनके साम्प्रदायिक एवं साहित्यिक साहित्य में देखी जा सकती है।

भारतेन्दु की भाषा कितनी चम्कित और मँजी हुई है यह प्रमाण उनके ग्रंथ 'होली' के समर्पण में द्रष्टव्य है :

“ प्यारे कहाँ चले ? छ्दर बाओ, तयौहार घर का करो । देखो, हमने होली के कुछ खेल इन पन्नों में लिखे हैं इनसे जी बहलाओ । तुम्हारा हरिश्चन्द्र । ” कैसा सरल प्रांजल भावोद्गार है। भारतेन्दु की साहित्य धर्मिता अंत काल तक अचूण्ण बनी रहेंगी । इसका मूल कारण यह है कि भारतेन्दु ने अपनी रचनाएँ जन-मन में पैठकर लिखी हैं।

भारतेन्दु का विशुद्ध पुष्टिमार्गीय साहित्य

जैसा कि गत अध्याय में स्पष्ट किया जा चुका है भारतेन्दु अपनी कुल परम्परा से पुष्टिमार्गीय थे और वह भी असाधारण रूप में । पुष्टि भक्ति सिद्धान्तों को उन्होंने न केवल अच्छा-बुरा अनुशासन के आवरण में रहकर उनका निर्वाह किया । अतः उनका मन मस्तिष्क स्वभावतः शुद्धाद्वैत दर्शन और पुष्टि भक्ति में रमण करता था । उनका कवि कर्म तो प्रायः समग्र रूप से पुष्टि भक्ति और सिद्धान्तों का अनुकूलन ही है। अन्यत्र भी यहकाया यत्र तत्र देखी जा सकती है। यहाँ उनके लगभग ४३ काव्य ग्रंथों , दो नाटकों और चार अनूदित ग्रंथों का पुष्टिमार्गीय प्रभाव की दृष्टि से उल्लेख किया जा रहा है जिससे प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की वस्तुपरक यथार्थता का औचित्य सिद्ध हो सकेगा ।

भारतेन्दु के पुष्टिमार्गीय काव्य ग्रंथ

इन काव्य ग्रंथों के अनुशीलन से पता चलता है

किं भारतेन्दु ने न केवल बाल्य विठ्ठल का ही अध्ययन किया था अपितु पार्वती आचार्य गोकुल नाथ जी, हरिराय जी, नवल्लभकर्ता पुरुषोत्तम जी से लेकर उनके दीक्षा गुरु शुद्धादित भार्गव के लेकर गो० गिरिधर जी भी सम्मिलित हैं। सभी को उन्होंने गहरी अवधानता के साथ अध्ययन किया था । परिणामतः वे पूर्ण मौलिक और रसिक होते हुए भी पुष्टि भक्ति और सिद्धान्तों की सीमाओं से अप्रुमात्र भी विचलित नहीं हुए हैं। यहाँ संक्षेप में इस तथ्य का संकेत मात्र दिया जा रहा है।

१- भक्त सर्वस्व

यह ग्रंथ दोहे रूप में रचित है। इसमें जिस प्रकार हरिराय जी ने अनेक भावनाओं से चरण चिह्नों का स्पष्टीकरण दिया है। उसी पद्धति पर भारतेन्दु ने भी इस ग्रंथ की रचना की है। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है :

“भजन श्री हरिराय किये तिनको आसय पाइ ।

चरण चिह्न हरिचंद कहत प्रेम सों गाइ ॥१६॥

(भा० ग्रं० २ पृ० ६)

भगवान के श्री चरणों के चिह्न जैसे स्वास्तिक, रथ, शंखादि ३२ चिह्नों का भाव अंकित किया गया है।

२- प्रेममालिका

प्रेम मालिका में लगभग वही भाव है जो हरिराय जी ने कृष्ण निरुज भावना में संयोग शृंगार दिया है ।

३- वैशाख माहात्म्य

भारतेन्दु ने केवल पौराणिक सिद्धान्त से ही

प्रभावित होकर वैशाख माहात्म्य नहीं लिखा अपितु पुष्टिमार्गीय नित्य सेवा पद्धति के आधार पर राग भोग शृंगार की भी उन्होंने चर्चा की है। वैशाख मास पुष्टिमार्गीय दृष्टि से इसलिये पुण्यमास है कि उसमें अजाय तृतीया और नृसिंह चतुर्दशी, गंगा सप्तमी जैसी तिथियाँ महत्त्वपूर्ण हैं।

४- कार्तिक स्नान

व्रत चर्या के नाम से कार्तिक स्नान के प्रसंग में कुमारिकाओं का बहुत महत्त्व है। दीपदान, और व्रत इत्यादि के साथ श्रीकृष्ण के महात्म्यका सँकेत इसमें मिलता है।

५- प्रेम सरोवर

प्रेम सरोवर में भी सँकेत वैशाख मास का ही दिया गया है जिसमें लोक वेदातीत प्रेम की महिमा वर्णित है। प्रेम की अनन्यता ही इसकी विषय वस्तु है।

६- प्रेमाश्रुवर्णन

सूर के मान के पदों पर आधारित कृति प्रेमाश्रु वर्णन सूर सागर का ही लघु मान प्रसंग कहा जा सकता है। राग मल्हार में लिखे गये पदों पर परमानंद दास का प्रभाव देखा जा सकता है।

७- प्रेम माधुरी

यह कृति अष्टशायी कवियों द्वारा रचित मानके पर आधारित है। यद्यपि इसे विद्वज्जन रीतिकान्त से प्रभावित मानेंगे परन्तु कतिपय कवित्तों और सवैयाँ में भागवती प्रसंग देकर भारतेन्दु ने इसे रीतिकान्त की पैकिन्ता से बचा लिया है।

८- प्रेम प्रलाप

प्रेम प्रलाप एक प्रकार से उपात्म्य काव्य है, इसमें भगवान की भक्त वत्सलता और निष्कृता और भक्त का उपात्म्य ग्रंथ का विषय है। 'गोवर्धन राई' का संकेत देकर भारतेन्दु ने पुष्टिमार्गीय भक्ति भाव प्रकट किया है। इसी ग्रंथ में वल्लभाचार्य जी एवं विठ्ठलनाथ जी की भी चर्चा है।

९- प्रेमतरंग

यह ग्रंथ पुष्टिमार्गीय भक्ति की विरह भावना से ओत प्रोत है। सूरसागर में एक स्थान पर कृष्ण का मान सूर ने चित्रित किया है। लगभग उसी प्रकार यह ग्रंथ है, जिसमें भारतेन्दु ने अनेक राग रागि-नियों पर कविता लिखी है।

१०- गीत गोविन्दानन्द

पुष्टिमार्ग में गीतगोविन्द के माहात्म्य को बताने के लिए इस ग्रंथ की रचना की है। हरिराय जी ने भी इस गीत गोविंद को मान्यता दी है।

११- होली

इस ग्रंथ में पुष्टिमार्गीय दृष्टि से भारतेन्दु ने होली के महत्त्व को उजागर किया है। संयोग प्रधान फल पर विरह भावना की उद्भावना करके होली का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

१२- राग संग्रह

इसमें प्रधान उत्सवों और जयन्तियों की बधा-

हयों की चर्चा है। ग्रंथ का नाम राग संग्रह इस कारण है कि उसमें अनेक रागों में पुष्टिमार्गीय कथ्य दिया हुआ है।

१३- वर्णा विनोद

वर्णा विनोद में उद्धव की चर्चा करें इसे पुः पुष्टिमार्गीय ग्रंथ कर दिया गया है जिसमें गीत गोविन्द की छाप है।

१४- विनय प्रेम पत्रासा

अष्टछापी कवियों की विनय पदावली का प्रभाव इस ग्रंथ पर पड़ा है।

१५- प्रेम फुलवारी

इसमें कवि का राधा भाव सुखरित हुआ है।

१६- कृष्ण चरित

कृष्ण चरित में कवि ने कृष्ण के प्रति अपनी अनन्यता का परिचय देकर पुष्टिमार्गीय भक्ति भावना का स्केत किया है।

१७- प्रातस्मरणा मंगल पाठ एवं प्रातः स्मरणा स्तौत्र

इसमें सम्प्रदाय के आचार्यों और गुरुजनों का स्मरण किया गया है। इसमें अष्टयाम सेवा और परमानंद दास के मंगल पद का स्केत तथा शुद्धाद्वैत सिद्धान्त से ब्रह्माद की स्पष्टचर्चा है।

१८- दैन्य प्रलाप

इसमें विनती के पद हैं जो अष्टछापी शैली पर रचित हैं।

१६- उरहना

विशुद्ध उपान्तम काव्य उरहना पुष्टिमागोय
भावना से प्रेरित होकर लिखा गया है।

२०- तन्मय लीला एवं दानलीला

भागवत के वेणु गीतानुसारी कृतियाँ हैं।

२१- बसंत होली

बसंत होली पर अष्टशप का प्रभाव स्पष्ट
है। प्रबोधिनी का माहत्म्य पुष्टिमार्ग में सर्वविदित है।

२२- स्वरूप चिन्तन

हरिराय जी की कृति स्वरूप चिन्तन के
आधार पर ही भारतेन्दु जी ने अपनी इस कृति की रचना की है।

२३- सर्वोत्तम स्तोत्र

यह ग्रंथ पुष्टिमार्ग का बहुचर्चित ग्रंथ है।
भारतेन्दु ने इसका हिन्दीकरण किया है।

२४- निवेदनपत्रक और पुरुषोत्तम पत्रक

राधाकृष्ण विषयक भक्तिके ग्रंथ हैं। यह
पत्रक शैली पुष्टिमार्ग में आचार्य बल्लभ से चली आ रही है।

२५- वेणुगीत और श्रीनाथ स्तुति

ये दोनों ही भागवत सापेक्ष ग्रंथ हैं।

२६- अपवर्गदाष्टक और अपवर्ग पत्रक

अपवर्गदाष्टक में बल्लभाचार्य और विष्णु

स्वामी के प्रति आस्था व्यक्त हुई है। अप्सर्ग पंचक में वल्ग्व विट्ठल के प्रति पुनः विनय और अन्तिम गति की याचना है।

२७- माहात्म्य ग्रंथ

इन ग्रंथों में गो महिमा, कार्तिक मास का पुष्टिमार्गीय आचार व्यवहार, पुरुषोत्तम मास की दैनिक चर्या इत्यादि की चर्चा तो है ही पुष्टिमार्ग के 'व्रतोत्सव फल' निर्णय 'ग्रंथ का गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। भारतेन्दु ने अपने ग्रंथ उत्सवावली में पुष्टि उत्सवों की विस्तृत चर्चा की है। तात्पर्य यह कि श्रावण, कार्तिक, वैशाख आदि मासों की महिमा लिखने में भारतेन्दु पर पुष्टिमार्ग का प्रभाव स्पष्ट तथा परिचित है। ऊर्ध्वपुष्पमार्तण्ड में पुष्टिमार्गीय तिलक का माहात्म्य उजागर किया गया है।

भागवत शंका निरासवाद में भारतेन्दु ने दशम स्कन्ध की कतिपय विद्वानों की शंकाओं का वहीं सकेत दिया है जो आचार्य वल्ग्व के समय से चली आ रही थी। उसमें ब्रह्म के मोह और दारुका की असुर व्यामोह लीलाओं की शंका का निरसन किया गया है। वल्ग्व दिग्विजय में भारतेन्दु ने आचार्य जी के जीवनी और पर्यटन का वर्णन किया है। यह ग्रंथ यदुनाथ जी के ग्रंथ वल्ग्व दिग्विजय से प्रेरणा पाकर लिखा गया है। श्रीमद्भागवत की रासपंचाध्यायी का यद्यपि सभी भागवत सम्प्रदायों में बड़ा महत्त्व है किन्तु पुष्टिमार्ग में रास पंचाध्यायी का स्थान सर्वोपरि है।

महाप्रभु वल्ग्व ने इस पर बहुत लिखा है। इसीलिए उनको रासलीलक तात्पर्यः कहा गया है। पुष्टि भक्तों की परम्परा में रास पंचाध्यायी इसीलिए बहुमान्य हुई। भारतेन्दु भी मन्त्र ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रसंग को कैसे अपनी कारयित्री प्रतिमा से वैचित रख सकते थे।

‘तदीय सर्वेस्व’ पुष्टिमार्गीय भक्तों की आचार संहिता है। इसी आधार पर भारतेन्दु वीर वैष्णव समाज की स्थापना की थी। तदीय शब्द की प्रेरणा उन्हें आचार्य के षोडश ग्रंथों से मिली थी। इसी प्रकार आचार्य के ‘अष्टपदी का भावार्थ’ में तैत्तिरीयोपनिषद् के ‘रसो वै सः’ की ओर संकेत है। ‘श्रुतिरहस्य’ में आचार्य के ‘श्रुति गीता’ की झाला है। बल्लभाचार्य की चतुश्चोकी में आचार्य का अपने पुत्रों के लिए जो अन्तिम संदेश है उसी की पुनरावृत्ति भारतेन्दु ने भी की है।

रू - नाटक ग्रंथ

भारतेन्दु के नाटकों में ‘चन्द्रावली’ तथा ‘प्रेमजोगिनी’ ऐसे नाटक हैं जिनमें पुष्टिमार्ग का प्रभाव परिचित होता है। चन्द्रावली वस्तु दृष्टि से और प्रेम जोगिनी में भारतेन्दु की संस्कारगत भाव दृष्टि से प्रभावित है। चन्द्रावली चार स्वामिनियों में से एक स्वामिनी है अतः वे स्वकीया हैं किन्तु वैकैवल्य निभृत निकुंज की नायिका हैं। प्रेम जोगिनी नाटक में, फागपटिया जलघदिया एवं मंगला दर्शन जै श्रीकृष्ण आदि ऐसे शब्द हैं जिनसे इसके पुष्टिमार्गीय स्वरूप की भाँकी मिलती है।

निष्कर्षतः भारतेन्दु का अधिकांश साहित्य पुष्टिमार्गीय प्रेम पद्धति पर आधारित है। ‘व्यक्तिगत रूप से वे बल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी वैष्णव थे।’^१ ‘अपने धार्मिक विश्वास का प्रतिपादन करते हुए वे कहते हैं :

‘हम चाकर राधारानी के ।

ठाकुर श्रीनंदनंदन के वृषभानु ल्ली ठाकुरानी के ॥

१- भारतेन्दु की विचारधारा- डा० लक्ष्मी सागर पृ० १३६

निर्मय रहत बहत नहि काहू डर नहि डरत भवानी के ।
हरीचन्द नित रहत दिवाने सूरत अजब निवानी के ॥ १

और भी-

जहाँ देखो वहाँ मौजूद मेरा कृष्ण प्यारा है ।
उसी का सब है जल्वा, जो जहाँ मैं आसक़ारा है ॥ २

भारतेन्दु जी वल्म्याचार्य और विठ्ठलनाथ जी से बहुत ही प्रभावित थे । इसीलिए वे अपने को वल्म कुल का कृतिदास कहते हैं :

‘ हम तो मौल निर या घर के दास दास श्री वल्म कुल के । ’ ३

भारतेन्दु जी ने वल्म्याचार्य की भूरि भूरि प्रशंसा की है। वे उन्हें श्रीकृष्ण का अवतार मानते हैं। उनके अनुसार अज्ञात लीलाओं को प्रगट करने के लिए कृष्ण ने कलियुग में वल्म्याचार्य का रूप धारण किया है। जो विभिन्न दशावतार हैं वे ही द्विज वैशधारी आचार्य वल्म हैं।^४ लक्ष्मण भट्ट के घर में उत्पन्न हुए वे स्वयं नन्दनन्दन श्रीकृष्ण हैं।^५ इसीलिए उनकी अनन्यासक्ति आचार्य वल्म में सर्वाधिक है :

१- हम तो श्रीवल्म ही को जानै । प्रेममा ०३३

२- श्रीवल्म प्रभु मेरे सरबस । प्रेमप्रताप पृ० ५२

३- हरीचंद मंगल वल्म पर जा बल विहरत बिना विकार ॥

- प्रेमाशुवर्षाण -११

४- प्रात समय उठताहि श्रीवल्म यह मंगलमय जीजै नाम ।

राग सैग्रह ७२

१- हौली (१८७६) भा० ग्री० भाग २ पृ० ३६५

२- स्फुट कवितारं ,, पृ० ८५१

३- प्रेममा लिका ,, पृ० ५६

४- ,, ,, पृ० ५२-५३

५- श्रीवल्लभ पद रज प्रताप सौ यह सीला कहिं गाई ॥

- मधु सुकुल ४८

भारतेन्दु जी ने अपने प्रातः स्मरण स्तोत्र में ११ वैष्णव के अन्तर्गत वल्लभ कुल के ११ गुरुओं तथा उसी कुल की बहू जी लक्ष्मी, रुक्मिणी, पद्मावती आदि नारी रत्नों का श्रद्धावन्त भाव से स्मरण किया है।

महाप्रभु वल्लभ के दोनों तनयों गौ० गोपीनाथ जी और गौ० विठ्ठल नाथ जी स्मरण करना भी भारतेन्दु की मर्यादा रही है -

गौपीनाथ अनाथ गति, जग गुरु विठ्ठलनाथ ।

जयति नृगल वल्लभ तनुज, गावत श्रुति गुन गाथ ॥ - वैष्णुगीत

इस प्रकार भारतेन्दु जी के साहित्य में वे सभी पुष्टिमार्गीय तत्त्व निहित हैं जो हमें अभीष्ट हैं और आज्ञेय हैं।

...

षष्ठ अध्याय

मार्तण्डु साहित्य पर पुष्टि भक्ति का

प्राव

अध्याय षष्ठ

भारतेन्दु साहित्य पर पुष्टि भक्ति का प्रभाव

भारतेन्दु के समग्र साहित्य पर पुष्टि भक्ति का प्रभाव दिखाना प्रस्तुत प्रबन्ध का चरम लक्ष्य है। अतः उससे पूर्व पुष्टि भक्ति के स्वरूप की आनुष्ङ्गिक चर्चा करना समीचीन प्रतीत होता है। गत पृष्ठों में शुद्धाद्वैत दर्शन एवं पुष्टि मार्ग के व्यापक प्रसार विशेषकर काशी में उसके प्रभाव की चर्चा की जा चुकी है। आचार्य बल्लभ का कर्म चौदह प्रारंभ में और अन्त में काशी ही रहा है। मध्य के पच्चीस वर्ष उन्होंने अर्कपुर-वर्तमान अद्वैत में बिताए थे। ये पच्चीस वर्ष उनके महान् साहित्यार्धन के थे। जीवन की क्षाण मंगुरता से वे भली भाँति परिचित थे। उनके ग्रंथों से विशेषकर अन्तःकरण प्रबोध से विदित होता है कि उन्हें भूतल त्याग की दो बार आज्ञा हो चुकी थी किन्तु अपने जीवन के परम लक्ष्य - साहित्य एवं समाज का परोपकार- वे पूरा नहीं कर पाये थे अतः वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि मैंने भगवदाज्ञा की अवहेलना की और अपने लक्ष्य को पूरा करने के दृष्ट पर दृढ़ बना रहा^१। अतः इस काल में रचित जो स्वमार्गीय भक्ति साहित्य है वह भारतेन्दु के समय तक काशी में अत्यन्त लोकप्रिय हो चुका था। उसकी चरम जीवमोपयोगिता से प्रभावित होकर बड़े बड़े राजवंशों से लेकर कुटियों में निवास करने वाले अकिंचन जन पुष्टिमार्गीय वैष्णव हो गए थे। विशेषकर गृह जैजाल में फैला मध्यम वर्गीय समाज तो इस भक्ति मार्ग में चरम शान्ति का अनुभव करता था। उसे अपने जीवन की जटिलताओं को सुलझाने का मार्ग इसी भक्ति मार्ग में मिला।

१- देखो- अन्तःकरण प्रबोध श्लोक सँ० ५-६

इस विन्दाण भक्ति मार्ग की अपनी यही विशेषता रही है कि जीवन के प्रवाह को जगत् से नैश मात्र न हटाकर निरंतर अपने आराध्य के प्रति सर्वतोभावेन समर्पित रह कर बिना कृक त्याग किये किन्तु समर्पण पूर्वक आराधना के चक्र को सतत चालू रखा होता है। यही पुष्टि-मार्गीय भक्ति की विन्दाणता है। अतः इस भक्ति मार्ग की लोकप्रियता गंगा की धारा की भाँति विशाल और विस्तृत होती चली गयी। भारतेन्दु के साहित्य में आचार्य की पुष्टिभक्ति एवं शुद्धाद्वैत प्रभाव पड़े पड़े अन्तर्निहित है। यहाँ उसे संक्षेप में दिखाने की चेष्टा की जायेगी।

पुष्टि भक्ति में भगवान् की सगुण साकारोपासना पर अत्याग्रह है। आचार्य वल्लभ साकार ब्रह्मवाद के संस्थापक आचार्य माने जाते हैं^१। भगवान् के सगुण साकार रूप की उपासना में जितनी ध्यान करने, समर्पण करने उन्हें अपना निज जन बनाने और आत्मीय समझने की सुविधा रहती है उतनी निर्गुण निराकार उपासना में नहीं। अतः सर्वसाधारण के लिए यह भक्ति मार्ग श्रुतिगोश करने में ही सरल प्रतीत होता है। फिर यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक पुष्टि भक्त अपने घर में अपने आराध्य या ठाकुर जी की साकार प्रतिमा या स्वरूप^२ को अवश्य ही पधरावे। वह स्वल्पमार्गीय मंदिर में नित्य दर्शन करता हुआ अपने मनोरथों के अनुकूल अपनी शारीरिक, आर्थिक अथवा मानसी सेवा समर्पित कर सकता है। अर्पित मानसी सेवा तो इस मार्ग में सर्वोपरि मानी गयी है^३। अतः भक्त यदि परिस्थितिवश अपने यहाँ भगवान् के स्वरूप को नयों में पधरा सके तो भी वह शारीरिक पश्चिम के फौजदारी से बचा रह कर प्रभु की सामर्थ्यानुसार वित्तज्ञ तथा मानसी सेवा कर

१- साकार ब्रह्मवादसंस्थापकवैद मार्गः । सर्वो० स्तो० श्लो०

२- पुष्टिमार्ग में प्रतिमा को स्वरूप फुकारा जाता है। देखो -ह०रा०वा०मु०

३- मानसी सा परामता - षोडश ग्रंथ सि० मु० १

सकता है। और उसे थोड़े श्रम से तदीयता (भगवत् कृत कृपा) प्राप्त हो सकती है। पुष्टिमार्ग का दूसरा नाम अनुग्रह मार्ग है। ' अनुग्रह ' भगवद्धर्म है, उनकी दशविध लीलामें एक लीला है। यह अनुग्रह तत्त्व, देश, काल, पात्रादि से बाधित नहीं। प्रभु अपनी स्वेच्छा से कभी भी किसी पर भी कहीं भी कृपा कर सकते हैं। इससे वैवर्णाश्रम, कुल आचार, धर्म आदि की चिंता नहीं करते। कभी कभी भक्त के अत्यन्त आर्त होने पर भी वे अनुग्रह कर बैठते हैं। परन्तु यह ' आर्त भाव ' भी उन्हीं की प्रेरणा अथवा अनुग्रह से संभव है। इसमें भी जीव स्वतंत्र नहीं। इस प्रकार इस विलक्षण भक्ति मार्ग में जीव की स्थिति दारुणोष्णित- कठपुतली से अधिक नहीं।

इस प्रकार पुष्टिमार्गीय वैष्णवों को ' तदीय ' फ़कारा जाता है। ' तदीयता ' भगवान् अपनी इच्छा से अपने भक्तों को स्वयं ही समर्पित करते हैं। जिन्हें वे अपना निज अथवा स्व अथवा स्वकीय मानते हैं वे ही ' तदीय, ' अथवा ' भगवदीय ' कहे जाते हैं। तदीयों अथवा भगवदीयों की उनकी अपनी भावना की गहनता के अनुसार कौटियाँ बन जाती हैं। तदीय, भगवदीय, परम भगवदीय भक्तों की भावानुसार कौटियाँ ही हैं। भारतेन्दु ने अपने समय में काशी में सन् १८३० में ' तदीय समाज ' की स्थापना की थी। भारतेन्दु के तदीय समाज का मूल सिद्धान्त प्रेम और धर्म था। इसी समाज ने दिल्ली दरबार के समय कई लाख हस्ताक्षर करवा कर ' गोवध ' बन्द कराने का प्रयत्न किया। गुरु का पुष्टि मार्ग में कितना बड़ा महत्त्व है यह पुष्टिमार्ग से परिचित समाज मनी भाँति जानता है। भारतेन्दु का गौ महिमा ग्रंथ भी उनकी अपने ' मार्ग ' से अनुपम प्रेम को उजागर करता है।

प्रेम और आचार (वर्णाश्रमाचार) सेवा,

१- पौष्णतदनुग्रहः भागवत २।१०।४

२- इति स्वानां --- अखिलदृक् । १०। २२। १२

समर्पण^१ एवं अनन्यता पर स्कान्त निर्भर यह भक्ति मार्ग प्रेम लक्षणा भक्ति पर आधारित है। इस भक्ति में प्रेम का विप्रलम्भ पक्ष ही सर्वाधिक ग्राह्य हुआ है। सभी भक्त्याचार्यों ने प्रस्थानत्रयी - वेद उपनिषद्, गीता एवं ब्रह्म सूत्र को अपने अपने भक्ति मार्ग के लिए आधारभूत माना है। परंतु आचार्य ने उपर्युक्त प्रस्थानों के अतिरिक्त चौथा प्रस्थान 'समाधिभाषा'^२ अर्थात् श्रीमद्भागवत को अत्यन्त महत्त्व दिया है। लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की भक्ति के लिए आचार्य ने ब्रज गोपिकाओं को आदर्श स्वीकारते हुए उन्हें अपना गुरु माना है।^४ अतः मौली माली तर्कविहीना बुद्धिवादी क्लृप्ता गृहस्था गोपिकारैः सर्व समर्पण पूर्वक जिस गहराई से अपने जीवनाधार प्राण प्यारे कन्हैया से प्रेम करती है वही आचार्य को अपनी भक्ति साधना के लिए वर्णीय वांछनीय प्रापणीय है। अतः गोपीजनो को भक्ति चोत्र का आदर्श मानते हुए आचार्य ने अपने भक्ति मार्ग का विशाल प्रासाद सर्वजन हिताय खड़ा किया था। इस दिव्य प्रासाद में प्रवेश का अधिकार बिना किसी भेद भाव के प्राणिमात्र को है। यही कारण था कि भारतेन्दु युग तक आते आते पुष्टि मार्ग न केवल काशी में ही अपितु समूचे देश में परिव्याप्त हो गया। अतः पुष्टि भक्ति की इस विलक्षणता के मूल में व्याप्त उसके तत्त्वों पर यहाँ प्रकाश डालने का यत्न किया जायेगा। पुष्टि भक्ति के नौ प्रमुख तत्त्व हैं जिनकी व्याप्ति भारतेन्दु साहित्य में यत्र तत्र दृष्टिगोचर होती है। अतः सर्वप्रथम उनकी संक्षिप्त चर्चा करके तदनंतर उनका अन्तर्भाव भारतेन्दु जी के साहित्यमें दिखाने की चेष्टा की जायेगी।

१- संसारावेश दुष्टानां--- भूमर्शस्ययोजयेत् । नि० ल० १२

२- यच्च दुःखं यशोदायानंदादीनांच गोकुल ।

गोपिकानां तु यद् दुःखं तद् दुःखं स्यान्मयं क्वचित् ॥ नि० ल० १

३- वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि ब्रह्मसूत्राणि चैव हि ।

समाधिभाषा व्यासस्यप्रमाणं तच्चतुष्टयम् ॥ त०दी० नि० शा० प्र० १

४- कौण्डिन्यो गोपिकाः प्रोक्ता पुनः साधनं चतत् ।

भावोभावनया सिद्धः साधनानान्यदिष्यते ॥ सं० नि० ८

१- सेव्य

आचार्य के पुष्टि मार्ग को दर्शन की भाषा में शुद्धाद्वैत अथवा ब्रह्मवाद भी कहा जाता है। भगवान् गोकुलेश्वर श्रीकृष्ण ही इस मार्ग में एकमात्र सेव्य हैं। उन्हीं की सतत परिचर्या इस मार्ग का लक्ष्य है। वे अवतारी हैं उनके जन्म कर्म सभी अनौकिक और दिव्य हैं। आचार्य का सिद्धान्त था-

एकं शास्त्रं देवकी पुत्र गीतमेकौदेवोदेवकीपुत्र एव ।

मन्त्रोपेक्षस्तस्य नामानि यानि कर्मापेक्षस्तस्य देवस्य सेवा ॥

अर्थात्- देवकी पुत्र श्रीकृष्ण द्वारा कहीगई गीता ही एक मात्र शास्त्र है। एकमात्र भगवान् या ईश्वर है तो वही देवकी पुत्र श्रीकृष्ण ही है। यदि एक मात्र कोई मंत्र है तो उसके नाम ही मंत्र है। अतः (जीव का) यदि एक मात्र कोई कर्तव्य है तो उसकी सेवा । “

“ कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ” श्रीकृष्ण ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं अन्य देवी देवता उनकी ही विभूतियाँ हैं। वे आवश्यकतानुसार कहीं द्विभुज रूप से तो कहीं चतुर्भुज रूप से बिराजते हैं। उदाहरणार्थ- वैकुण्ठ में चतुर्भुज तथा गोलोक में द्विभुज रूप से लक्षित होते हैं। नीलार्थ वे मूल पर अवतार लेकर पधारते हैं और अपने अनेक स्वरूपों से अनन्त नीलारं करते हैं। इसीलिए पुष्टिमार्ग में उनके अनेक स्वरूपों की विविध सेवारें

१- जन्म कर्म च मे दिव्यं यो वेत्ति तत्त्वतः ।

२ त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सो जुन ॥

- भगवद्गीता

२- श्रीमद्भागवत १-३

मान्य अथवा स्वीकृत हैं।

इन विविध स्वरूपों की मान्यता इसलिए भी है कि भक्तों की अनन्त रुचियाँ होती हैं जिसको भगवान् का जो भी स्वरूप रुचिकर हो उस पर वह अपनी संपूर्ण निष्ठा केन्द्रित करके सेवा में लग जाय। मूर्तियाँ मंत्राधीन होती हैं अतः उनका आवाहन विसर्जन होता है स्वरूप स्वाधीन है मंत्राधीन नहीं। अतः उसके आवाहन विसर्जन की आवश्यकता नहीं होती। वह भावाधीन होने से सर्वतोभावेन सेव्य होता है। अतः पुष्टि मार्ग में श्रुतिकोपासना नहीं स्वरूप सेवा है। अनन्त स्वरूप भगवान् भक्तेच्छा से धातुमय और मृण्मय होकर भी चैतन्य और सच्चिदानन्द धन हैं। वह परब्रह्म हैं। ब्रह्मा, विष्णु महेशादि उनके अंश हैं अथवा उन्हीं के गुणावतार हैं। इन गुणावतारों का कार्य उत्पत्ति, पालन, संहार अथवा सृजन, सिञ्चन, संहार है। ये तीनों देवता राजस, सात्त्विक एवं तामस के अधिष्ठाता हैं इन्हीं को सगुण ईश्वर कहा जाता है। श्रीकृष्ण गुणातीत हैं। अतः ये निर्गुण और इनकी भक्ति निर्गुणा भक्ति है।

निष्कर्षतः संप्रदाय में मूर्ति अथवा प्रतीक और स्वरूप में भेद नहीं। भक्त के भाव बल के सहारे वे धातु अथवा काष्ठ से भी प्रकट हो जाते हैं। मूर्ति या स्वरूप में वर्तमान भक्त के पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ज्ञान ऐश्वर्यादि षड्धर्मों से युक्त धर्मी हैं। इसीलिए भक्त अपने प्रियतम प्रभु का शृंगार करता है, मोग धरता है उनकी आरती तथा शयनादि कराता है। क्रतु के अनुसार पंखा, फुव्वार, चंदन, ग्रीष्म में तथा अंगीठी रजाई गद्दे शीत में समर्पित करता है। अन्य उपासना मार्ग में भाव की यह प्रधानता न होकर विधि की प्रधानता होती है। पुष्टि मार्ग स्नेह प्रेम का मार्ग है, भक्त अपनी भावनानुसार प्रभु के सुख दुःख का विचार करता रहता है और उसी विचार धारा से कभी सुखी और कभी पीड़ित होता रहता है। उसे अपने सुख दुःख का

विचार नहीं होता । इसीलिए पुष्टिमार्ग को परम प्रेम कामार्ग माना गया है। भक्त का संपूर्ण आचरण अपने प्रियतम के अनुकूल होता है। इस प्रकार भगवत् सेवा करते करते भक्त के मन का निरोध अपने भगवान् में हो जाता है। इसीलिए श्रीकृष्ण को सर्वोद्धारक सर्व समर्थ अनन्त कृपा विग्रह माना गया है। वे स्वरूप और कार्य दोनों प्रकार से भक्तों का उद्धार करते हैं।

निष्कर्षितः जब तक भगवान् भूतल पर दृश्यमान रहते हैं तब तक वे स्वरूप बल से भक्तोद्धार एवं लीला करते हैं। जब वे तिरोहित हो जाते हैं तब भक्त की भक्ति के बल से जीवों का उद्धार करते हैं। यह भक्ति भी उनकी अनुग्रहैक साध्य है। भक्त पूर्णतः उनका वशवर्त्ति है। भगवान् स्ववश हैं। वे चाहें तो जीव को भक्ति निष्ठा में डालें, न चाहें तो नहीं।

२- दीक्षा

पुष्टिमार्गीय भक्ति में प्रवेश का अधिकार गुरु द्वारा प्रदत्त दीक्षा किंवा ब्रह्म सम्बन्ध ज्ञे के उपरान्त ही होता है। ब्रह्म सम्बन्ध इस ब्रह्मवाद का सबसे महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। ब्रह्म सम्बन्ध से तात्पर्य है- आत्म निवेदन । आत्म निवेदन का सिद्धान्त वस्तुतः वेद, गीता, ब्रह्मसूत्र एवं भागवतादि से प्रतिपादित है। आचार्य श्री का यह कोई निजी सिद्धान्त अथवा कल्पित सिद्धान्त नहीं । आचार्य का श्रेय तो इतना ही है कि उन्होंने इस गुह्य तत्त्व को सर्वसाधारण के लिए प्रकट कर दिया । आत्म निवेदन अथवा सर्वतोभावेन समर्पित होने का यह सिद्धान्त वेदों में इस प्रकार आया है -

“ स वा अयमात्मा सर्वेषां भूतानामधिपतिः ।
सर्वेषां भूतानां राजा । तद् यथा रथनामाँचरन्नेमाँचाराः सर्वे समर्पिताः ।
स्वमेवास्मिन्नात्मनि सर्वाणि भूतानि सर्वदेवाः सर्वलोकाः सर्वे प्राणाः, सर्वस्त
आत्मनः समर्पिताः । ”

अर्थात् - "यह जो प्राणी मात्र का अधिपति विश्वात्मा अथवा प्रसिद्ध परमात्मा है वह प्राणिमात्र का राजा है। जिस प्रकार रथ के चक्र की नाभी और नेमी में सब आरारें समर्पित हैं उसी प्रकार इस परमात्मा के चरणों में सर्वभूत, समस्त लोक, संपूर्ण देवता, यावन् मात्र प्राणी और जीवात्मा समर्पित हैं।"

प्रस्तुत श्रुतिवाक्य जीवात्मा और परमात्मा के सम्बन्ध पर प्रकाश डालता है। प्राणिमात्र का मूल परमात्मा है। अतः उन सब पदार्थों को अपने आपको, एवं अपने आपको एवं अपने से सम्बन्धित समस्त पदार्थों को परमात्मा को निवेदन करना जीवात्मा का एकमात्र कर्तव्य है। अतः आत्मनिवेदन से आध्यात्मिक सुख सहज प्राप्य है।

यह ध्यान देने योग्य है कि पुष्टिमार्ग में आत्म निवेदन भगवान् के प्रति ही है। किसी आचार्य, गुरु अथवा व्यक्ति के प्रति नहीं। व्यक्ति के प्रति आत्म निवेदन शास्त्र विरुद्ध है। पुष्टिमार्ग में आत्म निवेदन कराने वाले आचार्य की हैसियत केवल उस पण्डित के समान है जो विवाह के अवसर पर मीत होमादि से कन्या को उसके वर को समर्पित कराने में साक्षीभूत होता है। अतः पुष्टिमार्ग में आचार्य की साक्षी में उसके उपदेश से जीव ठाकुर जी के प्रति अपना आत्म निवेदन करता है। आत्म निवेदन करने से जीव का भगवान् के साथ सम्बन्ध स्थापित होकर क्रमशः स्थिर होता जाता है। आत्म निवेदन का रूप बड़ा आकर्षक है। निवेदन मंत्र में आचार्य जीव के द्वारा भगवान् के प्रति यह कहलाते हैं- हे भगवान् । हजारों हजारों वर्षों से यह जीव आप से विरहित होकर आपके विरह जन्य ताप बन्धन के आनंद के मूल बैठा है। ऐसा मैं- आप श्रीकृष्ण के लिए अपना देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण इनके धर्म तथा स्त्री, घर, पुत्र, प्रियजन, धन ऐश्वर्यादि तथा

अन्य सब कुछ अब आपको सौंपता हूँ । हे कृष्ण ! अबसे मैं आपका दास हूँ, आपका हूँ ।

इस प्रकार भगवान् से बिरुद्ध जीव का एक प्रकार से आचार्य द्वारा पुनः सम्बन्ध स्थापन ही ब्रह्म सम्बन्ध है। ब्रह्म संबन्ध से जीव की पाँच प्रकार के दोषों से मुक्ति हो जाती है। ये पाँच प्रकार के दोष हैं-

१- सहजदोष- जो जन्म के साथ जीव में जाये हैं। स्त्रीत्व, शूद्रत्व चाण्डालत्वादि ।

२- देशोत्थदोष- यज्ञादि साधनों से शून्य देश ।

३- कालोत्थ दोष - कल्काल, बुरे मुहूर्तादि । वर्षाकाल, प्रदोषादि ।

४- संयोगज दोष- संगदोष , पतितजन संसर्गादि ।

५- स्पर्शज दोष- अपवित्र वस्तु, चर्मादि से निरंतर संपर्कादि ।

इन दोषों से मुक्ति का एकमात्र उपाय यही है कि जीव निरंतर यह स्मरण रखे कि ' प्रभु मैं आपका हूँ । ' ऐसा स्मरण करने से दीनता का आविर्भाव और निरभिमानता का प्रवेश होता है। भक्त में अपनी अपराध भावना का उदय उससे अहंता ममता दूर कर देता है। सब कुछ स्वामी का है। अतः अहंता ममता किस बात की । सर्व समर्थ प्रभु के सामने अपने दोषों की निवृत्ति का एकमात्र उपाय- दोष की स्वीकृतिपूर्वक सदैव्य क्षमा याचना । यही ब्रह्म सम्बन्ध का सार है। ' ब्रह्म ' शब्द श्रीकृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम वाची है। उन्हें ही वेदों में ब्रह्म कहा गया है। अतः निश्चय ही यह भक्ति मार्ग वेद अविरोध है।

१- देखो- मूलचंद तेलीवाला की भूमिका- विद्वन्मंडन- गुजराती संस्करण

२- ब्रह्मसंबन्धकरणात् सर्वेषां देहज्जीवयोः ।

सर्वदोष निवृत्तिरिह दोषाः पंचविधाः स्मृताः ॥ सि० रह० श्लोक २

ब्रह्म सम्बन्ध हो जाने पर वैष्णव मात्र का कर्तव्य है कि अपने उपांग में किसी भी वस्तु को लेने के पूर्व उसे अपने आराध्य को समर्पित करके ही ग्रहण करे। यदि कोई ऐहिक आमुष्मिक कार्य करे तो भगवदाज्ञा लेकर ही करे।

गुरु का महत्त्व

इसी प्रकार पुष्टिमार्ग में यद्यपि गुरु का दर्जा एक साक्षी के रूप में है, पर यह विवेक गुरु की ओर से अपना है। भक्त किंवा साधक के लिए गुरु और गोविंद में ओद दृष्टि रखना ही परम कर्तव्य बताया गया है। पुष्टि मार्ग में गीता प्रमाण चतुष्टय के अन्तर्गत है, अतः गीतोक्त वाक्य-

तद् विद्धि प्रणिपातेनः परिप्रश्नेन सेवया ।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ १

भगवान् ने श्रीमद्भागवत के एकादश स्कंध में स्पष्ट आज्ञा दी है- 'आचार्य मां विजानीयात्' अर्थात् आचार्य मेरा अपना ही स्वरूप है। इसलिए दीक्षा आचार्य एवं आचार्य वंशजों द्वारा ही ली जाती है। आज भी वल्लभ वंशज गोस्वामी बालक श्रीविल्लभाचार्य की मर्यादा से ही दीक्षा देते हैं।

ब्रह्म सम्बन्ध के मंत्र की मर्यादा पुष्टिमार्ग में वेद के गायत्री मंत्र की भाँति है। गायत्री मंत्र का ग्रहण गुरु से ही किया जाता है। उससे ब्राह्मण को ब्राह्मणोचित कर्म करने का अधिकार होता है।

उसी भाँति ब्रह्म सम्बन्ध से दीक्षित वैष्णव को भगवत् सेवा का अधिकार हो जाता है।

स्वरूप सेवा

ब्रह्म सम्बन्ध के बाद दीक्षित वैष्णव के माथे भगवान् का कोई न कोई स्वरूप पधरा दिया जाता है। स्वरूप सेवा उसकी निजी न भी हो तो अपने भावानुसार वह अपने सेव्य को स्थिर करके उसकी तनुजा- नहीं तो वित्तजा एवं मानसी सेवा तो करता ही है- पुष्टिमार्ग में तदीय वैष्णव की रुचि के अनुसार नौ स्वरूपों में से वह किसी भी स्वरूप पर अपना मन जमा लेता है। ये नौ स्वरूप हैं :

- १- श्री गोवर्धन नाथ (श्रीनाथ जी)
- २- श्री नवनीत प्रिय जी
- ३- श्रीमधुरेश जी
- ४- श्री विट्ठलनाथ जी
- ५- श्री द्वारकानाथ जी
- ६- श्री गोकुलनाथ जी
- ७- श्री गोकुल चंद्रमणजी
- ८- श्री मदनमोहन जी
- ९- श्री बालकृष्ण जी

श्री भारतेन्दु के वंश परंपरा के तथा निज के सेव्यस्वरूप श्री मुकुन्दराय जी हैं। श्री मुकुन्दराय जी का स्वरूप सर्वप्रथम आचार्य वल्लभ की माता को किन्हीं श्री गोविंदराय जी से मिला था ।

तात्पर्य इतना ही कि पुष्टि भवित मैं सका-

१- देखो- मुकुन्दराय जी की वार्ता- भूमिका पृ० १ सँ० १९८०

रोपासना मूल तत्त्व है। भक्त को भगवद् भक्ति के लिए किसी आनंद पर अवश्य ही आश्रित होना पड़ता है। यह आलम्बन अथवा सेव्य पुष्टिमार्गीय निश्चित स्वरूपों में से कोई न कोई भक्त या सेवक की रुचि के अनुकूल स्वरूप अवश्य होगा।

भगवत्सेवा

पुष्टिमार्ग जब आलम्बन के बिना भक्ति साधना बन ही नहीं सकती तब आलम्बन की सेवा भी अनिवार्य है। 'सेवा' तत्त्व की प्रधानता के कारण पुष्टि मार्ग में भक्त की संज्ञा सेवक है। उसे भक्त न कहकर 'सेवक' ही पुकारा जाता है। सेवा का सिद्धान्त 'यथादेहे तथा देवे' स्वीकार किया गया है। भगवद् भक्ति के लिए पुष्टिमार्ग में सेवा ही एक मात्र और सर्वोच्च साधन है। सेवा सिद्धान्त वल्लभीय भक्ति मार्ग की अपनी विशेषता है। संभवतः इस दिव्य सिद्धान्त की महत्ता गौस्वामी तुलसीदास में भी अनुभव की थी। अतः उन्होंने लिखा है-

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उखारि । १

पुष्टिमार्ग ही एक ऐसा भक्तिमार्ग है जिसमें सेवा पर ही बल दिया गया है। श्रीरामानुज माध्व निम्बार्क आदि भक्ति संप्रदायों में भगवत् पूजा की प्रधानता रही है। इन संप्रदायों के देव स्थानों में अहोरात्र पूजा प्रवाह चलता है। पूजा में वेद मंत्र तथा शास्त्रीय विधियों की प्रधानता है। जबकि पुष्टिमार्ग में भाव की प्रधानता है। भाव की प्रधानता होने से आवाहन विसर्जनादि की आवश्यकता नहीं। वेद मंत्रों की आवश्यकता नहीं, भक्त को केवल गुणगान पूर्वक (भले ही अपनी भाषा में अथवा अष्टशायियों

की भागवतोक्त लीलाओं के) प्रातःकालीन मंगल जागरण, मंगल भोग से लेकर शयन पर्यन्त की सेवामें एकाग्र चित्त से लगना होता है। यदि ऐसी भगवत् सेवा शरीर से (तनुजा) न भी बन पड़े तो वह द्रव्यसे (वित्तजा) तो कर ही सकता है। यदि यह भी संभव न हो तो मन से (मानसी) निरन्तर भगवान् का चिन्तन तो कर ही सकता है। पुष्टिमार्ग में यही त्रिविध सेवारें तनुजा, वित्तजा, मानसी सिद्धान्त रूप में बताई गई हैं। नाम स्मरण भी भगवत् सेवा पुष्टि मार्ग में माना गई है। नाम स्मरण में भगवत् सम्बन्धी ग्रंथों का पढ़ना, पढ़ाना, लिखना, लिखाना, मनन करना आदि सब सम्मिलित हैं।

सेवा सैतोष जन का कायादि व्यापार रूपा है। सेवा के अनेक रूप हैं। राज सेवा, गुरु सेवा, पितृ सेवा, शिशु सेवा, मानव सेवादि । सच्ची सेवा से सेवक और सेव्य दोनों को ही अपरिमित सुख एवं सैतोष होता है। अतः पुष्टि मार्गीय भक्ति में सेवा तत्त्व एक विन्यास तत्त्व है।

नाम स्मरण

पुष्टि भक्ति में भागवतोक्त नवधा भक्ति

पूर्णतः घटित है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम् ॥ २

१- चेतस्तत्प्रवर्णं सेवा तत् सिद्ध्यै तनुवित्तजा ।

ततः संसारे दुःखस्य निवृत्तिर्बलबानम् ॥

- सि० मु० १

२- श्रीमद्भागवत ७।५।२३

किन्तु नाम सेवा, नाम स्मरण पर सर्वाधिक बल दिया गया है। नाम में बड़ी शक्ति है। अतः अन्य भक्ति संप्रदायों की भाँति पुष्टि मार्ग में नाम संकीर्तन, हरि कीर्तन (कथा वार्तादि) तथा नाम स्मरण तीनों ही का माहात्म्य है। दीक्षा में आत्मनिवेदन तो हो ही जाता है। अतः वैधी भक्ति जहाँ समाप्त होती है वहाँ से पुष्टि भक्ति का प्रारंभ होता है- यह कहा जाय तो अनुचित ^१हउ न होगा । नाम संकीर्तन से तात्पर्य वाद्यादिके साथ उच्च स्वर से अष्टाक्षर मंत्र अथवा साम्प्रदायिक संकीर्तन श्री यमुना जी गोर्धन नाथ । महा प्रभु जी विट्ठल नाथ आदि नामों का घोष करना संकीर्तन के अन्तर्गत है। कथा वार्ता, हरि चर्चा आदि हरि कीर्तन कहलाता है। वारकरी संप्रदाय में नारदीय पद्धति से भक्तों का अभंग गान और पूर्ण पीठिका पूर्वक भगवच्चरित्र का कथन हरि कीर्तन कहलाता है। संकीर्तन में समवेत गान है जबकि हरि कीर्तन में एक ही वक्ता होता है जो संगीत वाद्यादि के सहारे श्रोताओं को इस निमज्जित करता है। नाम स्मरण में अष्टाक्षर, पंचाक्षर का सतत जप साधक करता है। नाम सेवा में ग्रंथों का स्वाध्याय, मनन अनुशीलनादि समाहित है। इस प्रकार पुष्टिमार्ग में नाम स्मरण, नाम संकीर्तन, हरि कीर्तन एवं नाम सेवा का अमित माहात्म्य है।^४

१- श्रीकृष्णः शरणं मम ।

२- कथयन्तश्चमामक्त्यातुष्यतिरमंतिव । गीता

३- गुणगाने सुखावाप्तिर्गोविंदस्य प्रजायते ।

यथा तथा शुकादीनां नैवात्मनि कुतः न्यतः ॥ नि० ८० ६

४- (अ) तावदानंद संदोहः कीर्त्यमानः सुखायहि । नि० ८० ४

(आ) महतां कृपया यद्धत् कीर्तनं सुखदं सदा ॥ वही - ५

प्रेमसाधना एवं आसक्ति

सतत भगवद् स्मरण से सेवक या साधक के चित्त में निरंतर श्रद्धा जागृत रहने के कारण उसमें भागवत् प्रेम का उदय होने लगता है।^१ उसके हृदय मंदिर में प्रेम के आनंदन अथवा प्रेमास्पर्द भगवान् की अपलक उपस्थिति का मान उसे प्रति जाण होने लगता है। भावोदय का यह प्रथम सौपान धीरे धीरे स्नेह में परिवर्तित होता हुआ क्रमशः आसक्ति तदु-परान्त व्यसन दशा को पहुँच जाता है। आचार्य वल्म ने सेवक की इस क्रमिक मनःस्थिति का संकेत अपने ग्रंथ भक्तिवर्द्धिनी में दिया है। स्नेहदशामें लौकिक राग धीरे धीरे समाप्त होने लगता है। आसक्ति की दशा में घर परिवार के प्रति अरुचि का उदय होने लगता है। कृष्ण आसक्ति जब व्यसन दशा को पहुँच जाती है तब साधक कृतार्थ हो जाता है।^२

तात्पर्य इतना ही कि पुष्टिमार्ग समस्त शास्त्रीय प्रणवों से दूर एक विशुद्ध प्रेम साधना है जिसके प्रति जीव मात्र का सहज आकर्षण हो जाता है। बात केवल इतनी ही है कि पुष्टि मार्ग साधन साध्य नहीं कृपा साध्य है।

अनन्यता

पुष्टिमार्गीय भक्ति का बीज भाव अनन्यता है। जिस प्रकार नारी के लिए एकमात्र पति के प्रति अनन्य होना उसकी चरम पावनता और प्रेम का परिचायक है। उसी प्रकार पुष्टि भक्ति में भगवान् के

१- हृदगतः स्वगुणान् श्रुत्वा पूर्णः प्रभावयते जनान् । नि० व० ८

२- ततः प्रेम तथासक्तिव्यसनं च यदा भवेत् ।

बीजं तदुच्यते शास्त्रे दृढं यन्नापि नश्यति ॥ म० व० ३

३- यदा स्याद् व्यसनं कृष्णोक्तार्थं स्यात्तदेव हि ॥ म० व० ५

अपने सेव्य के प्रति अनन्य होना एकमात्र वांछनीय शर्त है।

सेवक में अनन्य भाव की ऊनता पुष्टिमार्ग में सहाय नहीं अपितु एक गुरुतम अपराध है। अनन्यता के बिना पुष्टि भक्ति सिद्ध नहीं होती। विवेक धैर्यश्रिय ग्रंथ में आचार्य ने व्यभिचारिणी भक्ति का खण्डन करते हुए लिखा है -

अन्यस्य भजनं तत्र स्वतो गमनमेव च ।

प्रार्थना कार्यं मात्रे पि ततो न्यत्र विवर्जयेत् ॥ १

अनन्यता की सिद्धि में सबसे बड़ा शत्रु अविश्वास है। अतः आचार्य कहते हैं :

अविश्वासो न कर्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः ।

ब्रह्मास्त्र चातको भाव्यौ प्राप्तौ सेवैत निर्ममः ॥ २

साधक अथवा सेवक को कथमपि अपने प्रभु पर अविश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि वह सर्वथा भक्ति पथ का बाधक है।

निष्कर्षतः इतनी ही विवक्षा है कि भक्ति साधक विशेषकर पुष्टिमार्गावलम्बी को अविश्वास का त्याग करके अनन्यता की भावना को पुष्ट करते रहना चाहिए। अनन्यता की परिभाषा देते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है :

सौ अनन्य जाकी असि मति न टरै हनुमैत ।

मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवैत ॥ ३

१- विवेक धैर्यो० श्लोक १४

२- वही ,, १५

३- रामचरित मानस- किष्किंधा काण्ड

अनन्यता की सिद्धि होवाने पर चराचर मात्र मैं आराधक भक्त अपने प्रभु के ही दर्शन करता हूँ। उसे किसी अन्य के दर्शन ही नहीं होते ।

सत्संग

पुष्टि भक्ति की साधना के लिए तथा उपर्युक्त पुष्टि भक्ति के तत्त्वों की सिद्धि के लिए सत्संग ही एक मात्र उपाय है। गुरु कृपा भी सत्संग से ही प्राप्त होगी। आचार्य ने स्थान स्थान पर 'महता कृपया' पद की पुनरावृत्ति की है। वे सबके मूल में भगवदीयजनों की कृपा और उनका चिर संपर्क अनिवार्य मानते हैं। जब तक सत्संग नहीं मिलेगा भक्ति के किसी भी तत्त्व की सिद्धि तो दूर उपलब्धि भी नहीं होगी। इन्द्रिय जल में अशुद्ध व्यक्ति को यदि सामर्थ्य संचित करना है तो उसे सत्संग अनिवार्यतः करना होगा। सत्संग स्वाध्याय की द्विचक्री गूँठी पर चल कर ही भक्ति भवानी के मव्य प्रासाद पर पहुँचा जा सकता है।

ऊपर पुष्टि भक्ति के नौ तत्त्वों का संक्षेप में परिचय दिया गया है। ये सभी तत्त्व भारतेन्दु साहित्य के नियामक तत्त्व रहे हैं। भारतेन्दु जी की परंपरा, परिवेश, पारिवारिक संस्कृति सभी पर पुष्टि मार्गीय भक्ति सिद्धान्तों का प्रभाव रहा है। उनके पिता गिरिधर दास उपनाम गोपालदास कट्टर पुष्टिमार्गी थे। गोस्वामी गिरिधर जी उनके पिता के भी गुरु थे और उनके स्वयं के भी। काशी का सुप्रसिद्ध पुष्टिमार्गी मंदिर मुकुन्द लाल गोपाललाल का मंदिर कहा जाता है। श्री मुकुंदराय जी स्व गोपाल लाल जी के विग्रह इस मंदिर में आज भी सेव्य रूप में चले आ रहे हैं। चौखम्बा स्थित पुष्टि मार्गीय यह विशाल मंदिर आज भी शुद्धाद्वैत मार्तण्ड के लेखक श्री

गिरिधर जी की उज्ज्वल यशोगाथा का अनवरत गान कर रहा है। नाथद्वारा राजस्थान से श्री मुकुन्दराय जी का यह स्वरूप अपने चरम पाण्डित्य और पुष्टि मार्गीय भाव भावना के अप्रतिम ज्ञान के विनिमय में श्री गिरिधर जी ने किस प्रकार प्राप्त किया यह तृतीय अध्याय में कहा जा चुका है। अतः यहाँ उसकी पुनरावृत्ति न करके यह सिद्ध करने की चेष्टा की जायेगी कि श्री भारतेन्दु के खूँ उनके पूर्व पुरुषों के सेव्य यही मुकुन्दराय जी थे और इनको राजस्थान से काशीलाने वाले गो० गिरिधर जी महाराज इनके वंश परंपरा के दीक्षा दाता गुरु थे। यह सब कुछ चतुर्थ अध्याय में स्पष्ट किया जा चुका है। यहाँ तो केवल उनके साहित्य में उपर्युक्त नौ पुष्टि तत्त्वों का समावेश तथा प्रभाव दिखाने की चेष्टा की जा रही है।

अतः सर्वप्रथम काव्य में सेव्य, सेव्य का स्वरूप तथा उनकी सेवा भावनाकी चर्चा की जायेगी।

भारतेन्दु काव्य में सेव्य की चर्चा

भारतेन्दु के संपूर्ण साहित्य को स्थूलतया चार भागों में विभक्त किया जा सकता है :

१- काव्य- जिसमें उनकी लगभग तैंतीस रचनाएँ सम्मिलित की जा सकती हैं।

२- नाटक - इनमें अनूदित पाँच नाटक तथा मौलिक सात नाटक दो अपूर्ण। इस प्रकार कुल चौदह नाटक हैं।

३- अनुवाद ग्रंथों में चार ग्रंथ ही हैं।

४- माहात्म्यपरक ग्रंथों में लगभग दस ग्रंथ आते हैं।

चारों ही प्रकार की रचनाओं में लगभग उनका पुष्टि भक्ति संस्कार प्रतिबिंबित है। अतः सर्वप्रथम काव्यों में पुष्टि भक्ति के तत्त्वों का संकेत किया जायगा। पुष्टि भक्ति के तत्त्व हैं :

- १- नाम निवेदन
- २- आत्म निवेदन अथवा ब्रह्म सम्बन्ध
- ३- परम तत्त्व के रूप में उनकी परम आह्ला-
दिनी शक्ति राधा मान्यता और आराधना।
- ४- श्री यमुना स्वापिनी के प्रति भक्ति भावना
- ५- आचार्य महाप्रभु बल्म के प्रति दृढ़ निष्ठा
- ६- घोषसीमन्तिनी (ब्रज बल्मी) गोपियों
के प्रेम भावों की आदर्श रूप में स्वीकार करना।
- ७- गीता और श्रीमद्भागवत् के प्रति निष्ठा
- ८- वैष्णवों के प्रति आदर भाव।

भारतेन्दु के साहित्य में पुष्टिमार्गीय भक्ति के तत्त्वों का प्रतिफलन

१- नाम निवेदन एवं दीक्षा

भारतेन्दु की वंश परम्परा में पुष्टि संस्कार एवं पाँच वर्ष की अवस्था में ब्रह्म सम्बन्ध की दीक्षा अथवा आत्म निवेदन की चर्चा प्रस्तुत प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में की जा चुकी है अथवा उनकी पुनरावृत्ति आवश्यक है। वे शुद्धाद्वैत मार्तण्ड के निष्क गिरिधर जी के शिष्य थे और गुरु के यह प्रश्न पर कि " बाली लक्ष्मी अथवा सरस्वती तो शिशु भारतेन्दु ने उत्तर दिया था कि सरस्वती " और गुरु के आशीर्वाद का

१- श्रीगिरिश चन्द्र चौधरी की प्रति लिपि सलग्न है।

ही फल था कि आज भारतेन्दु को आधुनिक साहित्य का जनक कहा जाता है।

३- परम तत्त्व के रूप में श्रीकृष्ण और उनकी आह्वादिनी शक्ति

श्रीराधा की भारतेन्दु साहित्य में चर्चा

इक्यावन पदों अथवा कन्दों का भारतेन्दु का कृष्ण चरित्र नामक ग्रन्थ है जिसमें उनकी युगल भावना के प्रति असीम निष्ठा मिलती है। इसमें श्रीकृष्ण का रसिक स्वरूप चरम सौंदर्य एवं पुष्टिमार्गीय लगभग सभी तत्त्व समाहित हैं :

नवल नील मेघ बरन दरसत ब्रयताप- हरन ।
 परसत सुख करन भक्त सरन जमुन बारी ।
 सोमित सुंदर दुकुल प्रफुलित कल कमल फूल
 भेटत भव मूल भक्ति मूल तापहारी ॥
 कोमल बर बाहु रचित बैदि विविध तटनि खचित
 नव लता प्रतान सचित नचित मृग भारी ।
 चंचल चल लोल लहर कलि कल करबान कहर
 जग जन जम जान जहर भक्तन सुखकारी ॥
 जल कन लै त्रिविध पान करत जबै कितहुँ गौन
 परसत सुख मौन सीत सौहत संचारी ।
 अवगाहत मनुज देव करत सकल सिद्ध सेव
 जानत नहिँ भेव भेद बेद मौन धारी ।
 ब्रजबर मँडल सिंगार गोप- गोपिका आधार
 प्राननाथ कँठहार जुगल बर बिहारी ।
 पुष्टि सुपथ पुष्टि करत सेवाको फल बिसरत
 हरीचन्द जस उचरत जयति तरनि बारी ॥ १

इन्हीं ब्रजपुराधीश के रत्नामिषौक की शास्त्रीय चर्चा की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह देव ग्रह की प्रतिष्ठा भारतेन्दु ने अपने नित्य जीवन के लिए कराई हो^१। परन्तु यह केवल अनुमान मात्र है क्योंकि पुष्टि मार्ग में देव विग्रहों की शास्त्रीय प्रतिष्ठा न होकर आचार्य वंशजों से पंचाकृत स्नान मात्र से पुष्ट कराये जाते हैं। ऐसे उदाहरण वार्ता साहित्य में भरे पड़े हैं। भारतेन्दु के प्रस्तुत ग्रन्थ में श्रीकृष्ण की अष्टयाम सेवा के संकेत भी मिल जाते हैं :

प्रातः समै प्रीतिम प्यारे को मंगल बिमल नवल जस गाऊँ ।
सुन्दर स्याम सलौनी मूरति मोरहि निरखत नैन सिराऊँ ॥
सेवा करौं हरीं त्रैविधि भय तब अपने गृह कारण जाऊँ ॥
“ हरीचन्द ” मोहन बिनु देखे नैनन की नहिं तपन बुझाऊँ ॥२

पुष्ट मार्ग में मुख्यतः यशोदोत्संग लालित श्री कृष्ण जो श्री राधा के प्राण तत्त्व, रास रसिकेश्वर, गोप सी मतिवियों के आराध्य हैं वही भारतेन्दु को परम आराध्य के रूप में मान्य हैं। इन्हीं के संयोग विप्रयोग की गाथा भारतेन्दु के साहित्य का मूल तत्त्व है। आचार्य के अणु भाष्य की अंतिम पुष्पिका में श्री० स्वामी विठ्ठलनाथ जी ने लिखा है :

जानीति परमं तत्त्वं यशोदोत्संगलालितम् ।
यदन्यदि तियेप्राहुरासुरास्तानहोबुधाः ॥

यशोदोत्संग लालित द्विभुज श्रीकृष्ण नंद निकैतागण रिंगणकर्ता ब्रज बधूजों

१- आशु सुर मुनि सकल ब्रजपुराधीश को

रत्न अमिषौक बर वेद विधि सों करत ॥ भा० ग्रं० पृ० ६०५

२- भा० ग्रं० पृ० ६०६

३- श्रीवल्लभ वेदान्त- निम्बार्क पी० प्र० सं० पृ० ६५०

के प्राण सर्वस्व रार रसिकेश्वर श्रीकृष्ण की मनोहर चर्चा भारतेन्दु में प्रति-
फलित है। युगल वर्णन में वे लिखते हैं :

आजु दोउ बैठे मिलि वृंदावन नव निकुंज
सीतल बयार सेवै मोद मरे मन मैं ।
उड़त अँचल चल चँचल दुकुल कल
स्वेद फूल की सुगंध छाई उपवन मैं ।
रस मरे बातें करै हँसि- हँसि अँग मरै
बीरी खात जात सरसात सखियन मैं ।
‘ हरीचन्द ’ राधाप्यारी देखि रीफि गिरिधरी
आनंद सौं उमगे समात नहिँ तन मैं ॥ १

भारतेन्दु स्वभाव से अत्यन्त प्रेमी एवं रसिक
थे । उनके ये दोनों गुण उनके काव्य में विशेषकर कृष्ण भक्ति सेवित रचनाओं
में पदे पदे प्रतिफलित हुए हैं। पुष्टिमार्ग में यद्यपि श्रीकृष्ण के बाल भाव पर
बल दिया गया है परन्तु रसिक हरिचंद ने किशोर श्रीकृष्ण को ही अपना
स्वामी स्वीकारते हुए उनकी विविध कुंज निकुंज लीलाओं का चित्रण का
चित्रण किया है :

श्याम अमिराम रवि- काम- मोहन सदा
वाम श्री राकि सँगलीने ।
कुंज सुख पुंज नित गुंजरत माँर जहाँ
गुंज-बन-दाम गलमाँहि दीने ।

०

०

करत दिन केलि भुज मेलि कुच ठेलि

लखिदास हरिचंद जय जयति कीने । १

यह कैलि रस परिपाक की चरम स्थिति है। एक पक्षीय न होकर उभय पक्षीय है :

आजु मुख चूमत पिय को प्यारी ।

भरि गौद भुज दृढ़ करि अंग मंग उमगि उमगि सुकुमारी ॥ २

भारतेन्दु के कृष्ण यदि रथाखद भी है तो भी उनका रसिक रूप ही मुखर हो उठता है :

ककु रथ हाँक नहू मैं माँति ।

यह ककु औरहि चलनि चलावनि और रथ की काँति ॥ ३

श्रीकृष्ण साधारण चालक नहीं हैं उनके रथ चालन असामान्य है। जब वे रथाखद हैं तो स्वयं रथ की शोभा ही निराली हो जाती है। इस रथ की यात्रा निरुद्देश्य होकर भी सौद्देश्य है। प्रेमिका के घर की गली की ओर बार बार मुड़ जाना इस रथ यात्रा का उद्देश्य है :

काहू के घर की फेरी दै, घूमनि करि रथ मंद ।

बार बार निकसनि वाही मग मैं जानी हरिचंद ॥ ४

प्रेमी के प्रेम भरे कार्य कलापों पर सूक्ष्म दृष्टि डालना भारतेन्दु को पूरी तरह आता था । उनका रचना व्यापार मनोवैज्ञानिक

१- भारतेन्दु ग्रंथावली द्वि० खंड पृ० ६११

२- वही पृ० ६११

३- वही पृ० ६०८

४- वही पृ० ६०८

दृष्टिसे इतना सफल एवं स्वाभाविक है कि जिसका मूल्यांकन करना सहज नहीं ।
ऊपर ससाधारण सी प्रतीत होने वाली वर्ण्य वस्तु अपने में सौंदर्य गंभीर
अनंत प्रेम व्यापारों को अपने में समाहित किये हुए है जिनकी सूक्ष्म अनुभूति
विशुद्ध प्रेमी हृदय को ही संभव है अन्य को नहीं ।

भारतेन्दु का संयोग शृंगार सुरतांत होकर भी
दिव्यभावापन्न है। लौकिक अश्लीलता उसे स्पर्श नहीं करती । वर्ण्य की कृहो
कृत्यों की 'जुगल रस केलि' भक्ति भावना सेवित है। उनका षट् कृत वर्णन
कृत वर्णन के उद्देश्य से नहीं अपितु लीला वर्णन की मुख्य दृष्टि के कारण
उसमें कृष्ण भक्ति भावना प्रधान हो गई है। कृत वर्णन विविध किशोर क्रीडाओं
का अनुचर होकर ही उपस्थित हो सका है। ग्रीष्म में यदि फव्वारे का आनंद
लिया जा रहा है :

आजु दोऊ बैठे हैं जल मौम ।

हौज किनारे मरे मौज सौ प्यारी राधा रौन ॥ १

तो वर्णां कृत में-

घन गरजत बरसत लखि दोऊ और हुल पटि लपटि रहे सोय ।

स्यामा स्याम झकत कुंज में अरु तीसरो निकट नहीं कोय ॥ २

स्यामा स्याम की यही प्रेम माधुरी शाखीय
शोभा में और भी उज्ज्वल हो उठती है :

प्यारी कौं सौजत है पिय बह प्यारी ।

मिलि रहि दीपावली में मिलिमिलि फैलो बदन उजारी ॥ ३

१- भारतेन्दु ग्रंथावली भाग २ पृ० ६१३

२- वही पृ० ६१२

३- राग संग्रह (भा० ग्र० ख०२ पृ० ४६२)

स्यामा स्याम की यह दिव्य सौन्दर्य संगीत से मिलकर और भी अतौकिक आभा संपन्न एवं मोहक हो उठता है। रास-क्रीड़ा में विविध राग रागिनियों संगीत की तानों से चतुर सुजान मोहन समूचे भुवन मंडल को स्तब्ध और मुग्ध कर देते हैं :

फिरि लीजै वह तान अहो पिय फिरि लीजै वह तान ।
नि नि ध ध प प म म ग ग रि रि सा सा मोहत चतुर
सुजान ॥

उदित चंद्र निर्मल नभ मंडल थकि गर देव विमान ॥ ७

शिशिर के प्रभात की निद्रा विशेष सुखदायी होती है :

बीती निसि तिय सोवन दीजै यह ललिता लै बीन बजायौ ।
चौकि परे दोउ मोर जानि तब रसमसे नैननि आनस आयौ ॥

नायिका की वयः संधि ही मकर संक्रान्ति है। भारतेन्दु की कथन अनुपम कल्पना धन राशि की समाप्ति और मकर राशि में सूर्य का संक्रमण एक विशेष भाव की ओर संकेत देता है। धनराशि में विवाहादि मांगलिक कार्य नहीं होते । मकर राशि के लगते ही विवाहादि प्रारंभ हो जाते हैं। वयः संधि प्राप्त नायिका को मिलाने वाली राशि मकर ही है ।

अतः हेमन्त के संकेत देते हुए भारतेन्दु कहते हैं :

भागन पाइये जू लालन बैस- संधि- संक्रान्त
तिय तिथि पाइ व्यापि गई तन में कलौकिन राधा रान ॥ १

एक स्थान पर वे लिखते हैं :

मकर संक्रान्त सखी सुखदाई ।

मकर कुंडल सौ मकर बिजोचनि बर्यौ न मिलत तू धाई ॥१

वसन्त तो स्वयं ही कर्तुराज है, होलिकोत्सव फाग की धूम धाम में मानव मन समस्त सीमाओं और अस्वामाविक परिधियों को समाप्त कर एक अलौकिक स्वराज्य में विचरण करने लगता है। वासंतिक क्रीड़ाओं का विविध विस्तृत वर्णन साहित्य के विशेष कर हिन्दी साहित्य उसमें भी ब्रज भाषा साहित्य के कवियों की सदैव से अपनी संपत्ति रही है। अतः उसी परंपरा में रसिक भारतेन्दु ने अपने 'होली' शीर्षक रचनाओं मस्ती के जिस आलम की सृष्टि की है वह सहृदयों की अपनी निधि है। भारतेन्दु के होली ग्रंथ से उनके मस्त स्वभाव का पूरा परिचय मिल जाता है। उनकी नायिका श्रीकृष्ण प्रेम के रंग में सराबोर है वह लोक लाज को लात मार चुकी है। अतः अपने प्रियतम से मिलने के लिए अत्यन्त आतुर है :

‘ अब मैं घर न रहूँगी काहू के रोके ,

मोहि मति बरजौ कोय ।

ऐसो पिय लहि या फागुन को

मेरे अमागिन रोय ॥

जाऊँगी जहँ पिय होरी खलत,

मिलूँगी जगत भय सोय ।

निधरक पिय के अधर पियूँगी,

मैंटूँगी मरि मुज दोय ॥ ३

१- भा० ग्रं० ख० २ पृ० ४६६

२- ,, पृ० ८६६

३- ,, होली पृ० ३८२ पद ५३

भारतेन्दु के होली के पदों में चरम मस्ती के दर्शन होते हैं। साथ ही होली पर गाये जाने वाले सभी रागों को लच्य कर उन्होंने पद रचना की है। इन पदों में नारी के शृंगार की सामग्रियों की चर्चा भी की गई है। जैसे 'गुदमा', बेनी, बेसर, बिंदुनिया, चौक, कंकन, बाजू आदि। ब्रज के रसिया भारतेन्दु को बहुत प्रिय थे। अतः उन्होंने 'रसिया' की भी रचना की है :

- १- पीरी परि गई रसिया के बोलन सों । १
- २- तेरी बेसर को मोती पहरे ।
- ३- मैं तो चौक उठी डफ बाजन सों ।
- ४- बस करु अब ऊधम मोत भयो ।

तात्पर्य यह कि भारतेन्दु का षट् ऋतु वर्णन ब्रज परंपरा पर ही आधारित है। ऋतु वर्णन की परंपरा का निर्वाह करते हुए भी वे अपने आराध्य श्रीकृष्ण को जाण भर भी नहीं भूलते। उनकी तो कामना यही है :

नित नित होरी ब्रज में रही ।
 बिहस्त हरि संग ब्रज जुवति गन सदा अमंद नही ।
 प्रफुल्लित फलति रङ्गवृंदावन मधुप कृष्ण गुन कहौ ।
 हरीचंद नित सरस सुधामय प्रेम प्रवाह बहौ ॥ २

षट् ऋतु वर्णन में भी भारतेन्दु को दो ऋतुएं ग्रीष्म और वर्षा विशेष प्रिय थीं। उन्होंने रचना प्रवाह को अनेक स्थानों पर तोड़ कर पुनः धूम फिर कर ग्रीष्म को बरबस ला दिया है। वर्षा विनोद

१- भार० ग्रंथा० सं० २ पृ० ३८५-३८६

२- ,, पृ० ३८७

३- ,, कृष्ण चरित्र, राग सैग्रह के ग्रीष्म पद

तो उनका स्वतंत्र ग्रंथ ही है जिसमें उन्होंने 'पावस ऋतु' का जमकर वर्णन किया है। पुष्टिमार्गीय सेवा ऋतु अनुसारी है। श्रीकृष्ण की चार स्वामिनियों की तीन तीन मास की सेवा उनकी अपनी अपनी ऋतुओं के अनुकूल चलती है।

स्वामिनियों में मीढो प्रमुख स्वामिनियों 'तूर्य प्रिया' श्री यमुना एवं प्रथम प्रिया श्री राधा की सेवारं क्रमशः ग्रीष्म और वर्षा की ही है। भारतेन्दु ने श्री यमुना और श्री राधा को अपने ग्रंथों में बड़ा ही सन्मान श्रद्धा एवं आदर दिया है।

पुष्टिमार्ग दिव्य प्रेम प्रधान उपासना मार्ग है। प्रेम के दोनों पक्ष मिल्न विरह की शाश्वत अनुभूतियाँ ही इस मार्ग की एकमात्र उपासना है। श्रीकृष्ण के दिव्य माधुर्य संपन्न चिर किशोर स्वरूप की चिरंतन अनुभूति ही उनके काव्य का प्राण तत्त्व कहा जा चुका है। ऊपर प्रेम के संयोग पक्ष की संचिप्त चर्चा की जा चुकी है। भारतेन्दु के मानस में श्रीकृष्ण विरह की अनुभूति भी उतनी ही गहराई से पैठी हुई थी। यह बताने की चेष्टा यहाँ की जायेगी।

‘न विमाविप्रयोगेन संयोगोपुष्टिमश्नुते ।’

विरहानुभूति के बिना संयोग रस पुष्टि को प्राप्त नहीं होता। भारतेन्दु की रचनाओं में यह विप्रलम्भ पद पद पर अनायास अकृत्रिम भाव से उपस्थित हुआ है- पाठक को लगता है- गोपी, राधा या ब्रज वधूटियों का माध्यम तो व्याज मात्र है- स्वयं हरिश्चन्द्र का हृदय श्री कृष्ण विरह से व्यथित है और अपने प्यारे से मिलने के लिए तड़प रहा है। यही कारण है कि उनकी संयोग परक रचनाओं के प्रवाह के बीच में अनेक विप्रलम्भी पद मिल जाते हैं जिससे उनकी तीव्र कृष्ण विरह भावना उजागर हो जाती

१- देखिये- श्रीनाथ सेवा रसवैदधि ग्रंथ की प्रथम द्वितीय तरंग

है। चरम दैन्य मिश्रित विरह भावनाके ऐसे दिव्योन्मादी पद ही भारतेन्दु की रचना को अमरत्व प्रदान किये हुए हैं। वस्तुतः भारतेन्दु ने आचार्य वल्म की भाँति शृंगार के विप्रलम्भ पक्ष को ही अधिक महत्व दिया है। विप्रलम्भ को महत्व देने के ही कारण आचार्य भक्ति मार्ग रूपी कम्पन का मार्तण्ड^१ एवं "वैश्वानर"^२ सँज्ञा से अभिहित किया गया है। मार्तण्ड और वैश्वानर दोनों ही ऊष्णतम दिव्य पदार्थ हैं। इन उपमानों से ध्वनि स्पष्ट है कि वल्मोप-दिष्ट मार्ग "ऊष्ण भक्ति" अर्थात् विरहानुभूति का मार्ग है। यही इस मार्ग की विलक्षणता है कि विरह में आराध्यक अथवा उपासक अपने प्रियतम उपास्य को एक क्षण के लिए भी विस्मृत नहीं करता। प्रिय का ध्यान उसका एक मात्र लक्ष्य और दैन्य उसका सहचर। भारतेन्दु में यह कृष्ण प्रेम के दोनों ही तत्त्व - विरह एवं दैन्य- उनकी रचनाओं में आद्योपान्त प्रस्फुटित हुए हैं।

भारतेन्दु काव्य में विरहानुभूति

पुष्टि संप्रदाय की ब्रह्म सम्बन्धात्मक दीक्षा में कहा गया है कि अनंत वर्षों से प्रियतम श्रीकृष्ण जो ज्ञान और प्रेम के पुंजीभूत अग्निवत् है- उनसे यह जीव विस्फुल्लिगवत् विरहित हुआ है^३। अब उनके नामस्मरण के माध्यम से पुनः उनका नित्य साहचर्य चाहता है- भारतेन्दु अपने ग्रंथ विनय प्रेम फलासा में भगवान् से यही याचना करते हैं-

“तोसौ और न कहु प्रभु जाचौ ।

हृत्तनो ही जाँचत करुनानिधि तुमही मैं ह्वे राचौ ॥

१- भक्तिमार्गाब्जमार्तण्डः -सर्वोत्तम स्तो० श्लोक ६

२- वैश्वानरो वल्मभाष्यः , , १२

३- विस्फुल्लिगा ह्वाग्नेस्तुसदसैनजडाअपि । शास्त्रार्थ प्र० ३२

खर कूकर लौ द्वार द्वार पे अरथ लोम नहिं नाचौ ।
 या पाखान सरिस हियरे पै नाम तुम्हारोइ साचौ ॥
 विस्फुल्लिंग से जग दुख तजि तब बिरह अगिन तन ताचौ ॥
 'हरिचंद' 'इक रस तुमसौ मिलि अति अनन्द मन माचौ ॥ १

अपने परब्रह्म स्वरूप औसी से औस रूप जीव जब
 विरहित होता है तब उसे विरह ताप के बलेश का अनुभव होता है। सच्चा
 पुष्टि भक्त भगवान् की अपेक्षा भगवान् के विरह ताप को ही श्रेष्ठ मानता
 है। भारतेन्दु ने इसी तथ्य को लक्ष्य में रखकर कहा है :

हम सौ सब दूरि रहो 'हरिचंद'
 न संग मैं मोहिं लगाए रहो ।
 हम तो बिरहा में सदा ही दहैं,
 तुम आपनो अंगबचार रहो ॥ २

भागवतीक्त वैष्णुगीत की विरह भावना से लेकर
 प्रमरगीत तक संपूर्ण विरह भावना भारतेन्दु ने अपने काव्य ग्रंथों में व्यक्त की
 है। भागवत के वैष्णुगीत की केन्द्रीय भावना 'अक्षयवर्ता फलमिदं न परं विदामः'^३
 की भावना को वे अपनी प्रेम फुलवारी में व्यक्त करते हैं^४ :

१- तुव मुख देखिबे की चाट ।

० ०

नैन फेर चाहत है देख्यौ लीनेगोधन ढाट ।

बेनु बजावत सौ मुखलालन वाही जमुना घाट ॥

१- भा० ग्रंथावली विनय प्रेम पदासा पृ० सौ० ५३६

२- भा० ग्र० कृष्ण चरित्र पृ० सौ० ६१५ पद सौ० ३२

३- श्रीमद्भागवत १०।२१।७

४- प्रेमफुलवारी पृ० ५८५-५८७

२- नैन ये लगिकै फेरि न फिरे ।

बिधुरी अलकनमै फँसिकै रहि गर तहाँ धिरे ॥

३- सखी री ये उर फौहै नैन ।

उरफि परत सुर मयौ नहीं जामत सौचत समुक्त हैं न ॥

भारतेन्दु में प्रमरगीत की भावना भी विद्यमान

है :

पिय सौ प्रीति लगी नहिं कूटै।

ऊधौ चाहौ सौ समझाओ अब तौ नेह न टूटै ॥

सुन्दर रूप छोड़ि गीता को ज्ञान लेह को कूटै ॥

हरीचंद ऐसी को मूरख सुधा त्यागि बिस्र हूटै ॥

उनके प्रेम फुलवारी के अनेक पदों पर सूर की विरह भावना का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगत होता है। यदि अंतिम पैरि के 'हरीचंद' को निकाल दिया जाय तो उनके और सूर के पदों में कोई विशेष अंतर नहीं रह जाता । उदाहरणार्थ -

(अ) सखी री ये अखियाँ रिझवारि ।

देखत ही मोहन सौ रीझी सब कुल कानि बिसारि ॥

०

०

सुंदर रूप बिलोक्त रपटौ कचि घट जिमि बारि ॥

(आ) मरम की पीर न जानै कोय ।

कासौ कहौ कौन पुनि यामै बैठ रही घर दौय ॥ २

१- प्रेमफुलवारी पृ० ५८७

२- श्रीमद्० भाग० १०।४६।४७

‘कृष्ण चरित्र’ का ‘‘देसो हरिजु के रथ की आवनि’’ तो श्रीमद्भागवत के प्रमरगीत के श्लोक का अनुवाद ही प्रतीत होता है। करुण विप्रलम्ब के चित्रण में वे लगभग सूर के समकक्ष ही प्रतीत होते हैं :

ऊधो अब वे दिन नहीं रेहें ।

जिनमें स्याम सँग नि स बासर क्लिप्त बिलसि बिहै हैं ॥१

तात्पर्य यही कि जिन पुष्टिपुरुषोत्तम को आचार्य बल्लभ ने गोपी भाव का केन्द्र स्थिर किया है वही ‘हरिचंद’ के सेव्य हैं। वही उनको मान्य हैं। लोक वेदातीत प्रेम के अधिष्ठाता गोपी भावित श्रीकृष्ण ही उनके परमाध्याय हैं।

सेश्वर सांख्यवादी प्रकृति पुरुष से ऊपर उठकर जिस पुरुषेश्वर या पुरुषोत्तम को लक्ष्य मानते हैं, गीता में जिसे ‘अतो स्मिन् लोके वेदेन प्रथितः पुरुषोत्तमः’ कहा गया है वही ब्रह्मा में मर्यादापुरुषोत्तम राम है और द्वापर में नीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण हैं। वही पूर्ण पुरुषोत्तम पुष्टिमार्गीय भक्तों में पुष्टि पुरुषोत्तम के नाम से पुकारे जाते हैं। भारतेन्दु ने पुष्टिमार्गीय पुष्टि पुरुषोत्तम पर पञ्च पद लिखकर उसी पुष्टिमार्गीय गुह्य भक्ति का परिचय दिया है, जिनकी कृपा से जीव पंचपर्व अविद्या - स्वरूपाज्ञान, देहाध्यास, इन्द्रियाध्यास, अन्तःकरणाध्यास, प्राणाध्यास से मुक्त होकर भगवान् की नित्य नीला में प्रवेश का अधिकारी होता है। भारतेन्दु का पुरुषोत्तम पंचक पंच पर्व अविद्या को लक्ष्य करके ही लिखा गया है -

१- कृष्णचरित्र पृ० ६१६ पद ४८

२- पुरुषोत्तम पंचक - भार० ग्रंथा० पृ० ७६०

१- स्वरूपाज्ञान समाप्ति के हेतु

पुरुषोत्तम बिन मोहिं नहिं कोई ।

०

०

इन बिनु जगत और जो कीनो आयुस नाहक खोई ॥

(पद में आत्म न्य की स्थिति)

२- देहाध्यास समाप्ति के हेतु

सखी पुरुषोत्तम मेरे नाथ ।

मोर मुकुट सिर कटि पीताम्बर सुंदर मुरली हाथ ।

(देहातीत स्थिति के लिए भगवत् स्वरूप

के शाश्वत ध्यान की स्थिति)

३- अन्तःकरणाध्यास की समाप्ति हेतु

सखी पुरुषोत्तम मेरे प्यारे ।

प्राननाथ मेरे मन धन जीवन जसुदानंद दुलारे ॥

४- इन्द्रियाध्यास की समाप्ति हेतु

पुरुषोत्तम प्रभु मेरे सर बस ।

सबगुन निधि करुनाबरुनालय जानत सकल प्रेम रस ॥

प्राणाध्यास की समाप्ति के लिए

पुरुषोत्तम प्रभु मेरे स्वामी ।

पतित उधारन करुना कारन तारन खगपति गामी ॥

पुष्टि पुरुषोत्तम पर लिखा गया भारतेन्दु का पैत्रिक उनकी पुष्टि भक्ति की रहस्य भावनाओं के बोध का परिचायक है। अन्य कृष्ण भक्ति संप्रदायों के सिद्धान्तों से पुष्टिमार्गीय भक्ति की यह रस भावनामयी पारिभाषिकता कुछ अपनी निजी विशेषता और विज्ञापता लिए हुए है। आचार्य वल्लभ ने अपने तत्त्वदीप निबंध के शास्त्रार्थ प्रकरण में परब्रह्म पुरुषोत्तम का स्वरूप बताते हुए उन्हें "आदि मूर्तिः कृष्ण एव" कहा है।^१ उन्हीं को "पैत्रात्मक, द्विषात्मक, पैद्वयी शत सहस्र परामित" बताते हुए पूर्ण गुण कहा है। वे ही निर्दोषपूर्ण गुण विग्रह हैं। आत्म तंत्र है और प्राकृत शरीर के वृद्धि क्षायादि गुणों से हीन पूर्णतः आनंद मात्र - शुद्ध आनंदमय सच्चिदानंदधन हैं।^२ वे पैत्रपार्थ विद्या - वैराग्य, सांख्य, योग, तपस्या, भक्ति आदि से (अविद्या निवृत्त होने पर) ज्ञातव्य हैं।^३

प्रेम और अनन्यता के पुजारी भारतेन्दु के पुरुषोत्तम भक्तैकल्य हैं। भारतेन्दु निष्केवल प्रेम के अनन्य पक्ष धर हैं। उनकी दृष्टि में यदि चरम अनन्यता है तो नैतिक प्रेम ही दिव्य प्रेम का रूप धारण कर लेता है। उनका मधु मुकुल ग्रंथ बाह्य दृष्टि से आद्योपान्त नैतिक प्रेम की रचना विदित होती है जिसके मंगलाचरण में "वृष्णमानु नंदिनी श्री राध मोहन की प्राण पियारी" की जय बोलकर अंतिम चरण में शुक्ल मुनि की अद्भुत यश का गान करने के कारण जय बोली गई है। तदुपरान्त वसन्त के आगमन और शिशिर की समाप्ति का संकेत देते हुए सांगरूपक में ऋतुराज वसन्त की सवारी का चित्र प्रस्तुत किया गया है। इक्यासी पदों के इस ग्रन्थ में प्रेम का नैतिक रूप मिलकर भी पुष्टि भक्ति होलिकोत्सव वासन्तिक क्रीड़ाएँ आदि चित्रित की गई हैं। इस ग्रंथ में पुष्टिमार्गीय भागवत्

१- त० दी० नि० शा० प्र० श्लोक १४

२- ,, ,, ४७-४८

३- ,, ,, ४६

शृंगार की वस्तुएँ जैसे- पाग, फेंट, तुराँ, मोर पंखीआ, बेसर, पीत उपरना, केयूर, पीत-मनि, लटपटी लाल पाग, सिर पैंच, पाग पैंच, ताटंक, तरकुनी, बैदुली, चोआ, चंदन, बुक्का आदि ।

मधु मुकुल में भारतेन्दु ने हौली के नम्बे पद में जहाँ एक ओर शिव स्व महामुनि^२ शुक के लिए वासन्तिक क्रीड़ा दुर्लभ बताई है वहाँ श्री बल्लभ के पद रज प्रताप^३ की महिमा का बार बार स्मरण किया है :

- १- पै श्रीबल्लभ चरन सरन जो होय सोई कहू जानै ।
- २- बिनु श्री बल्लभ कृपा कोर यह निरखेहू नहिँ समै ॥
जिमि गँवार मनि हाथ लेई पै ताको मोलन बूझै ॥
- ३- श्री बल्लभ पद रज प्रताप सौँ यहलीला कहि गाई ।
मनि सम पोहि पोहि अति रुचि सौँ माना रुचिर बनाई ।
- ४- केवल श्रीबल्लभ पद किंकर 'हरीचंद' से दासा ।
रहि है यह रस सने सदा माँगत बरसाने बासा ॥

मधु मुकुल की हौली नीला विशुद्ध सृष्टिमार्गीय उत्सव प्रणालिका पर है।^४

प्रबो धिनी में सव्य

भारतेन्दु का २५ कन्दों का यह ग्रंथ एक ओर

१- मधुमुकुल पृ० सँ० ३६५-४१७

२- शिव शुक सौ बिरनो कोउ । कोऊ कहू पावै तो पावै ॥

मधु०मु० ४१८

३- वही पद सँ० ४८ पृ० ४१६

४- देखिए- अग्निनाथ सेवार्सोदधि पृ० सँ० ४६३-५३३

पुष्टि भावना से मरपूर है तो दूसरी ओर भारतेन्दु की राष्ट्रीय भावना से ओत प्रोत है। भारतीय इतिहास के अतीत पृष्ठों में अंकित शौर्य भारतेन्दु मन मस्तिष्क में सहसा कौंध गया है। अतः 'प्रबोधिनी' के जागरण पर्व पर -

“डूबत भारत नाथ । अब जागो अब जागो ।

आलस दब रहि बहन हेतु चहुँ दिसि सौँ लागो ॥ १

कहतेहुरे 'गिरिवर धरन' से दीन हिन्दुओं को शरण देने की प्रार्थना करते हैं। भारत की अतीत की मान प्रतिष्ठा का स्मरण करते हुए वे विक्रम, भोज, राम, बलि, कर्ण, युधिष्ठिर, चंद्रगुप्त, चाणक्य की महिमाओं का गान करते हैं। साथ ही पृथ्वीराज जयचंद के कन्ह को कोसते हुए यवन शास्कों के अधर्म प्रचार की भी चर्चा करते हैं। जो भी हो 'प्रबोधिनी' अर्थात् कार्तिक शुक्ला एकादशी वैष्णव कृष्ण भक्ति संप्रदायों विशेषकर पुष्टिमार्ग में एक महत्त्वपूर्ण वर्णोत्सव है। अतः भारतेन्दु ने इसपर्व को संपूर्ण महत्त्व देते हुए लिखा है :

“जागो मंगल रूप सकल ब्रज जन रखारे ।

जागो नंदानंद करन जसुदा के बारे ॥

जागो बलदेवानुज रोहिनि मात दुनारे ।

जागो श्री राधाजू केप्रानन तैं प्यारे ॥

जागो कीरति लोचन सुखद मानु मानवर्द्धित करन ।

जागो गोपी गो गोप प्रिय भक्त सुखद असरन सरन ॥ २

प्रबोधिनी में कृष्ण के शिशु और किशोर दोनों ही रूप देखने को मिल जाते हैं। भक्ति भावना और राष्ट्रीय भावना

का सुखद सम्मिश्रण इस ग्रंथ की अपनी विशेषता है।

स्वरूप चिन्तन में सेव्य चर्चा

भारतेन्दु के पाँच ग्रंथ -

- १- पुरुषोत्तम पैचक
- २- स्वरूप चिन्तन
- ३- श्री सर्वोत्तम स्तोत्र
- ४- श्रीनाथ स्तुति स्वं
- ५- प्रातस्मरणा मंगल पाठ

ऐसे हैं जो उन्हें परंपरा स्वं व्यक्तिगत - दोनों ही प्रकार से घनघोर पुष्टि-मार्गीय सिद्ध करते हैं। वैसे तो उनके कुछेक ग्रंथों को शोढ़ सभी में पुष्टिमार्गीय भक्ति स्वं संप्रदाय के तत्त्व सन्निहित हैं किन्तु विशुद्ध रूप से उपर्युक्त पाँच ग्रंथ उन्हें कठोर संप्रदायानुयायी सिद्ध करते हैं। 'पुरुषोत्तम पैचक' की चर्चा की जा चुकी है। 'स्वरूप चिन्तन' में संप्रदाय की प्सिद्ध दस निधियों की स्तुतियाँ दी गई हैं। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से मन्ने ही उनका यह ग्रंथ विशेष महत्त्वपूर्ण न हो, किन्तु संप्रदायिक भक्ति रस की दृष्टि से वैष्णवों के लिए यह ग्रंथ मननीय स्वं पठनीय है। संप्रदाय में दीक्षित वैष्णव मात्र के लिए निम्न श्लोक नित्य स्मरणीय पठनीय होता है -

श्री गौवर्धननाथ पाद युगलं श्री हैर्यगवीन प्रियम् ।
नित्यं श्रीमथुरा धिपं सुस्करं श्री विट्ठलेशं मुदा
श्रीमद्भारवतीशं गोकुलपती श्री गोकलेन्दुं विभुम् ।
श्रीमन्मन्मथमोहनं नटवरं श्री बालकृष्णं भजे ॥ १

१- संप्रदाय बाह्यनिक पृष्ठ १

प्रस्तुत श्लोक में संप्रदाय की नव निधियों को प्रणाम किया गया है। नव निधियाँ हैं :

- १- श्री गौवर्धन नाथ (श्रीगिरिराज धरण)
- २- श्री नवनीत प्रिय
- ३- श्री मथुरानाथ जी
- ४- श्री विट्ठल नाथ जी
- ५- श्री द्वारका नाथ जी
- ६- श्री गोकुल नाथ जी
- ७- श्री गोकुल चंद्रमा जी
- ८- श्री मदनमोहन जी
- ९- श्री नटवरलाल एवं श्री बालकृष्ण लाल

इनमें श्री नवनीत प्रिय एवं श्री बालकृष्ण लाल गौद के ठाकुर कहे जाते हैं। श्रीभारतेन्दु ने इन दस निधियों के अतिरिक्त अपने गुरु घराने की दो निधियों ११- श्री मुकुन्द लाल एवं १२- श्री गोपाल लाल की भी स्तुति - चर्चा जोड़ दी है। इस प्रकार यह ग्रंथ बारह षट्पदियों (कृप्पयों) का बन गया है। षट्पदी अथवा अष्टक स्तुत्यात्मक आत्मनिवेदनात्मक होते हैं। ऐसी संस्कृत के भक्ति ग्रंथों से यह परंपरा चली आ रही है। यहाँ भारतेन्दु के बारह कृप्पयों की प्रथम पंक्तियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं। प्रथम कृप्पय में तो सभी दस निधियों की चर्चा उपर्युक्त नित्य आह्निक के श्लोक के एक प्रकार से अनुवाद के रूप में की गई है :

- १- जय जय गिरिवर धरन जयति श्री नवनीत प्रिय ।
जयति द्वारकाधीश जयति मथुरेश मान हिय ॥
जय जय गोकुल नाथ मदनमोहन पिय प्यारे ।
जय गोकुल चंद्रमा सु विट्ठल नाथ हुलारे ॥

श्री बालकृष्ण नटवर नवल श्री मुकुन्द दुस द्वन्द हर ।

स्वामिनी सह नल्लित तृमंग, गौपाल लाल जय जयति वर ॥ १

मंगलाचरणात्मक उपर्युक्त षट्पदी में संप्रदाय की दस निधियाँ एवं काशी में स्थित गुरु घराने की दो निधियाँ कुल बारह निधियाँ चर्चित हैं ।

पृथक् रूप से प्रत्येक निधि अथवा भगवत् स्वरूप के लिए एक एक छप्पय -

२- जय जय श्री गिरिराज धरन श्रीनाथ जयति जय ।

देवदमन जय नाग दमन जय शमन भक्तमय ॥

०

०

श्री वल्लभ कुल के परम निधि भक्तन के बहु दुखदरन ।

नित नव निवृज लीला करन जय जय श्री गिरिवर धरन ॥

३- जय जय श्री नवनीत प्रिय जय जसुदानंदन ।

जय नैदागन रिंगन कर जुवती मन फन्दन ॥

०

०

जहु नाथ नाथ गोकुल बसन जै जै श्री नवनीत प्रिय ॥

४- जय जय मथुरानाथ जयति नय भवमय भजन ।

०

०

०

०

गावत श्रुति गुन गन गाथ जय मथुरा नाथ अनाथगति ॥

१- स्वरूपचिन्तित पद सं० १ (हरिश्चन्द्र चंद्रिका सं० २ सं० ३ दिस० १८७४)

५- जय श्री विट्ठल नाथ साथ स्वामिनी सुटि सौहत ।

कटि धारे दोऊ हाथ रास श्रम भरि मन मोहत ॥

०

०

जय असुर दरन भक्तन मरन श्री विट्ठल असुरन सरन ॥

६- जयति द्वारकाधीस सीस मनि मुकुट बिराजत ।

जयति चार चक्रादिक आयुध कृबि क्राजत ॥

०

०

जय बाल कृष्ण प्रिय प्रान श्री द्वारिकेस महाराज जय ।

७- जय श्री गोकुल नाथ जयति गिरिराज उधारन ।

बिबिकरबंस प्रसंस, कंबु गिरि बिबिकर धारन ॥

०

०

श्री राधापति चंद्रावली रमन शयन गजपति गमन ।

श्री वल्लभ प्रिय रस मय जयति गोकलेसमन मथ दमन ॥

८- जय गोकुल चंद्रमा परम कौमन अंग सौहन ।

रास जूथपति बेनुबाद रत, तिय मनमोहन ॥

०

०

श्री रघुपति पति अति नलित गति जुवती मति जति हरन ।

रति रैनन नति प्रिय जयति श्री गोकुल ससि साविर बरन ॥

९- जय जय मोहन मदन मदन मद कदन तापहर ।

०

०

मरजादा उल्लंघि पुष्टि पथ थापन चहत ।

०

०

बर बैसी कर , स्वामिनि सहित, करन प्रेम रंग भक्ति लय ।
श्री घनश्याम आनंद भरन जय श्री मोहन मदन जय ॥

१०- जय श्री नटवर लाल ललित नटवर वसु राजत ।

० ०
० ०

नित प्रेम सुधा बरखन करन जय नटवर व्रय ताप हर ।

११- जय जय जय श्री बालकृष्ण जसुदा के बारे ।

० ०
० ०

मंगुली टोपी मसि बिंदु सिर बाल कृष्ण जय जन सुखद ॥

काशी स्थित भारतेन्दु के गुरु घराने के दो ठाकुर

१- श्री मुकुन्द भव दुंद हरन जय कुंद गौर कवि ।

श्याम मिलित मधि झुगल भाव सौ किमि बरनै कवि ॥

० ०
० ०

जदु नाथ मनोरथ पूर्ण कर श्री बल्लभ चिकुर स्थवर ।

श्री गिरिधर लालित ललित जय श्री मुकुंद दुख दंद हर ।

२- जय जय श्री गोपाल लाल श्री राधा नायक ।

० ०
० ०

काशी में वृंदावन करन जय गोपाल असरन सरन ॥

इस प्रकार भारतेन्दु ने अपने स्वरूप चिन्तन में न केवल साम्प्रदायिक स्वरूपों को नयमन ही किया है अपितु उनकी विग्रहात्मक मुद्राओं के रहस्यों का भी उद्घाटन किया है। बहुत कम लोग जानते हैं कि संप्रदाय की दो निधियों- श्री गोकुल नाथ जी एवं मदन मोहन जी के साथ दो दो स्वामिनियाँ भी हैं। किन सेव्यों की मुजाओं में कौन कौन से आयुध हैं ? क्यों हैं ? भगवान् के किस स्वरूप का क्या महत्त्व है ? सभी रहस्यों का उद्घाटन भारतेन्दु का यह 'स्वरूप चिन्तन ग्रंथ' करता है। काशी की गुरु घराने की दो निधियों की पृथक् से चर्चा करने से उनकी अपने गुरु घराने के प्रति अपार निष्ठा भी व्यक्त होती है।

सेव्य सम्बन्धी भारतेन्दु का अत्यन्त महत्वपूर्ण तीसरा ग्रंथ 'प्रातः स्मरण मंगल पाठ' है। इसमें सेव्य एवं आचार्य वल्लभ एवं उनके पुत्रों वंशजों अपने दीक्षा गुरु सबकी अत्यन्त निष्ठा से स्तुत्यात्मक चर्चा की गई है। यह ग्रंथ भी भारतेन्दु को गहन निष्ठामय पुष्टि मार्गी होना सिद्ध करता है। यह ग्रन्थ भी कूब्बीस षट्पदियों (कम्प्यों) का है। प्रारंभ में ही गो० विट्ठलेश के 'मंगलं मंगलं ब्रज भुवि मंगलं' वाली मंगलार्ति का प्रभाव उनके इस ग्रंथ के मंगलाचरण पर परिलक्षित होता है।

इस ग्रंथ में विट्ठलेश की मंगल आरती, राजभोग आरती, शयनार्ति का प्रभाव है। इसमें आरती एवं गुरु वंदना की २६ षट्पदियाँ हैं।

भारतेन्दु पर पुष्टि संप्रदाय की झाप की दृष्टि से यह ग्रन्थ सर्वाधिक महत्त्व का है। संप्रदाय में मंगलार्ति में खण्डिता

के पद गार जाते हैं। 'सिथिल बसन' ^१, 'प्रगट सुरत के चिह्न देखि कुहु हँसी-हँसाई' ^२ में वही भाव निहित है। इसके अतिरिक्त सेवा सभार जैसे- जल-भारी फिक्रदान, मुरझल, बिजन, गोपीबल्लभ भोग, कैय्या, राजभोग, सैध्या भोग, सैन आरती, गिरिराज (निवृज भावना के कारण) न्कूट, मुकूट, बेनु की चर्चा में मंगला से शयन पर्यन्त की सेवा-चर्चा आगई है। उसी प्रकार आचार्य एवं उनके वंशजों की नामावली का प्रातः स्मरणीय श्लोक का अनुवाद भी दो कृष्णों में दिया है। श्लोक है-

श्रीमद्वल्लभ विट्ठलौ गिरिधरौ गोविंदराया मिधम् ।
श्रीमद्बालकृष्ण गोकुलपति नाथै रघूणां तथा ।
एवं श्री यदुनाथकं किल घनश्यामं च तद्वंशजाम् ।
कालिंदीं स्वगुरुं गिरि विभून् स्वीय प्रवृश्च स्मरेत् ॥

भारतेन्दु ने भी दो कृष्णों, ^३वल्लभ, विट्ठल, गोपी नाथ, पुरुषोत्तम, गिरिधर जी, गोविंद जी, बाल कृष्ण जी, गोकुल नाथ जी, रघुनाथ जी, यदुनाथ जी एवं घनश्याम जी आदि सातों बालकों को स्मरण किया है। इसी संदर्भ में वे आचार्य के प्रस्थान चतुष्टय में ^४गीता, भागवतादि पुष्टिमार्ग में महामान्य ग्रंथों को नमन करना नहीं भूले हैं। अन्त में इस ग्रंथ के उपसंहारात्मक दो कृष्णों में भारतेन्दु ने आचार्य के पूर्वजों उनके माता पिता को भी प्रणाम किया है और श्रीमद्भागवत पर उनके चरम ^५अनुराग का भरपूर संकेत दिया है।

१- प्रातःस्मरण मंगल पाठ- कृष्ण २ पृ० ६४३

२- ,, ,, ३ ,,

३- ,, १०-११ पृ० ६४४

४- प्रातः स्मरण मंगल पाठ कृष्ण -२३ पृ० ६४५

५- वहई २५-२६ पृ० ६४८

श्रीनाथ स्तुति

संवत् १९३४ में लिखा गया कः षट्पदियों का ग्रंथ भारतेन्दु की अमृत पूर्व प्रतिमा का परिचायक है। इसकी भाषा संस्कृत पदावली से युक्त अत्यन्त कोमल सरल एवं लालित्य पूर्ण है। प्रथम षट् पदी है :

जय जय नंदानंद करन वृषभानु मान्यतर ।
जयति यशोदा सुअन कीर्तिदा कीर्तिदानकर ॥
जय श्री राधा-प्राप्ताथ प्रणतारति मंजन ।
जय वृंदावन चंद्र चन्द्रवदनी मन रंजन ॥
जय गोपति गोपति गोपपति गोपीपति गोकुल शरण ।
जय कष्ट हरण करुणा मरण जय श्री गोवर्धन धरण ॥१

प्रस्तुत ग्रंथ की स्तुतिपरक षट्पदियों में लगभग संपूर्ण दशम स्कंध (पूर्वार्ध) की लीलाओं का संकेत मिल जाता है। अंत में अपने उपसंहारात्मक दोहे में भारतेन्दु लिखते हैं :

यह खट सुंदर खटपदी सुमिरि पियानंद नंद ।
हरि पद पैकज खटपदी बिखी श्री हिरचंद ॥ २

तात्पर्य यह कि ग्रंथ भी निवृत्त नायक श्री गोवर्धन धर को लक्ष्य करके भारतेन्दु ने लिखा है जिसमें उनकी सख्य स्वरूप श्री श्रीनाथ जी के प्रति स्व निरोध स्वरूपा दशम स्कंधीय लीलाओं के प्रति उनकी अपार निष्ठा झलकती है।

१- श्रीनाथ स्तुति कृप्य- १ पृष्ठ ७५४

२- ,, दोहा पृ० ७५५

सर्वात्तम स्तोत्र

मूल रूप में यह ग्रंथ संस्कृत में लिखा गया आचार्य वल्लभ के द्वितीय कुमार श्रीविठ्ठलेश कृत है। इस ग्रंथ में ३५ श्लोक हैं, जिनमें आचार्य वल्लभ के अष्टोत्तरशत (१०८) नाम हैं। परम पितृ भक्त गो० विठ्ठलेश ने इन अष्टोत्तर शत नामों में आचार्य वल्लभ के कृतित्व एवं व्यक्तित्व का गहन परिचय दिया है। दूसरे शब्दों में उनके कृतित्व के अन्तस्साक्ष के रूप में यह ग्रंथ सर्वाधिक प्रामाणिक है। साथ ही वल्लभीय सिद्धान्त एवं पुष्टिमार्गीय भक्ति के रहस्यों को हृदयंगम कराने वाला तावीजी गुटका भी है। वल्लभ के करुणा-कलित स्वभाव, उनके स्त्री शूद्रादिके उद्धार करने की भावना विलक्षण भक्ति मार्ग के सृष्टा, मायावाद के खण्डन कर्ता, भागवतरूप पीयूष सागर के समर्थ मथनकर्ता, ब्रह्मसूत्र पर भाष्यादि के प्रस्ताता आदि अनेक रहस्यों का उद्घाटक यह ग्रंथ पुष्टिमार्गीय वैष्णवों में गायत्री की भाँति पूजित है। जिस प्रकार एक उष्णीषी ब्राह्मण के लिए नित्य गायत्री जप एवं सैव्या अनिवार्य है उसी भाँति पुष्टिमार्गीय वैष्णवों में सर्वात्तम स्तोत्र का पाठ अनिवार्य आह्निक कृत्य के रूप में स्वीकृत है। नित्य की भगवत्सवेवा के साथ साथ श्री सर्वात्तम जी का पाठ चलता है और इस प्रकार पुष्टि भक्त के मन में आचार्य वल्लभ के प्रति असीम निष्ठा शाश्वत रूप से प्रज्ज्वलित रहती है।

भारतेन्दु सर्वात्तम स्तोत्र की इस महिमा से भली भाँति परिचित थे। अतः उन्होंने इन ३५२ श्लोकों का सत्ताहस चतुष्पदियों में अनुवाद कर डाला है। उपसंहार में वे स्वयं लिखते हैं :

“ इति श्रीमद्विठ्ठलनाथ चरणपङ्कजपरागलेपायसारित-
निखिलकल्मष हरिश्चन्द्रकृत भाषान्तरित कीर्तन
स्वरूप श्री सर्वात्तम स्तोत्रं समाप्तिमगम् । ” १

यों तो भारतेन्दु का लगभग संपूर्ण काव्य ही पुष्टि भावना भावित है किन्तु सर्वोत्तम स्तोत्र का अनुवाद करके उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि वे पुष्टि भक्ति सर्व सिद्धान्तों में ब्रह्मान्त निमज्जित हैं। सर्वोत्तम स्तोत्र का अनुवाद करके वे स्वीकार करते हैं कि उन्होंने इससे 'परम सौतोष' का अनुभव किया है :

“ नाम आनंद निधि वल्लभाश्रीश को
विट्ठलेश्वर प्रकट करि दिखायौ ।
होड़ि साधन सकल एक यह गाड़कै ,
परम सौतोष ' हरिचंद ' पायौ ॥ १

गो० विट्ठलेश ने भी स्तोत्र के अन्त में यही लिखा है :

“ इत्यानंद निधिः प्रोक्तं नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ॥
(सर्वा० स्तो० ३३)

भारतेन्दु जी लिखते हैं -

“ जयति आनंद रूप परमानंद कृष्ण मुख,
कृपानिधि दैव उद्धार कारी ।
स्मृति मात्र सकल आरति हरन गूढ़,
गुण भागवत अर्थ लीनो बिचारि ॥ २

गो० विट्ठलेश लिखते हैं :

आनंदः परमानंदः श्रीकृष्णास्य कृपानिधिः ।
दैवोद्धार प्रयत्नात्मा, स्मृतिमात्रा तृणाशनः ॥
(सर्वा० स्तो० ७)

१- सर्वा० स्तो० पद सं० २७ पृ० ७१८

२- ,, १ पृ० ७१४

भार्० एक साकार ब्रह्मस्थापन करन,
चारहू वैद के पारगामी ॥ १

विट्ठलेश- साकार ब्रह्म वादैकस्थापकी वैदपारगः ।

भारतेन्दु- जगत व्यापक दान करत, सब वस्तु को
चरित जाके सकल अति उदार ।
आसुरी जनन मोहन करन हेत यह
व्याज सौ प्रकृति ह्व रूप धारा ॥

श्री विट्ठलेश-
अदेय दान ददाश्च, महोदारचस्त्रिवान् ।
प्राकृतानुकृति व्याज, मोहितासुरमानुषः ॥ (सर्वा० ११)

भारतेन्दु-
मन्त्र जन सुख सेव्य अति दुराराव्य ।
दुर्लभ कुंज पद उग्र तेजधारी ॥
वाक्य रस करन पूरन, सकल जनन,
मन भागवत पय सिंधु मथनकारी ॥ २

श्री विट्ठलेश

सुख सेव्यो, दुराराव्यो, दुर्लभाघ्निसरोरुहः ।
उग्र प्रतापो वाक्सीधु- पूरितोशेष सेवकः ॥
श्रीभागवत पीयूष- समुद्र मथनक्षामः ।
तत् सारमूत रासस्त्री- भाव पूरित विग्रहः ॥
(सर्वा० स्तो० १५-१६)

१- सर्वा० स्तो० पद सं० २ पृ० ७१४

२- , , ,

भारतेन्दु-

सारताकोजा नि रास बनितान के

भावसौ सकल पूरित सुदेसा ॥ १

तात्पर्य इतना ही कि लगभग श्री गो० विट्ठलेश की ही शब्दावली में इस स्तोत्र का भाषान्तर भारतेन्दु ने बड़ी सावधानी और निष्ठा से प्रस्तुत किया है। अन्तर इतना ही है कि इस स्तोत्र की फल श्रुति में जहाँ विट्ठलेश लिखते हैं कि जो भद्धा और विशुद्ध बुद्धि से जो व्यक्ति इस स्तोत्र का अनुदिन पाठ करेगा उसे पूर्व कही गयी सिद्धि अर्थात् स्तोत्र के कूठे श्लोक में "कृष्णाधरामृतास्वादसिद्धिरनसंशयः" कह कर जिस अधरामृत के आस्वाद की सिद्धि की प्रतिज्ञा की गई है वह अवश्य मिलती है, क्योंकि इस सिद्धि के समान मोक्ष भी व्यर्थ है।

भारतेन्दु अपनी फलश्रुति में- "परम दुर्लभ कृष्ण अधर अमृत पान स्वाद करि सुलभ ते सदा पावै" के साथ साथ परम संतोष "हरिचंद पायौ" भी लिखते हैं।

वैष्णु गीति

"वैष्णुगीति" भारतेन्दु का पुष्टि भावना चरित ग्रंथ है जिसमें श्रीमद्भागवत का वैष्णु गीत संपूर्ण रूपेण प्रतिबिंबित है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध में कृष्ण विरहानुभूतिपक्ष चार प्रधान गीत हैं-

१- वैष्णु गीत

२- गोपी गीत

३- युग्म गीत (युगलगीत)

१-सर्वो० स्तो० पद स० ६

२- ,, श्लो० ३४ (गो० विट्ठलेश कृत)

३- ,, पद स० २७ पृ० ७१८

४- प्रमर गीत ।

चारों ही पुष्टिमक्ति भावना को संपूर्ण रूपेण पुष्ट करते हैं। इनमें वेणुगीत^१ प्रथम गीत है। गोपियाँ वेणुनाद सुनती हैं^२ और वे कृष्ण का ध्यान करती हुई विक्षिप्त सी हुई कृष्ण की लीलाओं का स्मरण करती हुई परस्पर कृष्ण गुण गान में लीन हो जाती हैं :

‘स्व’ विधाभगवतोयावृंदावनचारिणः ।

वर्णयन्त्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः ॥ ३

‘वेणुनाद’ का पुष्टिमार्ग में इसीलिए महत्त्व है कि वह विरह प्रधान है। विरह भावना पुष्टि मक्ति का प्राण तत्त्व है। विरह से जितना शीघ्र मन का निरोध होता है उतना अन्य किसी भाव से नहीं इसीलिए बल्लभ ने अपनी पुष्टि मक्ति के लिए इस तत्त्व को अपनाते हुए अपने चतुर्थ प्रस्थान की दशम स्कंधीय लीलाओं में जहाँ वहाँ भी यह तत्त्व सुसंरित हुआ है उन्हीं प्रसंगों को उन्होंने अत्यधिक महत्त्व दिया है। दशम स्कंधीय वेणुनाद की सर्जना हुई है। उनका यह ग्रंथ भी संवत् १६३४ में लिखा गया था। प्रारंभ में ‘श्री चंद्रावली मुख चकोरी विजयते’ निस्कर संप्रदाय निष्ठा का परिचय दिया है। संपूर्ण ग्रंथ १४ विभिन्न कन्दों, दोहे, सोरटे, विष्णुपदी कन्दों में जो विभिन्न रागों में निबद्ध हैं। जिस प्रकार भारतेन्दु का सर्वोत्तम गो० विठ्ठलेश के सर्वोत्तम का भाषान्तर है उसी प्रकार उनका वेणु गीति भी भागवत के वेणु गीति का भाषान्तर है। यहाँ कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं :

१- श्रीमद्भागवत दशम स्कंध अध्याय ११

२- वेणुगीत स्मरोदयम् भाग० १०।२१।३

३- श्रीमद्भाग० १०।२१।२०

४- विरहानुभवार्थतुपरित्यागः प्रशस्यते । सैन्यासनिर्णय ७

भारतेन्दु

सखी फल नैन धरे को रह ।
 लखिबो श्री ब्रजराज कुँवर को गौर साँवरी देह ॥
 सखन संग बन तैं बनि आवत करत बेनुको नाद ॥
 धन्य सोईया रस को जानै पान कियौ है स्वाद ॥
 यह चितवनि अनुराग मरी सी फेरनि चारहूँ और ।
 हरीचंद सुमिरत ही ताके बाढ़त मन मरौर ॥

श्रीमद्भागवत

अक्षयवर्तनफलमिदं न परं विदामः ।
 सख्यं पशून्नु विवेशयतोर्वयस्यैः ।
 वक्त्रं ब्रजेश सुतयोरनुवेणु जुष्टं ।
 यैर्वा नियीतमनुखत कटाक्षा मोक्षाम् ॥

भारतेन्दु

बंसी कौन सुकृत कियौ ।
 गोपिकन को भाग याने आपुही लै पियौ ॥
 करत अमृत पान आपुन औरहू को दैत ।
 बचत रस सो फित लिदिनी वृत्ता लता समेत ॥
 प्रगट हिन दिनी तटनि तृन पुन श्रवत मधु तरु- डार ।
 होत याहि रोमांच वा को बहत आँसू धार ॥
 बेन पुत्र सुपुत्र लखि करत दाऊ आनन्द ।
 आपु हरी न होत अचरज यह बड़ो 'हरिचंद' ॥

श्रीमद्भागवत

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वैष्णुर्दामोदराधरसुधामपि गोपिका नाम् ।
मुहुःकृतं स्वयं यदवशिष्टरसं हृदिन्यो हृष्यत्वचो शुभमुहस्त सो यथा र्याः

भारतेन्दु

धन्य है मूढ़ हरिन की नार ।
पाह विचित्र वैष्ण नन्दनन्दन नीके लेहि निहारि ।
मोहित होइ सुनिहि बैसी धुनि श्याम हरिन है संग ।
प्रणय समेत करहि अवलोकन बाढ़त अंग अनंग ।
जनि देवता बन को मानहु पूजहि आदर हेहि ।
‘हरीचंद’ धनि धनि है हरिनी जन्म सुफल करि लेहि ॥ १

श्रीमद्भागवत

धन्याः स्ममूढमतयोऽपि हरिण्यस्ता या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्र-
वैष्णम् ।
आकर्ष्य वैष्णुरणितं सहकृष्णसाराः पूजां दधुर्विरचितां प्रणया-
वलीकैः ॥
(१०।२१।११)

भारतेन्दु

विमानन देव बधू रहि मूलि । २ (वै० गी० ६)

भागवत

देव्यो विमानगतयः स्मस्तुन्न साराः ॥ १०।२१।१२)

१- भारतेन्दु ग्रंथा० वै० गी० ५

२- ,, ६

भारतेन्दु

अहो सखि धनि मीलन की नारि । १

भागवत

पूर्णाः पुलिन्धउरुगाय फदाब्जराग । (१०।२१।१७)

भारतेन्दु

हरि दास वय्य गिरिराज धन धन्य । २

भागवत

हन्तायमद्रिबलाहरिदासवर्यो ।। १०।२१।१८)

ऊपर भारतेन्दु के 'वैष्णुगीति' के कतिपय पदों से भागवत के 'वैष्णुगीतम्' की तुलना प्रस्तुत की गई है। तात्पर्य इतना ही है कि भारतेन्दु का 'वैष्णुगीति' भागवतानुसारी ही नहीं अपितु हिन्दी भाषान्तरित 'वैष्णुगीतम्' ही है।

दानलीला

भारतेन्दु का सन् १६३० में लिखा गया यह ग्रन्थ भी भगवान् कृष्ण की किशोर लीला सम्बन्धी है। लगभग सभी अष्टकापी कवियों ने विशेषकर किशोर लीला गायक कुंभनदास ने 'दान लीला' को अत्यन्त महत्त्व दिया है। यह ग्रंथ भागवतानुसारी न होकर गो० विट्ठलेश के शृंगार रस मंडन के अन्तर्गत दान लीला के आधार पर है।

दानलीला यद्यपि भागवत में नहीं किन्तु अन्य

१- भार० ग्रंथा० वैष् गी० ११

२- ,, १२

३- ,,

कृष्ण भक्ति के ग्रंथों में जैसे गर्ग संहिता, ब्रह्मवैवर्त पुराणादि में इस लीला के संकेत मिलते हैं।

तात्पर्य इतना ही कि भारतेन्दु के आराध्य किशोर कृष्ण हैं और उनके लगभग सभी ग्रंथों में राधा प्रियतम किशोर कृष्ण का ही चित्रण हुआ है। वे आराध्य के प्रति सेवक भाव रखते हैं। उनकी अपनी उपासना पद्धति पुष्टिमार्गानुसारिणी है।

भारतेन्दु के काव्य में स्वामिनी भाव एवं स्वामिनियाँ

पुष्टिमार्ग में चार स्वामिनियाँ मान्य हैं। ये यूयेश्वरियाँ भी हैं और आचार्य के वर्गीकरण के अनुसार मर्यादा रूपा एवं पुष्टि पुष्टिश्रुति रूपा भी। पुष्टि पुष्टि श्रुतिरूपाएँ और कात्यायनी का व्रत करनेवाली मर्यादा रूपाएँ ही रास में सम्मिलित होने की अधिकारिणी हैं। आचार्य लिखते हैं- भक्तिमार्गीयसंन्यासस्तु साक्षात्पुष्टिपुष्टिश्रुतिरूपाणां- रासमंडलमंडनानाम् । स्वयमेवोक्तम्- 'सत्यज्यसर्वविषयास्तवपादमूलं' । ये स्वामिनियाँ हैं-

१- श्री राधा

२- श्री चंद्रावली

३- श्री ललिता

४- श्री यमुना ।

भारतेन्दु ने चारों ही स्वामिनियों को अपने काव्य का लक्ष्य बनाया है। श्री राधापर तो वे सर्वतोभावेन निष्ठावर ही लगते हैं। राधा प्रेम, राधा भाव (महाभाव) उनका परम काम्य है जीवन लक्ष्य है। उनके लगभग सभी ग्रंथों

१- ब्रह्मवैवर्त- वृन्दावन खण्ड

२- देखा- आचार्य कृत ' गायत्रीमाष्यम् ' पृ० १०६ (बृह० स्तो० सरित्०)

में श्रीकृष्ण प्रणयिनी राधा की मरसूर चर्चा मिलती है। श्री चन्द्रावली उनकी परम आराध्या हैं। उनकी चन्द्रावली नाटिका इस तथ्य का प्रमाण है कि परकीया प्रेम की उच्चतम स्थिति यदि कहीं आदर्श रूप में उपलब्ध है तो श्री चन्द्रावली में ही। अपने 'वेणुगीति' ग्रंथ का तो उन्होंने प्रारंभ ही यह लिखकर किया है, " श्री चन्द्रावली मुख चकौरी विजयते " तात्पर्य यह कि श्री चन्द्रावली उन्हें अतिशय प्रिय हैं। प्रेम की पराकाष्ठा वे उन्हीं में मानते हैं।

श्री ललिता की चर्चा भी भारतेन्दु जी के ग्रंथों में यत्र तत्र मिल जाती है। वे वीणावादन में प्रवीणा हैं। कभी कभी तांबूनादि की सेवा भी करती हैं। श्री राधा की नित्य सहचरी हैं। स्वभाव से शांत भगवान् की नित्य परिचर्या में रत हैं।

श्री यमुना पुष्टिमार्ग में 'तुर्यप्रिया' के नाम से प्रसिद्ध हैं। भारतेन्दु का यमुना वर्णन तो संपूर्ण काव्यमय है। वैसा यमुना वर्णन ब्रजभाषा में न पहले देखने में आता है न बाद में। इस प्रकार पुष्टिमार्गीय चारों ही स्वामिनियाँ उनकी आराध्यभूता हैं। यहाँ उनके काव्य ग्रंथों में चारों की चर्चा दिखाना प्रस्तुत प्रबन्ध का लक्ष्य है।

भारतेन्दु के काव्य में स्वामिनी राधा

भारतेन्दु के काव्य ग्रंथ सँयोग-वियोग शृंगार के सजीव चित्र हैं। स्वभाव से फबकड़ अलमस्त भारतेन्दु को काव्य रचना करते करते मानो अपनी परमाराध्या कृष्णप्रिया राधा का बीच बीच में ध्यान आ जाता है और वे प्रसंग को सँछित कर राधा-चर्चा करने लगते हैं। यहाँ उनकी आराध्या राधा को उनके प्रत्येक ग्रंथ में बताने की चेष्टा की जायेगी।

भक्तसर्वस्व

श्रीराधा रमन उदार पदध्यान सकल कल्याण कर । १

प्रेममालिका

इस ग्रंथ में भारतेन्दु ने श्रीराधा के प्रेम, अमि-
सार, मान आदि का वर्णन तो किया ही है साथ श्रीकृष्ण एवं ब्रज लीला ब्रज
सम्बन्धी किसी वस्तु को नहीं छोड़ा है। एक प्रकार से यह सषय समय पर लिखे
स्फुट पदों का संग्रह ग्रंथ है। इस ग्रंथ में दानलीला, दशावतार, सैदिता के पद,
अद्वय सैदेश सभी कुछ समाविष्ट हैं। सौ पदों का यह ग्रंथ प्रेम के विविध रूपों को
अपने में पकार हुए हैं। उदाहरणार्थ- यहाँ राधा सम्बन्धी कतिपय प्रस्तुत किये
जा रहे हैं :

१- आजुउठि मोर वृषभानु की नैदिनी,

फूल के महल तैं निकसि ठाढ़ी मई ॥ १

२- राधिका पौढ़ी ऊँची अटारी

पूरत चंद उद्यौ नम मँडल फैली बदन उजारी ॥ ३

प्रस्तुत पद में तो भारतेन्दु सुदृढ़ भाव एवं
स्पष्ट शब्दों में अपने को पुष्टिमार्गीय वैष्णव स्वीकार करते हैं। पुष्टिमा-
र्गीय अनन्यता लिए वे कहते हैं :

३- हम तो मोल लिए या घर के ।

दास दास श्रीविल्लम कुल के चाकर राधा वर के ॥ ४

माता श्री राधिका पिता हरि बैधु दास गुन करके ।

१- भक्तसर्वस्व छप्पय १

२- प्रेममालिका पद सं० १८

३- , , ७१

“ हरीचंद ” तुम्हरे ही कहावत नहीं बिधि के नहीं हर्के ॥ १

४- राधा का विवाहिता (स्वकीया रूप)

चलो सखि मिल देस जैये दुल्हन राधा गौरी जू ।

कौटि रमा मुख कबि पै वारी मेरी नवलकिसौरी जू ॥ २

कार्तिक स्नान

जय वृष्णमानु नंदिनी राधा । ३

प्रेमाश्रुवर्णन

इस ग्रंथ में “ मानलीला ” वर्णित है।

१- श्री राधे सबकौ मान एह हर्यौ ।

अरी सुहागिन मेरी तू जब सैदुर तिलक धर्यौ ॥

गिरे गरब परबत ज्वतिन के रूप गरूर गिर्यौ ॥ ४

२- वृष्णमान कुमारी लाड़िली प्यारी भूळत है सैकत हो ॥ ५

प्रेम माधुरी

१- मैं वृष्णमान पुरी की निवासिनी मेरी रहै बृज बीथिन भावरी ॥ ६

१- प्रेममालिका पद सँ० ३५

२- ,, ६४

३- कार्तिकस्नान पृष्ठ सँ० ७६ (मार० ग्रंथा० ख०२)

४- प्रेमाश्रु वर्णन प० सँ० १६

५- ,, ४२

६- प्रेममाधुरी पद सँ० ५६

प्रेम तरंग

१- राधा जी हो वृष्णभान कुमारी ।

कौटि कौटिससि नख पर वारी कीरति दृग उजियारी ॥ १

प्रेम प्रलाप

प्रेम प्रलाप भारतेन्दु का मस्ती में लिखा ग्रंथ है। विभिन्न रागों में विभिन्न प्रसंगों के पद इस ग्रंथ में निबद्ध किये गए हैं। संस्कृत अष्टपदी में लिखा उनका एक मधुरतम पद -

१- रासे रमयति कृष्ण राधा ।

हृदि निधायणाढा निगन कृत हृत विरहातप-बाधा ॥ २

गीत गोविंदानंद

१- जय जय हरि राधा एस कैलि ।

तरनि तनूजा तट इकंत मैं बाहु बाहु पर मैलि ॥ ३

२- तुम वियोग अति व्याकुल राधा ।

मिलि हरि हरहु मदन मद बाधा ॥ ४

३- माधव ढिँग बलि राधा प्यारी ।

बिलस पिया गल मैं भुज डारी ॥ ५

४- राधा कैलि कुँज मँह जाई । ६

प्रस्तुत ग्रंथ में चौबीस अष्ट पदियाँ हैं। सभी

राधापरक हैं।^७

१- प्रेमतरंग पद १

२- प्रेमप्रलाप पद ५७

३- गीतगोविंदानंद पद १३

४- ,, २२

५- ,, ३४

६- ,, ३५

सतसई सिंगार

भारतेन्दु का यह ग्रंथ बिहारी सतसई की छाया पर लिखा गया है। बिहारी के शृंगारपदों पर भारतेन्दु की छप्पय शैली में प्रायः सभी छट्पदी लिखी गई हैं। प्रारंभ में राधा नाम से मंगलाचरण किया गया है। उदाहरणार्थ-

मेरी भव बाधा हरी राधा नागरि सोइ ।
जातन की फाँई परें स्याम हरित दुति होइ ॥
स्याम हरित दुति होइ परें जा तन की फाँई ।
पाय फलोटत लाल लखत साँवर कन्हाई ।
श्री हरिचंद वियोग पीत पट मिलि दुति टेरी ।
नित हरि जा रंग रंगे हरी बाधा सोइ मेरी ॥ १

हौली

विभिन्न वासन्तिक रागों में लिखा गया ७६ पदों का यह ग्रंथ भारतेन्दु के मस्त स्वभावका परिचायक है। राधा सम्बन्धी एक पद प्रस्तुत है :

हम चाकर राधा रानी के ।
ठाकुर श्री नंदनंदन के वृषभान लली ठकुरानी के ।
निश्चय रहत बंदत नहीं काहू डर नहीं डरत भवानी के ।
“ हरीचंद ” नित रहत दिवाने सूरत अब निवानी के ॥ २

मधु मुकुल

यह भी वासन्तिक क्रीड़ाओं को समाहित किये

१- सतसई सिंगार (भा० ग्रं० सौ २ पृ० ३३१) छप्पय सौ १

२- हौली (“ ३६५) पद सौ ११

विविध राग रागिनियों में निबद्ध ८१ पदों, छंदों, अष्टपदियों का ग्रंथ है। राधा की चर्चा इस ग्रंथ में भरपूर मिलती है।

१- खल्लत वसंत राधा गोपाल ।

२- श्री राधा आई कुंज धाम ।

३- रंगीली मचि रही दुहुँ विसि होरी ।

स्त हरि उत वृषभानु किसोरी ।

४- कुंज बिहारी हरि संग खल्लत कुंज बिहारिनि राधा ॥१

राग संग्रह

भारतेन्दु का यह ग्रंथ एक प्रकार से समग्र रूप में पुष्टिमार्गीय है। बधाइयाँ (आचार्य जी, स्वामिनी जी आदि की) रघ यात्रा व्याहृता आदि अनेक विषय हैं। यह ग्रंथ १४१ पदों का है।

१- विवाहान्त आशीष-

चिरजीवी यह जोरी जुग जुग चिरजीवी यह जोरी ।

श्री जसुदानंदन मनमोहन, श्रीवृषभानु किशोरी ॥ २

२- जय श्री मोहन प्रान प्रिये ।

श्री वृषभानु नंदिनी राधे ब्रज कुल तिलक प्रिये ॥३

इस प्रकार वर्णा विनोद , प्रेम फुल्लवारी, विनय प्रेम पत्तासा, कृष्ण चरित्र आदि सभी ग्रंथों में भारतेन्दु ने राधा की पुष्टिमार्ग में स्वीकृत स्वकीया भाव से भरपूर चर्चा की है। किन्तु 'तन्मय लीला' नामक ग्रंथ में तो वे प्रेम की पराकाष्ठा पर पहुँच गए हैं। नमूने के

१- मधु मुकुल पद ३ , ४७, ७१

२- राग संग्रह पद २५

३- , , ३३

४- हरिश्चन्द्र मैगजीन में प्रकाशित जनवरी १८७४ (भा० ग्रं० भाग २ पृ० ६५६)

के कतिपय पद यहाँ प्रस्तुत हैं :

१- राधे श्याम प्रेम रस पीनी ।

नहिँ मानत करु गुरु जन की, मय लोकलाज तजि दीनी ।

मगन रहत हरि रूप ध्यान मैं जलपथ की गति लीनी ।

हरीचंद बलि प्रेम सराहत तनकी सुधि नहिँ कीनी ॥

२- राधे मई आपु धनश्याम ।

आपु कौँ गोविंद कहत है कौँडि राधिका नाम ।

३- प्यारी अपुनो ध्यान बिसार्यौ ।

श्री राधे श्री राधे कहिकै कुँजन जाइ फुकार्यौ ॥

४- सखी सब राधा के गृह आई । १

इसी प्रकार रानी कृष्ण लीला, प्रबोधिनी, लावनी, स्वरूप चिन्तन, वेणुगीति, स्फुट कविताएँ आदि में श्री राधा की प्रभूत चर्चा मिलती है। तात्पर्य इतना ही है कि भारतेन्दु अपनी आराध्या कृष्ण प्रिया राधा को गल्दश्रुभाव से लगभग सभी ग्रंथों में स्मरण करते हैं। उनका राधा भाव पुष्टिमार्गीय पद्धति पर ही आश्रित है।

भारतेन्दु के ग्रंथों में अन्य स्वामिनियाँ

चंद्रावली

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है पुष्टिमार्गीय द्वितीय स्वामिनी चंद्रावली जी की आदर्श परकीया प्रेम भावना भारतेन्दु को अतिशय प्रिय थी। इसी कारण उन्होंने चंद्रावली जी को 'नायिकात्व' प्रदान करने के लिए चंद्रावली नाटिका की रचना की थी। अपनी इस नाटिका

मैं उन्होंने एक प्रकार से चारों ही स्वामिनियों को और तीन को विशेष रूप से चंद्रावली स्वयं, ललिता एवं यमुना सभी को लपेट लिया है। चंद्रावली नाटिका में ललिता चंद्रावली जी की सहचरी रूप में एवं श्री यमुना अपने आधिभौतिक रूप में मुख्य रूपसे वर्णित हुई हैं। फिर भी उनके काव्य में श्री राधा के अतिरिक्त इन तीन स्वामिनियों को पर्याप्त महत्त्व दिया गया है।

भक्त सर्वस्व

चंद्रमानु नृपमंदिनी चंद्राननि सुकुमारि ।

कृष्णचंद्र मन हारिनी जय चंद्रावलि नारि ॥ २

प्रेममालिका

दोऊ कर जोरे ठाढी बिहारी ।

मान कह्यौ तजि मान मया करि सुनि चंद्रावलि प्यारी ॥ ३

वर्णा विनोद

आजु ब्रज बाजत महा बधाई ।

परम प्रेमनिधि श्री चंद्रावलि चंद्रमानु नृप जाई ॥

०

०

प्रांटी सखी स्वामिनी की ब्रज सब मिलि नाचत गाई ॥ ४

प्रातः स्मरण स्तोत्र

सुमिरौ श्री चंद्रावली मोहन प्रान पियारी ।

श्री ललिता रस ललिता परम जुगल हितकारी ॥ ५

१- चंद्रावली नाटिका भारतेन्दु नाटकावली पृ० ४६१-५७३

२- भक्त सर्वस्व (भा० ग्रं० ख० २) पृ० ५ दोहा ७

३- प्रेममालिका पृ० ५३

४- वर्णा विनोद - बधाई पृ० ५१२

५- प्रातः स्मरण स्तोत्र (श्री गोपीजन स्मरण) २ (भा० ग्रं० ख० २) पृ० ७२७

स्वामिनी ललिता

ललिता स्वामिनी के० नाम की अन्य स्वामिनियों की अपेक्षा कम ही चर्चा हुई है। श्री ललिता वीणा वादन निष्णात हैं। वे तबल (बीरी) की सेवा भी करती हैं :

संगम गुन गावत ललितादिक बाजतबीन तीन सुर ग्राम । १

सहचरियों में ललिता श्रेष्ठ एवं गायन वादन के अतिरिक्त अन्य कलाओं में भी निपुण हैं। वे पति- पत्नी की सदैववाहिका मानादि में प्रिया प्रियतम को यथावसर मिलाने वाली हैं :

ललिता बनि ज्योतिषी बतावत समय पै हो फेर ।

बाल तरुमई मिल पुन्य कून अति थोड़े ही बेर ॥ २

कृद्मवेष धारण करने में ललिता अग्रणी हैं। ऊपर ज्योतिषी रूप की चर्चा हो चुकी है। कृद्म लीला का एक पद यहाँ उद्धृत किया जाता है :

तब ललिता एक बुद्धि उपाई ।

सुनरी सखी बात एक सोची सो मैं तुम सौ कहत सुनाई ॥ ३

कृद्मवेष के अतिरिक्त ललिता गायन वादन में भी निपुण हैं। यह ऊपर कहा जा चुका है :

ललिता बीन बीन मधुर सुर सौ कहु गावत ।

बैठि विसाखा कोमल करन मृदंग बजावत ॥ ४

१- प्रेममालिका पृ० ५२ (मा० ग्रं० ख० २)

२- रागसंग्रह पृ० ४६६ (,)

३- देवी कृद्म लीला पृ० ६३७ (मा० ग्रं० ख० २)

४- प्रबोधिनी पृ० ६८१ (,)

ललिता स्वामिनी भी हैं सहचरी भी । शरद
रास एवं दीपावली एवं प्रबोधिनी आदि की सेवाएँ सब ललिता स्वामिनी के
यूथाधिपात्व में संपन्न होता है। पुष्टिमार्ग में श्रीललिता का भावावतार
स्वीकार किया गया है। ये अनी सखी कही जाती हैं और निरुज लीलाधि-
कारिणी हैं। इनके परिकर में १७ सहचरियाँ हैं। ध्यान है-

राधे । तव प्रिय सखीं च गुरुं सखीनाम्

तां ब्रूल भक्ति ललितां ललितां नमामि ॥ १

संप्रदाय की ललिता विषयक इस महामान्यता
के कारण ही भारतेन्दु ने अपने काव्य में जहाँ जहाँ भी श्रीराधा की चर्चा की
है वहाँ ललिता सखी की ओर भी संकेत किया है। चंद्रावली तो चंद्रमान
गोप की पुत्री हैं ही ।

श्रियमुना

पुष्टिमार्ग में श्री यमुना का बढ़ा ही महत्त्व-
पूर्ण स्थान है। वे श्रीकृष्ण की तुर्य प्रिया हैं। आचार्य ने अपने षोडश ग्रंथों
में सर्वप्रथम यमुनाष्टक ही लिखा और उन्हें 'सकल सिद्धि हेतु मुदा' कहकर
प्रणाम किया है। पुष्टिमार्ग में अणिमादि अष्ट सिद्धियों से पृथक् भक्ति-
मार्गीय अष्टसिद्धियाँ स्वीकृत हैं। वे हैं-

- १- सेवोपयो गिदेहादि
- २- तल्लीलावलोकनत्व
- ३- तद्रसानुभवत्व
- ४- सर्वात्मभाव
- ५- भगवत्त्वशीकरणत्व

६- भगवत्प्रियत्व

७- भक्तिदातृत्व

८- भगवद् रस पोषकत्व

श्री यमुना तरणि तनया अर्थात् सूर्यपुत्री हैं अपने आधिमौक्तिक रूप में कन्दर्प पर्वत से उद्भूत हैं। भगवान् कृष्ण की जल विहार की साधिका होने से उनके श्रम सीकरी को अपने में आत्मसात् किए हुए हैं। इसीलिए वे कृष्ण सँस्पर्शी दात्री हैं। सुकुंद रति वर्द्धिनी श्री यमुना को आचार्य ने 'अनंत गुणभूषिते', शिव विरिंचि देव स्तुते ध्रुव पराशरामष्टिदे^१ कहकर 'नितंब तट सुन्दरी कृष्ण की चतुर्थ प्रिया यमुना को प्रणाम किया है। इनके परिकर में- श्यामा-कृष्णादि से लेकर मनोहरा तक ६ सहचरियाँ हैं।^२ ऐसा संप्रदाय में प्रसिद्ध है कि जब जब किसी जीव का ब्रह्म संबन्ध होता है तो श्री यमुना जी की वाम भुजा फट्कती है। इस प्रकार वे भगवत्संबन्ध कराने में परम सहायिका मानी गई हैं।

भारतेन्दु ने अपनी चंद्रावली नाटिका में तो यमुना वर्णन किया ही है^४ अपने काव्य में उन्होंने यमुना के तीनों ही रूपों आधिमौक्तिक, आध्यात्मिक एवं आधिदैविक का चित्रण किया है। श्री राधा कृष्ण की अनन्त कैलि क्रीड़ाओं का मुक्त स्थल श्री यमुना का विस्तृत तट ही तो है। भारतेन्दु प्रेममालिका में लिखते हैं-

यमुना जू की तिवारी चहु सखि ।

तेरो मग जोहत मनमोहन सुंदर गिरिवर धारी ।

१- यमुनाष्टक (णी० ग्रं०) श्लोक ४

२- यमुनाष्टक श्लोक सँ० ३

३- श्रीनाथ सेवा रसोदधि पृ० ६

४- चंद्रावली नाटिका (भारतेन्दु नाटकावली पृ० सँ० ५५६-५५७)

स्वयं श्रीकृष्ण वहाँ पहिले ही से उपस्थित हैं-

ठाढ़े हरि तरनि तनैय्या तीर ।

सँग श्री कीरति कुमारी पहिनि भनी चीर ॥ १

कार्तिक महहात्म्य में

(अ) आजु तरनि तनया निकट परम परमा प्रगट

ब्रज बधुन मिलि रची दीप माला ।

(आ) जमुना जल बढ़ी दीप कबि मारी ।

प्रति बिंबित प्रति बिंब लहरि प्रति सहै राजत पिय प्यारी ॥ २

अपने गीत गीतगोविन्दानन्द ग्रंथ में भारतेन्दु ने जयदेव का भाव भाषानुसरण किया है उसमें सभी अष्टपदियों में जहाँ जहाँ श्रीराधाकृष्ण विहार की चर्चा है यमुना स्वाभाविक रूप से ही चर्चित हो गई है :

माधावनवरमनी सँग लीने ।

बैसीबट यमुना तट बिहरत रति रन जय रस भीने ॥ ३

रास क्रीड़ा के लिए तो श्री यमुना का तट

प्राप्त है ही -

(अ) वृंदावन उज्जल बर जमुना तट नंद लाल ।

गोपि सँग रहस रच्यौ सरद जामिनी ॥

१- प्रेममालिका पृ० ६२-५२

२- कार्तिक स्नान पृ० ८२-८४

३- गीतगोविन्दानन्द पृ० ३२० (भा० ग्रं० सौ०२)

(आ) लसि ससि आजु राधिका रास ।

जमुना पुलिन सरल कौमल कल जहँ मल्लिका विकास ॥ १

इस प्रकार रास- विलास में श्री यमुना नित्य
और अनिवार्य सहचरी हैं।

यमुना के आध्यात्मिक (माहात्म्य जन्य)
रूप का वर्णन करते हुए कृष्ण चरित्र में भारतेन्दु लिखते हैं :

जयति यमुना मिलित नलित गी ।

सदा दास हरिचंद जन पक्षपाते ॥ २

एक स्थान पर प्रातः स्मरण मंगल पाठ ग्रंथ
में वे लिखते हैं :

मंगल जमुना नीर कमल मंगल मय फूलै ।

मंगल सुंदर घाट बंधि भवैरे जहँ भूले ॥ ३

अन्त में यमुना के आधिदैविक स्वरूप का निरूपण करते हुए भारतेन्दु अपने वैष्णु गीति में लिखते हैं :

अहो सखि जमुना की गति ऐसी ।

सुनत मुकुंद गीत मधु श्रवनन बिबल ह्वै गहँ कैसी ॥

भँवर पड़त सो काम बेग सौ थकित होत गति भूली ॥

तट निचास अँकुरित देखियत सोह रोमावली फूली ॥

१- राग संग्रह पृ० ४६४ (भा० ग्रं० ख०२)

२- कृष्णचरित्र पृ० ६११ (भा० ग्रं० ख० २)

३- प्रातःस्मरण मंगलपाठ पद ८ (पृ० ६४४)

चुंबन हित धावत लहरन सौं करै कमल अनेक ।
 मानहुँ पूजन हैत चरन कौं यह झक कियौ बिबेक ॥
 चरन कमल के सहस जानि तेहि निसि दिन उर पै रासै ।
 हरीचंद जहँ जल की यह गति अबलन की कहा भासै ॥

निष्कर्षतः इतना ही कथन पर्याप्त है कि भारतेन्दु ने पुष्टि भक्ति में श्री यमुना का जो महत्त्व पूर्ण स्थान है उसे मली भाँति आत्मसात् किया था, इसी कारण वे यमुना को अपने काव्य में पूरा महत्त्व देते हैं। यमुना के आधिभौतिक (जन्मप्रवाह) रूप में प्रकृति सौंदर्य आध्यात्मिक (माहात्म्य) रूप में मानस सौंदर्य एवं आधिदैविक रूप में गोचर सौंदर्य की अनुभूति फे फे होती है।

भारतेन्दु काव्य में आचार्य वल्लभ

पुष्टिमार्गीय भक्ति एवं शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के प्रवर्तक आचार्य वल्लभ के प्रति भारतेन्दु ने असीम निष्ठा एवं भक्ति भावना का परिचय दिया है। उनके लगभग सत्तर काव्य ग्रंथों में केवल १७-१८ ग्रंथ ही पुष्टि मार्गीय प्रसंग वाले हैं। शेष पचास बावन ग्रंथों में स्वमार्गीय रूप स्पष्ट रूप से देखने को मिल जाती है। इन ग्रंथों में भी ८-१० तो विशुद्ध पुष्टि भक्ति, पुष्टि भक्ति तत्त्व एवं आचार्य वल्लभ को लेकर चले हैं। गौ० विट्ठल नाथ जी के सर्वोत्तमस्तोत्र का तो उन्होंने 'भाषान्तर' ही कर डाला था। यह ग्रंथ पूर्णतः आचार्य वल्लभ के महान् गुणों निज व्यक्तित्व एवं उनके दुर्लभ कृतित्व का प्रामाणिक परिचय देने वाला है। इस ग्रंथ का पुष्टिमार्ग में गायत्री मंत्र जैसा मान सम्मान है। भारतेन्दु ने आचार्य के प्रति जिस असीम निष्ठा का परिचय दिया है वैसा आधुनिक काल के किसी ब्रज भाषी अथवा हिन्दी के कवि में

दृष्टिगोचर नहीं होता ।

भक्त सर्वस्व उनका प्रारम्भिक ग्रंथ है। उसमें वे लिखते हैं-

श्री वल्लभ हैं अनल वसु तहाँ सरन जे जात ।

ते मम पद पावत सदा येहि हित कूँड लखात ॥ १

प्रेममालिका में उन्होंने धड़ले के साथ घोषणा की है :

हम तो मौल लिये या घर के ।

दास दास श्री वल्लभ कुल के चाकर राधा वर के ।

माता श्री राधिका, पिता हरि, बंधु दास गुन कर के ।

हरीचंद तुम्हरे ही कहावत नहीं बिधि नहीं हरके ॥ २

उत्तरार्द्ध भक्तमाल में उन्होंने "वल्लभ केसरी" को इन शब्दों में नमन किया है :

मायावाद-मर्तग मद हस्त गरजि हरि नाम ।

जयति कोऊ सौ केसरी वृंदावन बन धाम ॥

तम पासैं हैं हस्त करि जन मन जलज बिकास ।

जयति जलौ किक रवि कोऊ श्रुति पथ करन प्रकास ॥ ३

वल्लभीय मार्ग की परंपरा देते हुए वे लिखते हैं :

यह मार्ग हूबत निरखि जिन प्रगटायो रूप ।

१- भक्तसर्वस्व- (अग्नि कूँड को चिह्न दो० १) भा० ग्रं० सँ० २ पृ० १७

२- प्रेममालिका पद ३५ (भा० ग्रं० सँ० २ पृ० ५६)

३-भक्तमाल उत्तरार्द्ध दोहा २२-२३ पृ० २२५ (भा०ग्रं० पृ सँ०२)

नमो नमो गुरुवर चरन श्रीवल्लभ द्विज रूप ॥ १

आगे उन्होंने लिखा है-

यज्ञ नारायण कुलमनि लक्ष्मण भट्ट तनूमव ।
हलम्पगारु गर्भ रत्न सम श्री लक्ष्मीधव ॥
श्रीगोपीनाथ विट्ठल पिता भाष्यादिक बहु ग्रंथकर ।
श्रीविष्णुस्वामि पथ उद्धरण जै जै वल्लभ राजवर ॥ २

भक्तमाल की उपर्युक्त षट्पदी में भारतेन्दु ने
आचार्य श्री का पूरा परिचय दिया है साथ ही गो० विट्ठलेश, गोपीनाथ
जी आदि का परिचय देते हुए 'जय वल्लभ कुलकलफार' कह कर वल्लभ वैश
की बिंदु परंपरा को भी आचार्य वल्लभ जैसा ही महत्त्व दिया है ।

श्री वल्लभ विट्ठल बिनु दूजो नैह निबाहन हारनहीं ॥ ३

उनका अटल सिद्धान्त था । वे श्री वल्लभ को अपना सर्वस्व मानते थे :

श्री वल्लभ प्रभु मेरे सरबस
फवौ वृथा करि जोग जाय कोउ
हमको तो हक यहै परम रस ॥ ४

केवल आचार्य वल्लभ पर ही नहीं वल्लभ कुल
समग्र पर उनकी आस्था है। चाहे वह बिंदु परंपरा हो अथवा नाद परंपरा के
अन्तर्गत तदीय वैष्णव समाज । वे कहते हैं :

१- भक्तमाल उत्तरार्ध दोहा ३३

२- ,, षट्पदी ६०

३- प्रेमप्रलाप पद ४६

४- ,, पद ५२

चिर जीयो मेरो वल्लभ कुल
माया मतसर तिमिर दिवाकर
प्रेम अमृत पय रस सागर पुन । १

भारतेन्दु ने गुजराती ढोल पद्धति पर गुजराती
भाषा में भी अपने वल्लभ के गुणगान किये हैं :

‘वहाला वल्लभ सुमिरण करताँ सह दुख भागै कै ।
जेनो मंगलमय शुभनाम समृत जेवो लागै कै ॥

०

०

म्हारा लक्ष्मन नंदन प्यारा गुरु केहवाय के ।
जेना पद रज पर हरिचंद बलि बलि थाय के ॥ २

आचार्य वल्लभ की शरण ग्रहण करने से ही
जीव को प्रेम लक्षणा भक्ति का कुछ ज्ञान होना संभव है। जान हो जाने पर
फिर उसे कुछ करना नहीं रह जाता । भारतेन्दु बड़ी दृढ़ निष्ठा से कहते हैं-

पै श्रीवल्लभ चरन सरन जो होय सोई कछु जानै ।
जो यह जानै सो फिर जग में और नहीं उर आनै ।
बिनु श्री बल्लभ कृपा कोर यह निरखेहू नहिँ सूझै ।
जिमि गैवार मनि हाथ लेहू पै ताको मौलन बूझै ॥ ३

भारतेन्दु का अटल विश्वास है कि वे जो भी
काव्य रचना करते हैं उसमें श्रीवल्लभ के रज-प्रताप की महिमा ही कारण
भूता है-

१- प्रेमप्रताप पद ५१

२- ,, ५६

३- मधुसूदन पद ४८

श्रीवल्लभ पद रज प्रताप सौ यह लीला कहि गार्ह ।

0

0

केवल श्रीवल्लभ पद किंकर हरीचंद से दासा ।

रहि हैं यह रस सने सदा मांगित बरसाने बासा ॥ १

आचार्य वल्लभ के स्वरूप का ज्ञान वल्लभीय
वैष्णवों के सतत संग अथवा तदीयों के साहचर्य से ही संभव है।

वे कहते हैं-

श्री वल्लभ प्रभु वल्लभियन बिन तुम्हें कहा कोऊ जानै हो ।

निज निज रुचि अनुसारहि सबही कहू, को कहू अनुमानै हो ॥ २

वे वल्लभ को 'ज्ञानी माष्यकार' के नाम
से पुकारते हैं :

'ज्ञानी माष्यकार आतमरत विषय विरत अभिन्नासै हो ॥ ३

'राग संग्रह' ग्रंथ में वे लिखते हैं-

श्री वल्लभ की सरि कहै कौन ?

प्रगटे प्रभु गुविन्द मन वाहक भक्त कारनै जैन ॥ ४

'विनय प्रेम पचासा' में उन्होंने अपना सिद्धान्त बताते हुए कहा है कि
श्री राधा कृष्ण की युगल केलि का मर्म श्री वल्लभीय वैष्णव समाज की कृपा

१- मधुसूक्त पद ४८

२- ,, (वसन्त) पद सौ ७५

३- ,, ,,

४- राग संग्रह पद संख्या १२४

बिना नहीं हृदयगम हो सकता -

जुगल कैचि रस वल्लभियन बिनु और कहा कोऊ जानै ।

बिनु अधिकारी कौन और या गुप्त रसहि पहिचानै ॥१

पुष्टिमार्ग कृपा साध्य है। साधन साध्य नहीं। प्रेम की अक्षय निधि श्री वल्लभ के चरणारविन्द की कृपा के बल से ही प्राप्य है :

साधन जिते जगत में गार तिनको फल कहु औरै ।

यह तो उनकी कृपा साध्य हूँ, साधन करै सो बौरै ॥

०

०

हरीचंद बिनु वल्लभ पद बल यह निधि नहीं लहि जाई ॥२

आचार्य वल्लभ के निजी आराध्य श्री नव नीति प्रिय थे। उनकी कृपा श्री वल्लभ की कृपा बल से ही प्राप्य है-

जिन नहीं श्रीवल्लभ पद गहे ।

ते भव सिंधु धार में साधन करत करत हू बहे ॥

परम तत्त्व जानत नहीं कोऊ जद्यपि शास्त्रन कहे ।

ते इनके किंकर जन ही के कर अमलक ह्वै रहे ॥

नवनीति प्रियहाथ लगतनहि स्तुति पयबरबस महे ।

हरीचंद बिनु वैश्वानर बल करम काठ किन दहे ॥३

वे प्रतिदिन अपनी दिनचर्या में श्री वल्लभ के

१- विनय प्रेम पचासा (भा० ग्र० खै०२ पृ० ५३८)

२- ,, पद ४ (,, ५३६)

३- ,, पद ११ (,,)

मुखारविंद को ही देखना चाहते हैं। कृष्ण चरित्र में वे कहते हैं :

आनंद निधि सुख निधि सोभा निधि बल्लभ वदन विनोकी ।

मंगल परम भक्त सुखदायक तृप्ति करन जल नैन चकौर ॥ १

परमाराध्य श्री श्रीनाथ स्तुति में-

जयति बल्लमी बल्लम बल्लम बल्लम बल्लम ।

तात्पर्य यह कि भारतेन्दु के लगभग पचास काव्यग्रंथों में आचार्य बल्लम उनके व्यक्तित्व, कृतित्व की बड़े गल्दश्रु भाव से चर्चा की गई है। आचार्य के प्रति भारतेन्दु की निष्ठा की पराकाष्ठा उनके लगभग प्रत्येक ग्रंथ में चर्चित है। साथ ही उन्होंने आचार्य बल्लम के दोनों पुत्रों- श्री गोपी नाथ जी एवं गो० विट्ठल नाथ जी की भी सरस चर्चा की है। गो० विट्ठलेश की चर्चा भी यहाँ भारतेन्दु के ग्रंथों में बताने की चेष्टा की जायेगी ।

श्री गोपीनाथ जी एवं द्वितीय पुत्र श्री गो० विट्ठलेश की चर्चा उनके ग्रंथ भक्त सर्वस्व में -

गोपीनाथ अनाथ गति जग गुरु विट्ठलनाथ ।

जयति जुगल बल्लम-तनुज गावत श्रुति गुन नाथ ॥ २

श्री गो० विट्ठलनाथ जी पुष्टिमार्गीय भक्ति सिद्धान्त के प्रथम व्याख्याता माने जाते हैं। अपने उत्तरार्ध भक्तमान में भारतेन्दु गो० विट्ठलेश की महिमा में निम्न षट्पदी प्रस्तुत करते हैं :

१- कृष्ण चरित्र पृष्ठ १२

२- भक्त सर्वस्व (भा० ग्रं०) दो० १३ पृ० ६

निज प्रेम पथ सिद्धान्त हरि विट्ठल वयु धरि कै कह्यौ ।
 श्री श्री वल्लभ सुख विप्रकृत तिलक जगत बर ॥
 माया मत तमत्तौम विमर्दन ग्रीष्म दिवाकर ।
 जन चकोर हित चंद भक्ति पथ भुव प्रगटावन ।
 अंतरंग सखि भाव स्वामिनी दास्य दृढावन ।
 देवी जन मिलि अवलंब छिड़ छक जा पद दृढ़ करि गह्यौ ।
 बिज प्रेम पथ सिद्धान्त हरि विट्ठल वपुधरि कै कह्यौ ॥ १

भारतेन्दु की उपर्युक्त षट्पदी में पुष्टिमार्गीय
 उस मान्यता को पुष्टि मिल जाती है जो गो० विट्ठलेश को भगवद्रूप कहती
 चली आयी है। अपने प्रेम प्रलाप में भारतेन्दु ने गो० विट्ठलनाथ जी के प्रति
 असीम भक्ति भावना का परिचय देते हुए लिखा है :

कहू रे श्रीवल्लभ राजकुमार ।
 दीन उधारन आरति नासन प्रगट कृष्ण अवतार ।
 काहें तू मरमायो डोन्त साधन करत हजार ।
 यह भव रुज बयौ हू नहि जैहैं बिना चरन उपचार ।
 ० ०
 हरीचंद त्रासौं बिट्ठल भजु अरे यहै श्रुति सार ॥ २

'राग संग्रह' ग्रंथ के दीनता माहात्म्यवाचि
 पदों में उन्होंने सदन्य गो० विट्ठलेश को नमन किया है-

गुन गन बिट्ठलनाथ के कहैल गि कोऊ गावै ।

१- उत्तरार्द्ध भक्तमाल षट्पदी ६१ पृ० २२६

२- प्रेमप्रलाप पद ४८ पृ० २८८

अमित महिम लघु बुद्धि सौं करु कहत न आवै ॥
 देवी जन अपौ किये, कनि जीव उबारै ।
 माया तिमिर मिटायकै खल कोटि उधारै ॥ १

भारतेन्दु के पाँच षट्पदियों के 'अपवर्ग' पैचक 'नामक ग्रंथ में उनके प्रसिद्ध ग्रंथ विद्वन्मण्डन की चर्चा मिलती है । गो० विट्ठलेश का यह ग्रंथ पुष्टि सिद्धान्त का परिचायक उच्च कोटि का सिद्धान्त ग्रंथ है :

बल्लभ नंदन भक्ति मार्ग प्रगटन बुध बोधक ।
 भावाश्रय रस पुष्टविष्णुस्वामी पथ शोधक ॥
 विद्वन्मुख मंडन करन वितण्डावाद बिनासक ।
 बिट्ठल बिट्ठल सोई भाखिए सैंक तजै हरिचंद जिमि ।
 तुम नाम पवर्गी पाछै प्रभु अपवर्गी गति देत किमि ॥ १

भारतेन्दु ने न केवल आचार्य बल्लभ खं गो० विट्ठलनाथ जी की ही चर्चा की है अपितु गो० विट्ठलेश के सातों पुत्रों की बधाइयाँ गाई हैं।

श्रीगिरिधर जी

१- सदा तुम मायावाद निवारै ।

० ०

श्री गिरिधर गिरिधर हवै प्रगटे पुष्पपथ गिरिधारै ॥

०

०

१- राग संग्रह पद २२ पृ० ४४५

२- अपवर्ग पैचक षट्पदी ५ पृ० ७५६

काशी में गोकुल करि दीन्हौ श्रुति रहस्य उच्चारै ॥१

(२) श्री बिट्ठल सुत गुननि धाम श्री रुक्मिणी जीवन प्रान ।

बन्दै श्री गिरिधर प्रभु षट् गुन संपन्न धीर ॥ १

(३) श्रीगोपीनाथ जी

श्री बल्लभ सुतप्रथम प्रगट लीला रस भाव ।

गुप्त जय जय श्री गोपीनाथ भक्तन सुखदाई ॥ ३

इस प्रकार भारतेन्दु ने गोविंद राय, बाल कृष्ण जी, गोकुल नाथ जी, यदुनाथ जी, रघुनाथ जी एवं घनश्याम जी की बधाइयों के पद गार हैं। उनके भक्तकाल उत्तरार्द्ध में आचार्य बल्लभ के चौरासी शिष्य एवं बिट्ठलनाथ जी के २५२ वैष्णव सेवकों पर लिखी षट् पदियाँ संगृहीत हैं।

गीता एवं भागवत

भारतेन्दु ने आचार्य बल्लभ के प्रस्थान चतुष्टय में से गीता एवं चतुर्थ प्रस्थान श्रीमद्भागवत को बड़े आदर के साथ स्मरण किया है और महत्त्व दिया है। आचार्य के प्रस्थान चतुष्टय हैं :

१- राग संग्रह पद सँ० १२० पृ० ४७८

२- ,, १२५ पृ० ४७९

३- ,, १२७ पृ० ४८०

४- ,, पद सँ० १३०, १३१, १३२, १३३, १२६ एवं १२९

पृ० सँ० ४७९-४८२

५- भक्तमाल उत्तरार्द्ध पृ० सँ० २२२- २६६ (भा० ग्री० सँ० २)

वेदाः श्रीकृष्ण वाक्यानि ब्रह्म सूत्राणि चैव हि ।

समाधि भाषाव्यास्य प्रणयितव्यम् ॥

(त० दी० नि० भा० प्र० १ श्लोक ७)

भारतेन्दु अपने भक्तमान उत्तरार्द्ध में लिखते हैं :

ककु गीता में भासि कै शुक हवै करुना धारि ।

कहीभागवत में प्रगट प्रेम रीति निरुवारि ॥ १

भारतेन्दु ने भागवत को तो अत्यन्त महत्त्व दिया है। वैष्णु गीति^२, के अतिरिक्त दशम स्कंध के चौर हरण^३, व्रत चर्या, रास क्रीड़ा, उद्धव गोपी संवाद (प्रेम गीत) गोचारण आदि प्रसंगों की भावमयी अवतारणा की है। सुबोधिनी की दशम स्कंधीय मंगलान्तरण की कारिका का तो मानो अनुवाद ही कर दिया है। कारिका है-

नमामि हृदये शेषे नीला चौरावधि शायिम् ।

लक्ष्मी सहस्र नीलामिः सेव्यमानं कलानिधिम् ॥ ४

भारतेन्दु लिखते हैं-

या सरोवर की हौं कहा सोभा करौ बखान ।

०

०

सदा अमृत पी के मगन रहत होत नहिं दीन ॥ ५

१- भक्तमान उत्तरार्द्ध पृ० २२३

२- वैष्णुगीति पृ० सं० ७४८ - ७५३

३- स्फुट कवितारें पद १२, १३ पृ० ८३१

४- दशम स्कंध सुबोधिनी कारिका ५

५- प्रेम सरोवर दोहा १८-२० पृ० १०४

इसी प्रकार भारतेन्दु ने पुष्टिमार्ग में मान्य वर्षात्सवों - चारों जयन्तियों की चर्चा की है।

कार्तिक स्नान^१, वैशाख माहात्म्य^२, अक्षय तृतीया^३, गंगा सप्तमी, नृसिंह चतुर्दशी^४, छिड़ोला^५, दशहरा, दीपावली^६, सैक्रांति^७, होली^८, रामनवमी आदि के वर्णन बड़े समारोह पूर्वक किये गए हैं।

वर्षात्सवों के पदों के अतिरिक्त नित्य सेवा की चर्चा भी भारतेन्दु के प्रातः स्मरण मंगल पाठ नामक ग्रंथ में मिल जाती है। गो० विठ्ठलेश का प्रसिद्ध पद मंगलार्ति के समय गाये जाने वाला "मंगलं मंगलं ब्रज भुवि मंगलम्"। भारतेन्दु को विशेष प्रिय था। "मंगलं मंगलं" की पुनरावृत्ति इसी कारण भारतेन्दु के ग्रंथों में अनेक स्थानों पर मिलती है। किन्तु उपर्युक्त ग्रंथ में मंगल भोग, मंगल आरती, राज भोग आरती, शयन आरती^९ के साथ गुरु स्मरण^{१०}, कैंठी, तिलक^{११} आदि की भी यथा स्थान यथा प्रसंग चर्चा की है। इसी ग्रंथ में उन्होंने गीता

१- प्रेम सरोवर पृ० ७६

२- ,, ,, ८६

३- ,, ६९

४- ,, ६५

५- ,, ४६६-५००

६- ,, ८३९

७- ,, ३७६-४००

८- ,, ७०० (श्रीराम लीला)

९- प्रातः स्मरण मंगल पाठ षट् पदी सं० २-६

१०- ,, १०-११

११- ,, १२

भागवत की चर्चा करते हुए भागवत को सुधा समुद्र पुकारा है। आचार्य की ज्ञान मुद्रा जो सुबोधिनी लिखते हुए चित्र में देखी जा सकती है उसकी भी चर्चा भारतेन्दु ने की है और इस प्रकार उनका सूक्ष्म निरीक्षण एवं मर्म को ग्रहण करने की प्रवृत्ति का पता लग जाता है।

पुष्टिमार्ग के प्रकीर्ण प्रसंग

भारतेन्दु ने पुष्टि भक्ति की दृष्टि से ग्वाल (गोप) गोपी, गाय, गोवर्धन, वैष्णु (बैसी) की चर्चाएँ भी की हैं। वे लिखते हैं :

ग्वाल गावें गोपी नाचें । प्रेम मगन मन आनंद राचें ॥

०

०

माखन दधि घृत दूध लुटावें। बार बार प्रसुदित उर चावें ॥ ३

बैसी

(अ) बैरिनि बाँसुरी फेरि बजी ।

(आ) बैसुरिया मेरे बैर परी ।

(इ) सखी हम बैसी क्यों न मर ।

(ई) बजन लगी बैसी कान्ह की ॥ ४

हटरी

हटरी सजि कै राधा रानी मोहन पिय को नै बैठावत ।

०

०

हाट लगाइ प्रेम की मोहन मन के बदले सौज दिखावत ॥ ५

१- प्रातः स्मरण मंगल पाठ षट् पदी सँ० १३-१८

२- ,, ,, ,, १६

३- स्फुट कवितारें पृ० ८३३

४- ,, पृ० ८३४-८३५

५-

पृ० ८६०

सेवा के उपक्रम में मकारी, बीड़ा कलेऊ^१,
सण्डिता^२, कुँज, निकुँज^३, गिरि गोवर्धन^४ (हरिदास वर्ण) ब्रज के तृण
वीरुध आदि की चर्चा का आधार भागवत के दशम स्कंध 'सरिच्छैलवनोद्देशः'^५
के आधार पर हुआ है ।

करनीकरुना सिंधु की कासों कहि जाई ।

अति उदार गुन मन मरे गोवर्धन राई ॥

०

०

-

-

ब्रज के मृग पशु मीन मी तृन बीरुध जेते ।

बंधु सरिस माने सबै करुनानिधि तेते ॥

घोष सीमंतिनी खंगोपी जनों के प्रति पूज्य भाव

१- श्री गौपी जन पद जुगल बँदत करि पुनि नैम ।

जिन जग में प्रगटित कियौ, परम गुप्त रस प्रेम ॥ ६

२- गौपि की बात कौ बखानौ कहा नंद लाल

तेरो रूप रोम रोम जिनके समाय गौ ॥ ७

१- प्रेमाशु वर्णन पृ० १२७

२- प्रेममालिका पृ० ६२

३- प्रेमाशु वर्णन पृ० ११७

४- प्रेम प्रलाप पृ० स् १ पद ३३ पृ० ४०७ वैष्णवी० पृ० ७५२

५- भागवत सुबोधिनी दशम स्कंध अ० ४४

६- भक्तमाल उत्तरा० दोहा २५ पृ० २२५

७- संस्कृत कवितारं पृ० ८२२

३- गोपिन बियोग अब सही नहीं जात मोपै ,

कब लीं निठुर होय कैन बान मारोगे ॥ १

मारतेन्दु के काव्य में लगभग संपूर्ण पुष्टि भक्ति के तत्त्व समाहित हैं। अष्टकाप के मूर्धन्य कवि सूर एवं कुंभनदास की भाँति वे राधा के लिमान, लीला, दान लीलादि के कुशल गायक हैं। श्रीकृष्ण की किशोर लीला के कुशल चित्ते मारतेन्दु ने अपने काव्य की परिसीमा अष्टकापी भक्त कवियों की भाँति गोकुल लीला तक ही सीमित रखी है।

उन्होंने मथुरा तथा दारका लीला के पराख प्रसंगोंका स्पर्श नहीं किया। वे प्रेम - साम्राज्य के एक मात्र कुधारी संयोग वियोग के गायक रहे हैं। लगभग ७० ग्रंथों में से पचास पचास के लगभग ग्रंथ राधा कृष्ण की लीला सुधा में पगे हुए उन्हीं के अनुराग में निमज्जित हैं। दीनता, विनय माहात्म्यादि की पुष्टिमार्गीय पद्धति का कठोर अनुसरण करते हुए वैआचार्य वल्लभ गो० विठ्ठलेश और उनके वंशजों की भक्ति में डूबे रहकर उन्होंने श्री गोपी जन वल्लभ श्रीकृष्ण की ही लीला का गान किया है। वे सिद्धान्ततः पुष्टि भक्ति को जीवन का चरम लक्ष्य मानते हुए "हरि लीला सब बिधि सुखदायी" में पूर्ण विश्वास रखते हैं। वे स्वयं अनन्य भक्त हैं, अतः अपनी चरम अनन्यता में उनकी अपने भगवान् से अपनी चरम वैष्णव भावना में एक मात्र यही याचना है :

भजौ तो गुपाल ही कौ सेवौ तो गुपान् एक,

मेरे मन लाग्यौ सब भाँति नंद लाल सौ ॥

मेरे देव देवी गुरु माता पिता बंधु दृष्ट

१- स्फुट कविताएँ पृ० ८२२

२- मार ० ग्रंथा० सौ० २ पृ० ७७०

मित्र सखा हरि नातो एक गोप बल सौ ॥

हरीचंद और सौ न मेरो संबध करु ,

आसरो सदैव एक लोचन बिसाल सौ ॥

मांगौ तो गुपाल सौ न मांगौ तो गुपाल ही सौ

रीझौ तो गुपाल पै औ खीझौ तो गुपाल सौ ॥ १

यही उनकी प्रेम साधता है। यही उनकी

अनन्यता है।

०००

१- विनय प्रेम पत्रासा कवित्त २१ (भा० ग्रं० खं० २ पृ० ५४४)

सप्तम अध्याय

भारतेन्दु के साहित्य पर शुद्धाद्वैत दर्शन

का प्रभाव

अध्याय सप्तम

भारतेन्दु के साहित्य पर शुद्धाद्वैत दर्शन का प्रभाव

शुद्धाद्वैत दर्शन भारतेन्दु का लक्ष्य नहीं था ।

अतः वे दर्शन के फव्वे में नहीं पड़े । प्रेम लक्षणा भक्ति विशुद्ध रूप से उनका लक्ष्य थी । इतने पर भी भारतेन्दु के काव्य में यत्र तत्र दार्शनिक सिद्धान्त बिखरे मिलने की जहाँ भी संभावना हुई है उन स्थलों का संकेत यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

शुद्धाद्वैत दर्शन में श्रीकृष्ण ही पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म हैं। आचार्य वल्लभ ने सिद्धान्त मुक्तावली में घोषणा की है -

परब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानन्दं बृहत् ।

द्विरूपं तद्धि सर्वं स्यात् स्कं तस्माद्विलक्षणां ॥ १

अर्थात् श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं। अक्षर ब्रह्म सच्चिदानन्दात्मक है। अक्षर ब्रह्म के दो रूप हैं- स्क जगत् है दूसरा उससे विलक्षण । श्रीकृष्ण उस अक्षर ब्रह्म से पर हैं। पूर्णानन्द हैं। अक्षर ब्रह्म से जगत् का आविर्भाव होने पर भी वह पूर्ण और निर्विकार रहता है। यही उसकी विलक्षणता है ।

भारतेन्दु के साहित्य में ब्रह्म का स्वरूप

भारतेन्दु के काव्य में पुरुषोत्तम की चर्चा

इस प्रकार आई है :

पुरुषोत्तम प्रभु मेरे स्वामी ।

पतित उधारन करुना कारन तारन सग पति गामी ।

फँस ज लोचन भवदव-मोचन, जन रोचन अमिरामी ॥

हरीचंद सैतन के सरबस बकसहु चरन गुलामी ॥ १

यहीपुरुषोत्तम मोर मुकुट धारी, गोप,
गोपीजन प्रिय , गोकुल विहारी हैं :

सखी पुरुषोत्तम मेरे नाथ ।

मोर मुकुट सिर कटि पीतांबर, सुंदर मुरली हाथ ।

गल बन माल गोप गोपी जन, गरु बच्छ चियेसाथ ।

हरीचंद पिय करुना सागर बिज जन करन सनाथ ॥ २

यही पुरुषोत्तम उनके " अपवर्ग पैचक " में
इस प्रकार चित्रित हैं :

परम पुरुष परमेश्वर पद्मापति परमाधर ।

पुरुषोत्तम प्रभु प्रतपाल, प्रिय पूज्य परात्पर

पदम नयन अठ पदमनाथ पालक पाँडव पति ।

पूर्ण प्रतनाघातक प्रेमी प्रेम प्रप्ति गति ॥ ३

अर्थात् वह परात्पर पूर्ण पुरुषोत्तम ही श्रीकृष्ण है जो प्रतना प्राणघातक^४
है। वह प्रेमस्वरूप है। भक्तों का पालक है। वह चतुर्व्यूहात्मक माधव भी है।

१- पुरुषोत्तम पैचक पद सं० ३

२- ,, पद सं० २

३- अपवर्ग पैचक पद सं० १

४- मूल प्रश्न ,, २

५०००

“ चतुर्व्यूहमाधौ सुमिरि, कह फल स्वच्छामिस्त्र ।

वही चतुर्व्यूहात्मक पुष्टि पुरुषोत्तम पुष्टिमार्ग में श्रीनाथ स्वरूप होकर
गोवर्धनधारी हो जाता है और करुणा कलित हृदय से भक्त रक्षा भी
करता है श्रीराधा का प्राणनाथ भी है :

जय जय नन्दानन्द-करन वृष्णमानु-मान्यतर ।

जयति यशोदा सुअ कीर्तिदा कीर्तिदानकर ॥

जय श्री राधा प्राण नाथ प्रणतारतिभजन ।

जय वृंदावनचंद्र चंद्रवदनी मन रंजन ।

जय गोपति, गोपति, गोपपति, गोपीपति गोकुल शरण ।

जय कष्ट हरण करुणामरण जय श्री गोवर्धन धरण ॥ १

वही पुरुषोत्तम घोषकुल का सैतापहारी भी है :

जयति राधिकानाथ चंद्रावलि प्रानपति ।

घोषकुल सकल सैताप हारी ॥ २

पुष्टिमार्गीय भारतेन्दु ने अपने श्रीकृष्ण को
पूर्ण ब्रह्म परात्पर बताते हुए नंद मंदिर में बाल क्रीड़ा करने वाला और ब्रज
की निकुंजों में प्रौढ़ लीला करने वाला बताया है। कैसे दमन करने वाले मथुरा
लीला के कृष्ण किंवा भूमारहरण कर्ता द्वाकावासी कृष्ण से उनका कोई
प्रयोजन नहीं । अतः अपनी प्रेम भाविका में वे कहते हैं :

गाय गिरिराज के हृदय आनंद करन

नित्य बिहबलकरन जमुन बारी ॥

१- श्रीनाथ स्तुति षट्पदी -१

२- प्रेममालिका २६

नंद के हृदय जानंदवर्धित करन

मरनि जसुदा मनसि मोद भारी ॥

बाल क्रीड़ा करन नंद मंदिर सदा ।

कुंज में प्रौढ़ लीला बिहारी ॥

गोप सागर रतन सकल गुन गन भरे

ववनित स्वर सप्त मुख मुरलिधारी ॥

० ० ०

बास हरिचंद कलिवल्लभाधीश ह्वै

प्रगट अज्ञात लीला बिहारी ॥ १

तात्पर्य इतना ही कि गो० विट्ठलेश के शब्दों में भारतेन्दु विशुद्ध रूप से यशोदोत्संग लालित परम तत्त्व के ही उपासक थे । प्रेम लक्षणा भक्ति ही उनके जीवन का केन्द्र बिंदु था । इस प्रेम लक्षणा भक्ति के गुह्य सिद्धान्त को काव्य या नाटक द्वारा लोक सामान्य बनाना अथवा उसको सर्वजन हिताय सुलभ बनाना वे अपनी व्यक्तिगत " ठिठाई " बताते हैं :

“ और जो यों देखो तो ये लंबे लंबे मनोरथ । यह बोलचाल यह ठिठाई कि तुम्हारा सिद्धान्त कह डालना । जो हो, इस दूध खटाई की स्क्व स्थिति का कारण तुम्हीं जानो । ” ३

इस प्रकार भारतेन्दु के श्रीकृष्ण परब्रह्म पुष्टि पुरुषोत्तम ही हैं।

१- प्रेमात्मिका पद सं० २६ पृ० ५४

२- जानीति परमतत्त्वं यशोदोत्संगलालितम् । - अणुभाष्य उपसंहार श्लोक १

३- चन्द्रावली नाटिका का समर्पण पृ० ४६३

भारतेन्दु की जीव चर्चा

श्री आचार्य वल्लभ के कठोर अनुयायी भारतेन्दु ने जीव की तात्त्विक रूप से या पृथक् रूप से कहीं चर्चा नहीं की है। जीव को अणु या उस पर ब्रह्म का अंश (अणु) मानते हुए उन्होंने उसे विस्फुल्लिंग ही माना है। आचार्य ने अपने ग्रंथ शास्त्रार्थप्रकरण में जैसे अग्नि से चिनगारियाँ निकलती हैं। उसी प्रकार उस ब्रह्म के सदृश से जड़ (जगत् आदि) और आनंदांश से अन्तर्यामि तथा सृष्टि के प्रारंभ में चिदंश से उस (ब्रह्म) की इच्छा मात्र उससे निर्गत हो गए ।

तदिच्छामात्रतस्तस्माद् ब्रह्म भूतांश्च चेतमाः ।

सृष्ट्यादौ निर्गतास्सर्वे निराकारास्तदिच्छया ॥

विस्फुल्लिंगा ह्वाग्नेस्तु सदृशेन जडा अपि ।

आनंदांश्च स्वरूपेण सर्वान्सर्वामि रूपिणः ॥ १

ये जीव तीन प्रकार के हैं। पुष्टि प्रज्ञाही और मर्यादावाले पुष्टि जीव अनुग्रह प्राप्त हैं। वे भगवान् के शरीर से उत्पन्न हैं तथा मर्यादा जीव उनकी वाणी से तथा इच्छा मात्र से मन से उत्पन्न प्रज्ञाही हैं^२।

भारतेन्दु ने दैवी या पुष्टि जीवों की चर्चा इसप्रकार की है -

“ विस्फुल्लिंग से जग दुख तजि तब विरह अग्नि तन ताँची ।

हरी चंद ह्क रस तुम सौ मिलि अति अंद मन माँची ॥ ३

१- तत्त्वदीप निबंध शास्त्रार्थ प्रकरण श्लोक सं० ३१-३२

२- पुष्टि प्रज्ञाह मर्यादामेव ग्रंथ -आचार्य कृत श्लोक सं० ८-९

३- विनय प्रेम पदासा पद सं० ५ (पृ० ५३६)

इन्हीं पुष्टि या दैवी जीवों को अमय दान देकर वल्लभ ने इन्हें पूर्ण काम बनाया -

दैवी जीवन अमय दान दे रसिक जनन के पूरे काम ।

हरीचंद प्रभु मंगल मूरति गौर श्याम तन एक ललाम ॥१॥

इन दैवी जनों- अग्रह प्राप्त जनों की ही चर्चा भारतेन्दु ने अपने काव्य में अनेक स्थानों पर की है। आचार्यों की अधाइयों में उन्होंने दैवी जीवों के अपमाने का ही सर्वत्र स्मृत दिया है :

“ दैवी जन अपने किये कलि जीव उबारे ॥ ” २

जगत

---२---

दार्शनिक सिद्धान्तों में ब्रह्म, जीव, जगत् एवं माया पर ही मुख्यतः विचार किया जाता है। ब्रह्म से और जीव पर संचिप्त रूप से ऊपर भारतेन्दु साहित्य में ब्रह्म, जीव विषयक विचार दिये जा चुके हैं। शुद्धाद्वैत सिद्धान्त में जगत् और संसार ये दो भेद स्पष्ट हैं। शुद्धाद्वैत सिद्धान्त ब्रह्म के सदैव से उत्पन्न जगत् को सत्य मानता है और संसार जीव का अज्ञान है। आचार्य वल्लभ ने अपने सिद्धान्त मुक्तावली ग्रंथ में जगत् विषयक विचार दैते हुए कहा है :

जगत्तु त्रिविधं प्रोक्तं ब्रह्मा विष्णु शिवास्ततः ।

देवता रूपत् मोक्ता ब्रह्मणीत्थं हरिर्मतः ॥

श्री गंगा के प्रवाही रूपके समान दृश्य जगत्

१- राग संग्रह पद १४ पृष्ठ ४४१

२- ,, २२ पृष्ठ ४४४

आधिमौक्तिक रूप में सत्य ही हैं। भारतेन्दु शुद्धाद्वैतवादी हैं अतः वे भगवान् को आचार्य वल्लभ की भाँति प्रयोजन फलित होने के लिए निर्गुण निराकार अधिक स्वीकार न करते हुए साकार के प्रति अधिक आग्रहशील हैं उसी प्रकार जगत् के सत्यत्व के लिए भी।

फूलों का गुच्छा उनका उर्दू मिश्रित सद्दी बोली का तेरह लम्बी गजलों का ग्रंथ है उसमें उन्होंने राधाकृष्ण के 'जुगल चरन रस' की तो सप्रेम चर्चा की ही है जगत् पर भी अपने विचार प्रस्तुत किये हैं और अक्काट्य तर्कों से जगत् को भगवद् रूप ही स्वीकार किया है। वे कहते हैं :

‘कौई बनाने वाला खुद है या खुद ही यह बनता है।

0

0

वह भगदू है फैसला जिसका कुछ अब तक न हुआ।” १

इस भगदूका फैसला अन्त में वे स्वयं ही दे देते हैं :

तुम गर सच्चे हो तब जहाँ को कहते हैं सबको भूठा ।
तुम निर्गुन हो तो फिर यह गुन जग में सब है किसका ॥
जो भूठा होता है उसकी बातें होती है भूठी ।
ज्यों सफे की मिली संपत्त कुछ काम नहीं करती ॥
सच्चे के तो काम हैं जितने वह सच्चे होते हैं समी ।
फिर कैं बकते हैं भला क्यों सबके जहाँ भूठा है अजी ॥

0

0

भला कहीं शिशि से हीरा हुआ किसी ने देखा
तुम निर्गुन हो तो फिर यह गुन जग में सब है किसका ॥

भारतेन्दु उपर्युक्त गजलों में अकाट्य तर्क प्रस्तुत करते हुए मायावादियों से स्वयं पूछते हैं कि कहीं शीशा या काच से हीरा बन सकता है ? सगुण जगत् निर्गुन ब्रह्म से कैसे उद्भव हो सकेगा । निश्चय ही वह प्राकृत गुणों से रहित अप्राकृत दिव्य गुणों से परिपूर्ण ब्रह्म ही इससगुण जगत् का प्रभु है। यदि यह जगत् मायिक है और माया से कल्पित है तो फिर ईश्वर का क्या कार्य है ?

‘ तुमने बनाया या कि बने खुद तो यह माया है कैसी ?
 एक जो हो तुम फिर यह कौन दूसरी आके घुसी ?
 गरचे काम उसका है तो फिर तेरी क्या तारीफ रही ?
 तुम करते हो तो क्यों कहते हैं- हुई किसमत की निसी ।
 है जो तुम्हारे शरीक तो फिर ला शरीक क्यों नाम पड़ा ?
 तुम निर्गुन हो तो फिर यह गुन जग में सब है किसका ।१

भारतेन्दु का कथन है कि यदि यह जगत् मिथ्या है तो फिर धर्म, संप्रदाय, मजहब, शास्त्र आदि की क्या आवश्यकता है। ये सबके सब जगत् के मिथ्यात्व के साथ मिथ्या सिद्ध हो जायेंगे । वे कहते हैं -

‘ जहाँ अगर भूठा है तो फिर मतवालों को क्या है काम ?
 फिर मजहब से मला क्यों करता है हर शस्स कलाम ।
 वेद वगैरह भी तो जहाँ मैं है फिर क्या है इनसे काम ।
 इनके सिवा भी कहोगे जो कुछ सब भूठा है मुदाम ।
 खुद भूठा जो होगा उसका कहना भी सब है भूठा
 तुम निर्गुन हो तो फिर यह गुन जग में सब है किसका ।।२

१- फूलों का गुच्छा गजल १२ पृ० ५७०

२- ,, १२ पृ० ५७१

शंकर सिद्धान्त पर कशाघात करते हुए सपें-
रज्जु के शंकरों सर्व प्रचलित दृष्टान्त का खण्डन करते हुए भारतेन्दु कहते हैं-

सभी शोर करते हैं- साम का रस्सी में यह धोखा है
भूले हैं वह, जहाँ गर दो हो तो यह बात बने ।
यह तो तब हो जबकि साँप रस्सी यह कायम हों दो शै ।
यहाँ तुम्हारे सिवा है कोई दूसरा कौन कहे ।
हरीचंद तू सच है तो जग से क्यों अपने मुँह फूँट बना ।
तुम निर्गुन हो तो फिर यह गुन जग में सब है किसका ॥ १

तात्पर्य इतना ही कि भारतेन्दु ने शुद्धाद्वैत सिद्धान्तों की जाह्नवी में मली माँति अवगाहन किया था । वे मायावादियों के तर्कों का अकाट्य उत्तर देना जानते थे । काशी सदैव से अद्वैत वेदान्त का केन्द्र रहा है। समय समय पर वहाँ आचार्य गौड़ पादाचार्य की परंपरा में मधुसूदन सरस्वती जैसे अद्वैताचार्य हुए हैं वहाँ आचार्य वल्लभ के शुद्धाद्वैत सिद्धान्तों का प्रचार प्रसार करना तथा मायावादियों के जगत् मिथ्यात्व का खण्डन करना एक साहस पूर्ण कार्य ही कहा जायगा । भारतेन्दु के काव्य में मायावादियों का खण्डन सरलतम शैली में और अकाट्य युक्तियों और तर्कों के साथ मिलता है यही भारतेन्दु की अपनी शैली की विशेषता है।

माया

शुद्धाद्वैत सिद्धान्त में 'माया' नाम की

कोई वस्तु या मान्यता नहीं है। हाँ पंचपर्या अविद्या-

- १- स्वरूपा ज्ञान
- २- देहाध्यास
- ३- इन्द्रियाध्यास
- ४- अन्तःकरणाध्यास सर्व
- ५- प्राणाध्यास

की स्वीकारोक्ति अवश्य है। अहंता मयता ही संसार है। दृश्यमान जगत् संसार नहीं, वह सत्य है भगवान् के सदैव से आविर्भूत है अतः सत्य है।

भारतेन्दु की मान्यता है- जीव की अहंता ममता को समाप्त करने के लिए ही करुणा कलित भगवान् ने अपने आस्था-वतार आचार्य वल्लभ को जगत् में उद्धारार्थ भेजा है। अतः वे मायावाद के तिमिर को मिटाने के लिए ही मुख्यतः भूतल पर अवतीर्ण हुए हैं :

‘तुम पाखंड हैं हस्त करि जन मन जलज विकास ।
जयति अलौकिक रवि कौञ्ज श्रुति पथ करन प्रकास ॥
मायावाद मतंग मद हस्त गरजि हरि नाम ।
जयति कौञ्ज सौ केसरी वृन्दावन वन धाम ॥ १

भारतेन्दु ‘अहंता’ ‘ममता’ को सबसे बड़ा अपराध मानते हैं- उनका कहना है- ‘चाहिए झ बातन को प्रेम ।
कोरी ‘हम’ ‘सो’ काम चलै नहिं मरौवृथा करि नेम ॥ २

१- भक्तसर्वस्व दोहा ११ , १२ (पृ० ६)

२- जैन कृतुहल पद २१ (१३८)

अद्वैतवादियों को करारी फटकार लगाते
हुर वे कहते हैं :

अहं ब्रह्मसब मूरख भासै ज्ञान गरु बढाय ।
तनिक चौट के लगे उठत हैं रोइ रोइ करि हाय ॥ १

आगे वे कहते हैं :

‘ शिवो हँ ’ भाखत सब ही लोग ।
कहैं शिव कहैं तुम कीट अन्न के यह कैसी सँजोग ।
अर्ध अंगमें पारवती हू विहिं न काम जगावै ।
तुमको तो नारी के देखत अँग गुदगुदी आवै ॥ २

भारतेन्दु के तर्क मायावादियों के लिए एक
और अत्यन्त करारे हैं तो दूसरी ओर उनकी अद्वैतवादिता को निस्सार
सिद्ध करने के लिए अकाट्य भी हैं। उनका एक तर्क -

जो पै सबै ब्रह्म ही होय ।
तो तुम जोरु जननी मानौ एक भाव सौं दौय ॥
ब्रह्म ब्रह्म कहि काज न सनो वृथा मरौ क्यों रोय ।
हरीचंद इन बातन सौं नहिं ब्रह्महि पहो कौय ॥ ३

मायावाद को वातुल भूत मानते हुए भारतेन्दु
ने अपने उत्तरार्ध भक्तमाल में एक सुन्दर रूपक दिया है जो अपने में अत्यन्त

- १- जैन कुतूहल पद २१ पृ० १३८
२- ,, २२ पृ० १३८
३- ,, २३ पृ० १३६

सटीक बैठता है-

“मायावादी धनाद मद रामानुज मर्दन कियौ ।

अगनित तम पाखण्ड प्रगट ह्वै दूरि मिलायौ ॥ १

शांकर अद्वैत की अपेक्षा उन्हें मध्व का द्वैत

अधिक प्रिय है :

दृढ़ भेद भगति जग मैं करन मध्व अचारज भुव प्रगट

द्वैतवाद प्रगटाह दास भावहि दृढ़ मान्यौ ॥ १

परन्तु वल्लभ सिद्धान्त अथवा प्रेम लक्षणा

भक्ति प्रधान पुष्टि मार्ग के प्रति उनका अनुराग अमाप गहराई पा गया है :

“निज प्रेम पैथ सिद्धान्त हरि बिट्ठल वपु धरि कै कह्यौ ।

श्री श्री वल्लभ सुअन विप्रकुल- तिलक जगत वर ॥

माया मत तम-तौय- विमर्दन ग्रीष्म दिवाकर ।

जन चकोर हित चंद भक्ति पथ भुव प्रगटावन ॥

अंतरंग सखि भाव स्वामिनी दास्य दृढ़ावन ।

दैवी जन मिलि अवलंब हित एक जा पद दृढ़ करि गह्यौ ।

निज प्रेम पैथ सिद्धान्त हरि बिट्ठल वपु धरि कै कह्यौ ॥ ३

इस प्रकार उन्होंने “माया” को तम तोम,

तिमिर आदि नामों से पुकार कर अविद्यान्धकार का संकेत तो दिया है,

१- भक्तमाल उत्तरार्द्ध- षटपदी ५८ पृ० २२८

२- ,, ,, ५९ पृ० २२८

३- ,, ,, ६१ पृ० २२९

पर माया के कारण जगत् मिथ्यात्व किंवा विकार विवर्त आदि की कल्पना नहीं की है। न अज्ञान को व्यष्टिगत अथवा समष्टिगत माना है। वे भक्ति के लिए सेवारस के ही पिपासु प्रतीत होते हैं।

निष्कर्षतः इतना ही कथनीय है कि कवि शिरोमणि रसिकवर भारतेन्दु युगल किशोर चरणाम्ब के मधुकर थे। प्रेम ही उनके काव्य का एक मात्र लक्ष्य था। भगवत् प्रेम की सुधा का वितरण करना वह भी रसिक जनों को ही एक मात्र उनका उद्देश्य था। वे मूलतः भक्त हृदय थे। भावुक थे, रसिक थे और भगवत् सेवा परायण थे। दार्शनिक सिद्धान्तों के दुर्लभ फलार्थीय शुष्क प्रदेशों में विचरण करना उन्हें पसन्द नहीं था। वे सरस निकुंज फल प्रसून गह्वर लता वीरुद्ध के स्कान्त शान्त वन्य सुषमा के उपासक थे। अतः दार्शनिक सिद्धान्तों को उनके काव्य में सौजना व्यर्थ ही है। हाँ, जहाँ प्रसंगोपात्त आनुष्णगिक चर्चा आई है वहाँ उसका स्पष्ट निरूपण करने में वे नहीं चूके हैं।

लीला

भारतेन्दु ने स्वयं अपने काव्य का त्रिधा वर्गीकरण कर दिया है जिससे अध्ययन और सिद्धान्त स्थापन में बड़ी सुविधा हो गई है। अपने काव्य ग्रंथों की भूमिका में उन्होंने लिखा है—

“ विजयते जीवितेशः । ”

इसमें कीर्तन तीन भाँति के हैं। एक तो लीला सम्बन्धी, दूसरे दैन्य भाव के और तीसरे परम प्रेममय अनुभव के हैं। इसको एकत्र करना और कृपाना अप्रयोजन था, क्योंकि एक तो संसार में प्रायः

अधिकारी लोग हैं, दूसरे इसके द्वारा लोगों में अपनी प्रसिद्धि की इच्छा नहीं।^१

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि भारतेन्दु का मुख्य रूप से भागवती लीला गान ही काव्य रचना का उद्देश्य था। अतः उन्होंने भगवल्लीला को नित्य मानकर गोकुल लीलाओं का ही विशेष रूप से गान किया है। मथुरा लीला या द्वारका लीला के पदों में वे नहीं पड़े हैं।

प्रेम मालिका में उन्होंने भागवतोक्त मत्स्य, कच्छप, वाराह नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम, बुद्ध, कल्कि आदि दशावतारों को नमन किया है और अन्त में श्रीकृष्ण परब्रह्म की लीलाओं पर अपने को केन्द्रित कर दिया है। प्रेमाश्रु मैकलेऊ के पद, भूला, डोल, बीरी के पद आदि देकर उन्होंने अष्टछापी कवियों का अनुसरण किया है। मंदिरों की कीर्तन पद्धति का उन्होंने सूक्ष्म निरीक्षण किया था। अतः समय समय पर अपनी मौज में उन्होंने उन सब प्रसंगों, लीलाओं को उठाकर भी अष्टयाम की बँधी लीक अथवा परिपाटी का अनुसरण नहीं कर सके हैं। इसमें उनका मौजी स्वभाव ही कारण था। प्रेम माधुरी में वैष्णु वादन गोचारण, कालीयमर्दन, कुँजगमन, वनलीला, विरह ताप आदि के पद दिये हैं।^३ राग संग्रह में पुष्टिमार्गीय पद्धति के अनुसार बघाड़ियों, रथ यात्रा, रामनौमी, प्रबोधिनी, दान स्कादशी, सेहरा टिपारा के पद, जल विहार, नाव के पद, सैन के पद, रास क्रीड़ादि के पद दिये हैं। राग संग्रह एक प्रकार

१- प्रेममालिका पद २६ पृ० ५३

२- प्रेमाश्रु पद ३६, ४१, ४३, ४४

३- प्रेम माधुरी पृ० १५०- १७५

सं पुष्टिमार्गीय उनका कीर्तन संग्रह ही है जिसमें नित्य सेवा और वर्णाश्रम मिला जुला आगया है। वे जैसा कि कहा जा चुका है- बँधी परिपाटी की दासता स्वीकार नहीं करते। किन्तु संप्रदाय की रसमयी सेवा भावना को भी नहीं छोड़ते। वल्लभ वंश की बधाइयाँ, राधा की चर्चा भी इसी राग संग्रह में आ गई है। मान लीला, दीनता, विनय, माहात्म्य भी इसी ग्रंथ में सम्मिलित हो गया है। लगता है कि समय समय पर उनके कवि को जो भी लहर उठती थी उसी को वे लिख लेते थे। यदि भारतेन्दु के साहित्य का व्यवस्थित संपादन किया जाय तो उनका कवि रूप गौण हो जायेगा और सांप्रदायिक भक्त रूप निखर कर उभर उभर आवेगा। उनके वर्णा वर्णन, विनय प्रेम पचासा, प्रेम फुलवारी आदि ग्रंथ इसी प्रकार के हैं। 'फूलों का गुच्छा' एक प्रकार से शास्त्रार्थी ग्रंथ बन गया है जिसमें उन्होंने वल्लभीय सिद्धान्तों को आधुनिक गजलों की तर्ज में प्रस्तुत किया है। इस ग्रंथ की भाषा उर्दू बहुत है।

कृष्ण चरित्र पुनः उनका राग संग्रह जैसा विभिन्न पुष्टि मार्गीय प्रसंगों एवं लीला कथाओं का ग्रंथ बन गया है। व्यवस्था इसमें भी नहीं है। संभवतः व्यवस्था उनके स्वभाव में नहीं थी। मौज, फक्कड़फा में उद्भूत प्रेम की अंत अतुष्टियों की अमिव्यक्ति ही एकमात्र उनका लक्ष्य बन गई थी।

श्रीनाथ, स्तुति, अफगं पैचक, पुरुषोत्तम पैचक गीत गोविंदानन्द, प्रातःस्मरण स्तोत्रादि उनके चरम धर्म निष्ठा एवं भक्ति भावना के परिचायक ग्रंथ हैं। देश भक्ति के तथा कुछ हास्यविनोद की रचनाओं को छोड़ उनका संपूर्ण कृतित्व चरम प्रेममय भक्ति भावना मय,

निष्ठामय और वह भी संपूर्ण पुष्टिमार्गीय पुट लिये हुए है। उनकी इस साम्प्रदायिक निष्ठा के दृष्टिकोण को लेकर उनके साहित्य का अध्ययन किया ही नहीं गया ।

इस दृष्टि से भारतेन्दु के साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता बनी रहेगी । प्रस्तुत शोध तो केवल इस दिशा में एक प्रारंभिक प्रयास मात्र है।

...

उपसंहार

उपसंहार

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारतेन्दु के पिचहत्तर प्रतिशत कृतित्वमें पुष्टि भावना ही व्याप्त है। वे प्रेम-लक्षणा भक्ति के परम पदाधर उसी के साधक एवं आराधक थे। उनका लगभग सभी रचनाओं में पुष्टिप्रेम का रंग बरबस फलक आता है। अपनी ग्रंथों की पूर्व प्रस्तावना में उन्होंने स्पष्ट घोषणा की है-

“ श्री युगल स्वरूप के श्रीचरणों के अगाध चिह्नों के मति अनुसार कुछ भाव लिखे हैं। यद्यपि इस की कविता काव्य के सब गुणों से (सत्य ही) हीन है, तथापि इसका मुझे सोच नहीं है, क्योंकि यह ग्रंथ मैंने अपनी कविता प्रगट करने और कवियों को प्रसन्न करने को नहीं लिखा है, केवल (अपनी) वाणी पवित्र करने और प्रेम रंग में रंगे हुए वैष्णवों के आनन्द के हेतु लिखा है। ”

इसमें श्री भागवत के अनुसार बहुत से भाव लिखे हैं, इस कारणसे श्री भागवत जानने वालों को इसका स्वाद विशेष मिलेगा ।

--- जिसको रसिक लोग (भगवन्नामां कित जानकर) चामा करेंगे । मैं आशा करता हूँ कि जो रसिक भगवदीय जन इसको पाठ करें वह मेरे (इस) बाल चापल्य को चामा करें --- । ”

प्रस्तुत ‘ प्रस्तावना ’ से भारतेन्दु का काव्य रचना के तीन लक्ष्य स्पष्ट हो जाते हैं। पहला भगवद् गुण गान और दूसरा

अफ़ी ' गिरा पावन करन कारन ' तीसरा वैष्णवों को आनंद प्रदानार्थ ।

भगवद् गुणगान का प्रथम लक्ष्य भारतेन्दु का इसीलिए था कि वंश परंपरागत पुष्टिमार्गीय संस्कार, स्वयं का भगवत्प्रेम प्रधान स्वभाव, और नित्य जीवन में पुष्टि भावना भावित आचार ।

कथन और कर्त्ती अथवा वाणी और व्यवहार का यह प्रबल समन्वय भारतेन्दु के व्यक्तित्व की महती विशालता थी । जिस पुष्टिमार्गीय प्रेम लक्षणा के वे पोषक थे उस भावना में वे अहर्निश डूबे भी रहते थे ।

“ झन नैनन मैं वह साँवरी मूरति,
देखति आनि अरी सौ अरी ।
अब तो है निबाहिबौ याको,
मलो ' हरिचंद ' जू प्रीत करी सौ करी ॥

उन सँजन के मद मँजन सौँ अँखियाँ
थे हमारी लरी सौल री ।
अब लोग चबाब करौ तो करौ
हम प्रेम के फँद परी सौ परी ॥

स्वरूपासक्ति और मानसी भाव से कान्ता-भाव भावित भक्ति की पराकाष्ठा उनकी काव्य सृष्टि के प्राण तत्त्व हैं। देहेन्द्रियादि का चरम लक्ष्य भगवद्दर्शन है- भागवतकार कहते हैं- “ अक्षाण्वता फलमिदं न परं विदायः । ”

भारतेन्दु ने इस भावना को अत्यन्त पोषण दिया है :

थाकी गति अँगन की, मति परगई मँद,
 सुख भोगिनी सी ह्वै हैदह लागी पियराम ।
 बावरी सी बुद्धि भई, हँसी काहू कीनि लई ,
 सुख के समाज जित तित लागे दूर जान ।
 हरीचंद रावरे-विरह जग दुखमय
 मयो कछु और होनहार लागे दिखराय ।
 नैन कुम्हिलान लागे, बैमहु अथाम लागे,
 आजी प्राननाथ अब प्रान लागे मुस्कान ॥ १

पुष्टिमार्गीय विरह- भावना उनमें कूट कूट
 कर मरी थी अपनी चरम दैन्य भावना में वे फुकार उठते हैं :

नाथ तुम अपनी और निहारौ ।
 हमरी और न देखहु प्यारे निज गुन गमन बिचारौ ।

०

०

तुव गुन कृपा दया सौं मेरे अब नहिं बड़े कन्हाई ।
 तासौं तारि लेहु नंदनंदन हरीचंद को धाई ॥ २

भारतेन्दु के इष्टदेव पुष्टिमार्ग सम्मत ठाकुर
 हैं जिन्हें केवल तुलसीदल से ही तुष्टि हो जाती है-

करनी करुना सिंधु की कासौं कहि जाई ।
 अति उदार गुन गन भरे गोवर्धन राई ॥
 तनिक तुलसीदल केँ दये तेहि बहुरि यामै ।
 सेवालघु निज दास की पर बात सी जानै ॥

कहाँ अधम अध सौ मर्यौ, हरिचंद मिसारी ।

जेहि माघौ सहजहि लियौ गहि बाह उबारी ॥ १

गोविंद गुणधाम के साथ वे पहले गुरु कृपा के अमिलायी हैं। पुष्टिमार्ग में गुरु का स्थान दूती की भाँति है जो अपने स्वामी या प्रभु से मिला देती है। गुरु के द्वारा ही आत्म निवेदन किया जाता है। आज भी पुष्टि मार्ग में उनके वंशज गौस्वामी गण श्री महाप्रभु आचार्य वल्लभ की 'कानि' या मर्यादा से ही दीक्षा देते हैं। 'सर्वोत्तम स्तोत्र' के अनुसार 'स्वर्ग' स्थापिता' के अवलम्बन पर ही भगवान् पुष्टि जीवों को अंगीकार कर अग्रह करते हैं।

भारतेन्दु ने शताधिक अवसरों पर आचार्य वल्लभ एवं उनके वंशजों का गुणगान किया है। जो उन्हें न भजे सौ अभागा है।

श्री वल्लभ की सरि करै कौन ।

प्रगटे प्रभु गौविन्द मन वाहक भक्त कारनै जौन ।

परम पतित तारन करुनामय रसनिधि बुधता यौन ।

'हरिचंद' जो झहिं भजत नहिं महा अभागे तौन ॥ २

पुष्टिमार्ग की यही विन्यासता है कि वह कर्ममार्गीय सैन्यास का सण्डन कर प्रेममार्गीय सैन्यास की दीक्षा देता है और साधक को भगवत् सेवा रस में निमज्जित करता है। "सदा तुम मायावाद निवारेउ ।" साथ ही "सेवा रस परस पात्र पंडित जन मंडित कर" आदि कथनों में पुष्टि तत्त्वों का ही अनुचिंतन करते हैं। कथन का तात्पर्य इतना

१- प्रेम प्रलाप

२- राग संग्रह पद १२३ पृ० ४७

ही कि पुष्टिमार्गीय भक्ति का कोई भी ऐसा तत्त्व नहीं जिस पर उन्होंने न लिखा हो ।

आचार्य वल्लभ के चतुर्थ प्रस्थान श्रीमद्भागवत को उन्होंने अत्यधिक महत्त्व दिया है। भागवत की दशम स्कंधीय लीलाओं के अतिरिक्त देवी लीला, कृष्ण लीला , आदि अनेक प्रेम प्रसंग उन्होंने 'पुराणान्तर भाषित' सूत्रों से ग्रहण किये हैं। पुष्टिमार्ग में सेवित नवो निधियों की उन्होंने चर्चा की है जिससे उनकी पुष्टि भावना की दृढ़ता और निष्ठा का परिचय मिल जाता है। अपने भक्तमाल उत्तरार्द्ध में उन्होंने वैष्णव सम्प्रदायों के आचार्यों का गुण गान तो किया ही है, आचार्य वल्लभ के सेवक चौरासी वैष्णव एवं गो० विट्ठलेश के प्रमुख दो सौ बावन सेवकों को भी अपनी षट्पदियों में विनम्र भावना से नमन किया है।

इस प्रकार भारतेन्दु का लगभग संपूर्ण काव्य पुष्टि भावना भावित है। उनके साहित्य पर पुष्टि भक्ति एवं दर्शन का गहरा प्रभाव है।

...

परिशिष्ट

१- सैद्धर्म ग्रंथ

२- अन्य ग्रंथ

३- फोटो स्टेट प्रतियाँ

संदर्भ ग्रंथ

- श्रीमद्भागवत , गीता प्रेस गोरखपुर स० २००८ द्वितीय संस्करण
 श्रीमद्भगवद्गीता - ,, २०३८ चौदहवां संस्करण
 पद्मपुराण - कलकत्ता मौर संस्करण
 तैत्तिरीयोपनिषद्
 कठोपनिषद्
 ईशवास्योपनिषद्
 मुण्डकोपनिषद्
 श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभु जी - केशवराय शास्त्री, गुजराती संस्करण
 वेणुनाद- वल्लभ विज्ञान
 निज वार्ता
 घरुवार्ता
 चौरासी वैष्णवन की वार्ता
 बृहत्स्तोत्र सरित्सागर प० नारायण जी मूल जी पुस्तकालय (मुंबई)
 तत्त्वदीप निबन्ध शास्त्रार्थ प्रकरण - शास्त्री हरिशंकर जोकार जी
 ,, भागवतार्थ प्रकरण ,,
 पद्मावलंबन - गौ० वा० मूलचंद्र तेलीवाला
 यदुनाथ दिग्विजय - यदुनाथ जी कृत
 यमुनाष्टक - षोडश ग्रंथों (म० प्र० कृत) स० १९८० चतुर्थ , गुजराती
 सिद्धान्त मुक्तावली
 सिद्धान्त रहस्य- स० डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल
 नवरत्न ,,

पुष्टि प्रवाह मर्यादा भेद- षोडश ग्रंथां (म० प्र०कृ०) स० १६८० गुजराती

निरोध लक्षणा , ,

श्रीकृष्णाश्रय , ,

विवेक धैर्याश्रय , ,

संन्यास निर्णय , ,

अन्तःकरण प्रबोध , ,

म कितव क्षिणी , ,

सर्वोत्तमजी , ,

पुरुषोत्तम सहस्रनाम (बृ० स्तो० सरित्सागर)

श्रुति गीता - महाप्रभुवल्लभाचार्य (वृ० स्तो० सरि० बम्बई)

मंगलार्ति - गो० विठ्ठलेश कृत (बृ० स्तो० सरित्०)

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जीवन चरित - श्रीराधाकृष्णदास- नवीन स०

१९७६ , हिन्दी समिति , उ०प्र०

भारतेन्दु नाटकावली - इंडियन प्रेस प्रयाग १९२७

श्रीगोपाल कृपा कुंज- प्रेमलाल गो० मेवचा- वैश्वा० कार्या० पोरबंदर स०२०२५

भक्त सर्वस्व- भारतेन्दु स० १९२७ ना० प्र० स० काशी

प्रेममालिका , , १९२८ , ,

कार्तिक स्नान , , १९२६ , ,

वैशाख माहात्म्य , , १९२६ , ,

प्रेम सरोवर , , १९३० , ,

देवी कदमलीला , , १९३० , ,

प्रेमाश्रुवर्णन , , १९३० , ,

स्फुट समस्या , , १९३२ , ,

प्रेम प्रलाप , , १९३४ , ,

प्रेम तरंग , , १९३४ , ,

गीत गोविंदानन्द	भारतेन्दु	सं० १९३५
होली	,,	१९३६
राग संग्रह	,,	१९३७
वर्णा विनोद	,,	१९३७
विनय प्रेम पचासा	,,	१९३८
प्रेम फुलवारी	,,	१९४०
कृष्ण चरित	,,	१९४०
प्रातस्मरण मंगल पाठ	,,	१९३०
दैन्य प्रलाप	,,	१९३०
उरहना	,,	१९३०
तन्मय लीला	,,	१९३०
दानलीला	,,	१९३०
रानी रुद्रम लीला	,,	१९३०
बसंत होली	,,	१९३०
प्रबोधिनी	,,	१९३१
स्वरूप चिन्तन	,,	१९३१
श्री सर्वोत्तम स्तोत्र	,,	१९३३
निवेदन पत्रक	,,	१९३३
प्रातः स्मरण स्तोत्र	,,	
वैष्णुगीत	,,	१९३४
श्रीनाथ स्तुति	,,	१९३४
अपवर्ग अष्टक	,,	१९३४
अपवर्ग पञ्चक	,,	१९३४
मीष्म स्तव राज	,,	१९३६

मधु मुकुल - भारतेन्दु सँ० १९३७

फूलों का गुच्छा - भारतेन्दु सँ० १९३६

नाटक

चन्द्रावली - इंडियन प्रेस

प्रेम योगिनी ,,

अनुवाद

तदीय सर्वस्व - भारतेन्दु ग्रंथावली

अष्टपदी का भावार्थ ,,

श्रुतिरहस्य ,,

श्री वल्लभाचार्य का चतुःश्लोकी

माहात्म्य

गौ महिमा - भारतेन्दु ना०प्र० स० काशी

कार्तिक कर्मविधि ,,

पुरुषोत्तम मास विधि ,,

मार्गशीर्ष महिमा ,,

उत्सवावली ,,

श्रवाणकृत्य ,,

उर्ध्वमुख मार्तण्ड ,,

भागवत शंका निरासवाद ,,

श्री वल्लभ दिग्विजय ,,

रास पंचाध्यायी ,,

मुकुंदराय जी की वार्ता - लेखक चुन्नीलाल काशी, ज्ञान मण्डल प्रेस १९८०

गोपाल लाल जी की वार्ता- लेखक चुन्नीलाल काशी, ज्ञान मंदिर प्रेस १९८०

हरिश्चंद्र चंद्रिका सन् १८७६-७७

कविवचनसुधा सन् १९७६

जैन कुतूहल - सन् १९३०

पत्र पत्रिकारं

हरिश्चंद्र चंद्रिका खण्ड ५-६ सन् १८७८

स्फुट कविता संग्रह - सन् १९२७- से १९४० तक ना० प्र० स० काशी

अन्य

भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि- डा० किशोरीलाल गुप्त , १९५६, काशी

निकाय - सन् डा० त्रिभुवन सिंह , का० हि० वि० वि० १९७५-७६

आधुनिक हिन्दी का आदिकाल १९७३ श्री नारायण चतुर्वेदी

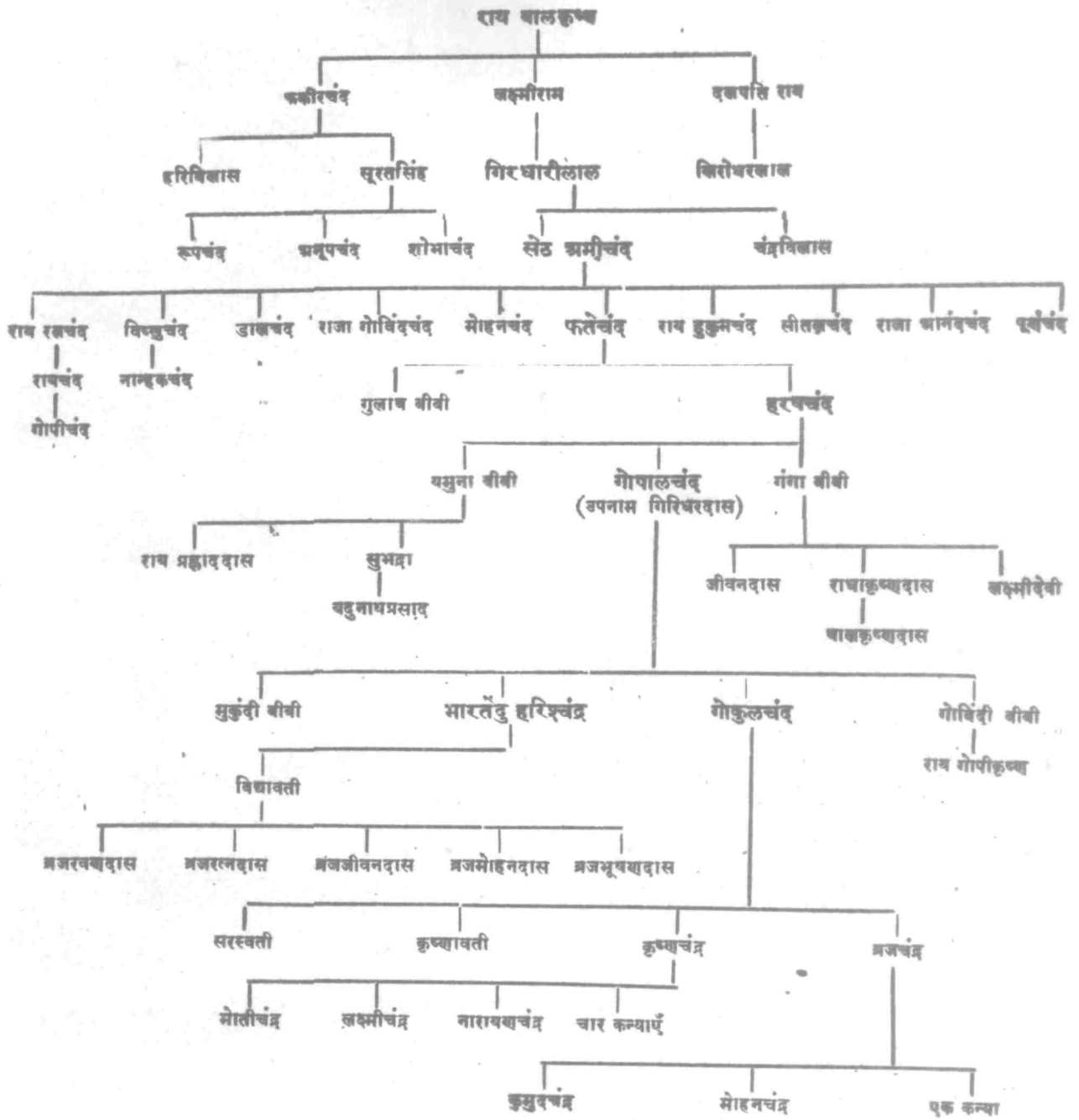
भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जीवन चरित - राधाकृष्ण दास

हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल



भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेंदुजी का वंश-वृक्ष



हम हरिश्चन्द्र अगरवाले श्रीगोपालचन्द्र के पुत्र काशी चौखम्बा महल के
निवासी मिति भाद्रपद शुक्ल ११ बुधवार संमत १९३० तदीय समाज के सामने
परम सत्य ईश्वर को मध्यस्थ मानकर तदीय नामाङ्कित अनन्य बीर वैष्णव
का पद स्वीकार करते हैं और नीचे लिखे हुए नियमों का आजन्म मान
ना स्वीकार करते हैं

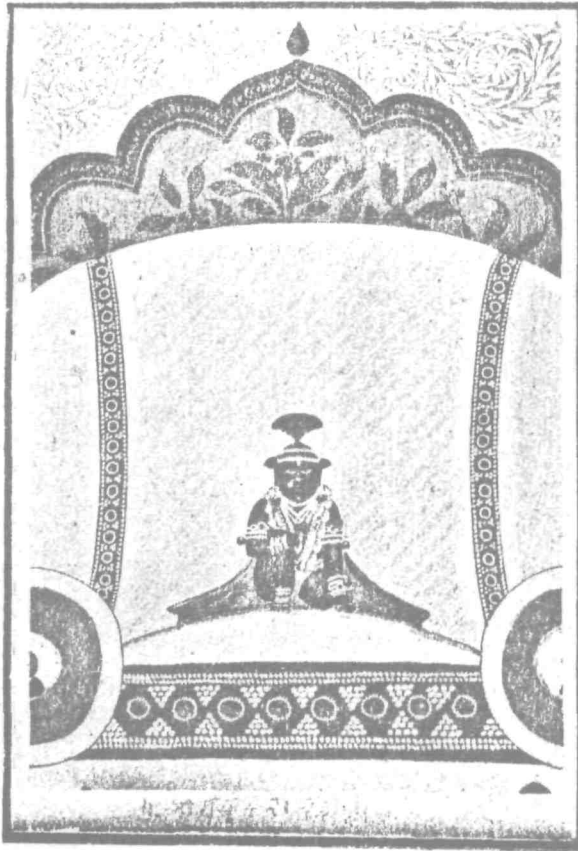
- १ हम केवल परम त्रेममय भगवान श्री राधिका रमणा भी भजन करेंगे
- २ बड़ी से बड़ी आपत्ति में भी अत्याश्रय न करेंगे
- ३ हम भगवान से किसी कामना के हेतु प्रार्थना न करेंगे और न किसी और देवता से कोई कामना चाहेंगे
- ४ जुगल स्वरूप में हमसे दृष्टि न देखेंगे
- ५ वैष्णव में हम जाति बुद्धि न करेंगे
- ६ वैष्णव के सब आचार्यों में से एक पर पूर्ण विश्वास रखेंगे परंतु दूसरे आचार्यों के मत विषय में कभी निन्दा वा खेण्डन न करेंगे
- ७ किसी प्रकार की हिंसा वा मांस भक्षण कभी न करेंगे
- ८ किसी प्रकार की मादक वस्तु कभी न खायेंगे न पीयेंगे
- ९ श्री म. भगवत गीता और श्री. भा. को सत्य शास्त्र मानकर गिर्य मन्त्र शीलन करेंगे
- १० महा प्रसाद में अन्न भुक्ति न करेंगे
- ११ हम आभरणाल अपने प्रभु और आचार्य पर हृदय विश्वास रखकर ३५ भाक्ति के फैलाने को उपाय करेंगे
- १२ वैष्णव मार्ग के अमिरुदु सब कर्म करेंगे और इस मार्ग के विरुद्ध शीत मार्त वा लौकिक कोई कर्म न करेंगे

॥ श्रीवहोस्वामी (शुद्धाह्नमार्गण्डनाकर्ता)
॥ श्रीमद्गिरिधरजी ॥
(कारावाला)



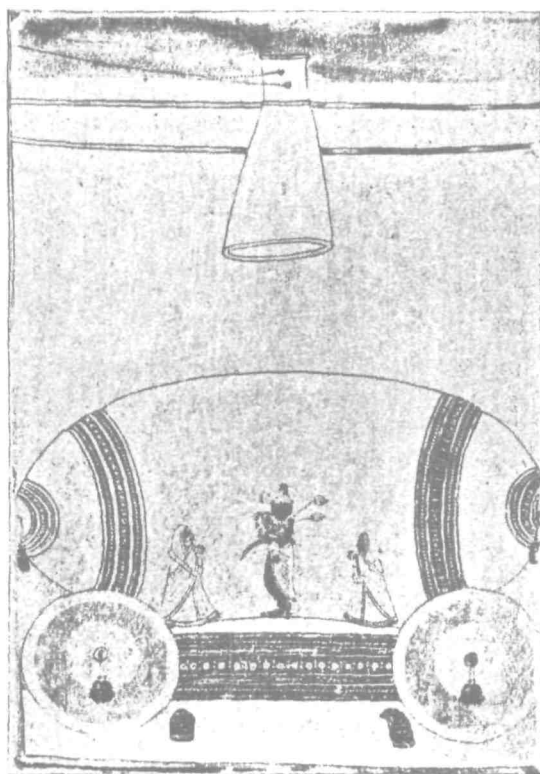
सा. सं. १८४७ चैत्र शु. ३.

॥ श्रीमुकुन्दरायजी ॥ (काशीवाके)



पाटोत्सव, भाद्रपद कृष्ण १

॥ श्रीमदनमोहनजी ॥ (कामधन)



भारतेन्दुजी के डपास्थ